संचार माध्यम

भारतीय जन संचार संस्थान की अर्द्धवार्षिक शोध पत्रिका

खंड–32, अंक–2 आईएसएसएन : 2321–2608 जुलाई–दिसंबर 2020

भारतीय जन संचार संस्थान
नई दिल्ली

संचार माध्यम

भारतीय जन संचार संस्थान की अर्द्धवार्षिक शोध पत्रिका

खंड–32, अंक–2
जुलाई–दिसंबर 2020
आईएसएसएन: 2321–2608

संचार माध्यम के बारे में:

'संचार माध्यम' (ISSN 2321–2608) भारतीय जन संचार संस्थान (नई दिल्ली) की संचार, मीडिया, पत्रकारिता और उससे संबंधित मुद्दों पर केंद्रित हिंदी में प्रकाशित सामग्री चयन में उच्च मानदंडों का पालन करने वाली अग्रणी और यूजीसी–केयर सूचीबद्ध शोध पत्रिका है। इसका प्रकाशन 1980 में प्रारंभ हुआ और आज यह हिंदी भाषा में संचार, मीडिया और पत्रकारिता से संबंधित विषयों पर विभिन्न प्रकार के विचारों, टिप्पणियों, पुस्तक समीक्षा और मौलिक शोध–पत्रों के प्रकाशन का प्रतिष्ठित मंच है। इसमें मीडिया से संबंधित सभी प्रकार के विषयों पर मौलिक अकादमिक शोध और विश्लेषण प्रकाशित किए जाते हैं। अकादमिक शोध के उच्चतर मूल्यों का पालन करते हुए 'संचार माध्यम' में प्रकाशन से पूर्व सभी शोध पत्रों/आलेखों के लिए निष्पक्ष समीक्षा की एक कठोर प्रक्रिया का पालन किया जाता है। भारतीय जन संचार संस्थान के प्रकाशन विभाग द्वारा इसका प्रकाशन किया जाता है। पत्रिका का प्रकाशन अभी छमाही हो रहा है, परंतु शीघ्र ही इसका प्रकाशन पुनः तिमाही करने की योजना है।

प्रधान संपादक
प्रो. संजय द्विवेदी
महानिदेशक,
भारतीय जन संचार संस्थान, नई दिल्ली

संपादक
प्रो. (डॉ.) प्रमोद कुमार
प्रोफेसर, अंग्रेजी पत्रकारिता
भारतीय जन संचार संस्थान, नई दिल्ली

संपादक मंडल

श्री अच्युतानन्द मिश्र
वरिष्ठ पत्रकार एवं पूर्व कुलपति, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय, भोपाल

डॉ. सच्चिदानंद जोशी
पूर्व कुलपति, कुशाभाऊ ठाकरे पत्रकारिता एवं जन संचार विश्वविद्यालय, रायपुर एवं सदस्य सचिव, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र, नई दिल्ली

प्रो. ओम प्रकाश सिंह
प्रोफेसर एवं निदेशक, महामना मदनमोहन मालवीय हिन्दी पत्रकारिता संस्थान, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

प्रो. पवित्र श्रीवास्तव
डीन अकादमिक, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय, भोपाल

प्रो. गोविंद सिंह
डीन अकादमिक, भारतीय जन संचार संस्थान, नई दिल्ली

प्रो. आनंद प्रधान
प्रोफेसर, भारतीय जन संचार संस्थान, नई दिल्ली

प्रो. अनिल कुमार सौमित्र
प्रोफेसर एवं क्षेत्रीय निदेशक भारतीय जन संचार संस्थान, अमरावती, महाराष्ट्र

प्रो. संगीता प्रणवेंद्र
प्रोफेसर, रेडियो और टेलीविजन, भारतीय जन संचार संस्थान, नई दिल्ली

प्रो. प्रमोद कुमार
प्रोफेसर, अंग्रेजी पत्रकारिता एवं संपादक, 'संचार माध्यम', भारतीय जन संचार संस्थान, नई दिल्ली

डॉ. शुचि यादव
सह–आचार्य, मीडिया अध्ययन केंद्र, सामाजिक विज्ञान स्कूल, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

डॉ. शाहिद अली
विभागाध्यक्ष, जन संचार, कुशाभाऊ ठाकरे पत्रकारिता एवं जन संचार विश्वविद्यालय, रायपुर

डॉ. पवन कौंडल
सहायक संपादक, 'संचार माध्यम', भारतीय जन संचार संस्थान, नई दिल्ली

भारतीय जन संचार संस्थान की ओर से श्री के. सतीश नम्बूदिरिपाड, अपर महानिदेशक (प्रशासन) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित

*सभी तरह के संपादकीय पत्राचार और लेख भेजने के लिए **संपादक, संचार माध्यम,** भारतीय जन संचार संस्थान, अरुणा आसफ अली मार्ग, नई दिल्ली-110 067 (भारत), को संबोधित किया जाना चाहिए (दूरभाष : 91-11-26742920, 26741357)*

ई मेल : *sancharmadhyamiimc@gmail.com, drpk.iimc@gmail.com, pawankoundal@gmail.com*
जर्नल का वेब लिंक : *http://iimc.gov.in/content/426_1_AboutTheJournal.aspx*
वेबसाईट : *www.iimc.gov.in*

'संचार माध्यम' में प्रकाशित विचार लेखकों की अपनी अभिव्यक्ति हैं। भारतीय जन संचार संस्थान का उनसे सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

प्रधान संपादक की कलम से...

प्रो. संजय द्विवेदी
महानिदेशक
भारतीय जन संचार संस्थान

भारतीय जन संचार संस्थान की प्रतिष्ठित शोध पत्रिका 'संचार माध्यम के 32वें खंड के अंक–2 को प्रस्तुत करते हुए मुझे अत्यंत हर्ष की अनुभूति हो रही है। वर्ष 1980 में प्रारंभ की गई यह शोध पत्रिका अपनी 41 वर्ष की यात्रा पूर्ण कर चुकी है। इस अवधि में अनेक विशेषांक भी प्रकाशित हुए हैं। इस दौरान यह पत्रिका अपने प्रारूप, मास्टहेड, प्रिंट स्पेस और गुणवत्ता में अनेक सौंदर्यबोध विषयक बदलावों की साक्षी रही है। वर्ष 2020 में नए संपादकीय बोर्ड के गठन के साथ, इस अंक में पत्रिका के आकार, फॉण्ट और प्रारूप आदि में अनेक परिवर्तन किए गए हैं। इन सभी बदलावों से पत्रिका का डिजाइन ही आकर्षक नहीं हुआ है, बल्कि प्रिंट स्पेस की बचत भी हुई है, जिससे इस अंक में अधिक शोध पत्र शामिल हो सके हैं।

इस अंक में लेखकों के लिए विस्तृत एवं संशोधित दिशानिर्देशों का समायोजन भी किया गया है। ये दिशानिर्देश हमारे सभी सम्मानित लेखकों को 'संचार माध्यम' के लिए अधिक गुणवत्तायुक्त शोध आलेख प्रस्तुत करने में मदद करेंगे। इस अंक में, शोध पत्रिका का नाम, अंक संख्या और लेख के पृष्ठों की संख्या, अवधि और आईएसएसएन जैसी पत्रिका संबंधी समस्त संबद्धताओं को प्रत्येक आलेख के शीर्ष पर प्रस्तुत किया गया है। इससे लेखकों को अपने शोध पत्रों को व्यापक स्तर पर प्रसारित करने और आवश्यकतानुसार उन्हें सुरक्षित, संरक्षित और पुनः प्राप्त करने में मदद मिलेगी।

एक और स्पष्ट परिवर्तन, जो इस अंक में दृष्टिगोचर है, वह है पत्रिका के नए मास्टहेड की डिजाइनिंग, जिसने न केवल इसे नया और आकर्षक स्वरूप प्रदान किया है, बल्कि यह नियमित प्रयोग होने वाले फॉण्ट से भिन्न भी है। शोध पत्रिका को इंडियन साइटेशन इंडेक्स (आईसीआई) में सूचीबद्ध करने की प्रक्रिया प्रारंभ कर दी गई है, जो एक नए अध्याय और सुधार की शुरुआत होगी। इसे शोध पत्रिका की अंतरराष्ट्रीय पहचान को नए सिरे से परिभाषित करने की दिशा में उठाया गया एक महत्त्वपूर्ण कदम भी कह सकते हैं।

अंत में, 'संचार माध्यम' को नया स्वरूप प्रदान करने के लिए मैं 'संचार माध्यम' की पूरी टीम को बधाई देता हूं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि ये सभी बदलाव 'संचार माध्यम' की यात्रा में मील के पत्थर साबित होंगे।

संपादकीय

‘इन्फोडेमिक’ और सूचना साक्षरता

कोविड वैश्विक महामारी के दौरान जब पूरा विश्व घरवास (लॉकडाउन) में था, उस समय सूचना के प्रमुख और भरोसेमंद माने जाने वाले स्रोत समाचार पत्र भी बुरे दौर में पहुँच गए थे। अफवाहों के कारण लोगों को लगा कि अखबारों से भी कोरोना फैल सकता है। तमाम प्रयासों के बाद जब तक उन्हें यह समझ में आया कि अखबार से कोरोना नहीं फैलता, तब तक बड़े-बड़े अखबार समूह अपना आधार खोने के कगार पर थे। उस समय लोगों के लिए अचानक अख़बारों से अधिक डिजिटल और टेलीविज़न माध्यम सूचना के प्रमुख स्रोत बन गए। लंबा समय डिजिटल स्क्रीन पर व्यतीत होने लगा। टेलीविज़न और डिजिटल माध्यमों से जो सूचना का विस्फोट हुआ, उसने कोरोना वायरस के बारे में लोगों की चिंता और तनाव को कई गुना बढ़ा दिया। कुछ अध्ययनों में दावा किया गया कि घरवास के दौरान भारत में सोशल मीडिया की पहुंच तीन गुना तक बढ़ गई, जिसने लोगों को जागरूक करने के बजाय उनके भय और संदेह में कई गुना वृद्धि कर दी। इससे उनकी मानसिक शांति पर बुरा असर पड़ा। अफवाहों की इस ‘महामारी’ को एक नया नाम दिया गया ‘इन्फोडेमिक’। अर्थात् सूचनाओं के विस्फोट की महामारी। जब अतिशय सूचनाओं में से यह चुनना मुश्किल हो जाए कि किस सूचना पर विश्वास करें और किस पर नहीं, तो ऐसी स्थिति एक विमर्श को जन्म देती है। इसी विमर्श का नाम है मीडिया और सूचना साक्षरता। आज जब डिजिटल की मदद से ‘फेक’ और ‘हेट न्यूज’ अपने आप में एक बड़ा व्यापार बन गया है, ऐसे में मीडिया और सूचना साक्षरता की आवश्यकता बहुत अधिक बढ़ गई है।

अपने स्वार्थ के लिए कहानी गढ़ना और उसका प्रचार करना कोई नई बात नहीं है, लेकिन गत करीब पांच-छह वर्ष से डिजिटल दुनिया में जिस तरह से राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक मुद्दों पर झूठी खबरें आ रही हैं, वह चिंता की बात है। डिजिटल तकनीक के अप्रत्याशित विस्तार के चलते सूचनाओं के प्रवाह को रोकना अब असंभव हो गया है। ऐसे में लोगों के पास ऐसे ‘टूल’ होने चाहिए, जिनसे वे उनका सही विश्लेषण कर झूठ को ख़ारिज कर सकें। चूंकि अब सूचनाओं की बमबारी बचपन से ही शुरू हो रही है, इसलिए बालपन से ही बच्चों में जागरूकता बढ़ानी होगी। स्कूली पाठ्यक्रम और पढ़ाने के तरीकों में बदलाव के साथ-साथ हमें ऐसे तरीके भी ढूंढ़ने होंगे, जिनसे सभी लोग तथ्यों और काल्पनिक बातों में फर्क करने की कला सीख सकें। परंतु अभी तक भारत में स्कूली स्तर पर मीडिया एवं सूचना साक्षरता बढ़ाने पर विमर्श भी शुरू नहीं हुआ है। शिक्षा के क्षेत्र में सूचना तकनीक का दख़ल तो बढ़ा है, परंतु कामकाजी तकनीकी क्षमता को साक्षरता समझने की भूल हमें नहीं करनी चाहिए। सूचनाएं सीमा से बंधी नहीं होतीं, इसलिए हमें यह देखना होगा कि उनका संदर्भ क्या है और क्या वे नैतिकता की शर्त पूरी करती हैं? मीडिया साक्षरता को पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाकर इसकी शुरुआत की जा सकती है। इसके बाद इस विषय पर शिक्षकों का ‘ट्रेनिंग मॉड्यूल’ तैयार करने के लिए विशेषज्ञों की समितियां भी बनाई जा सकती हैं। इन समितियों में इस क्षेत्र में काम करने वाले लोगों और ‘फैक्ट चेकिंग’ एजेंसियों को शामिल करना होगा, जो सूचनाओं की सच्चाई का पता लगाने का तंत्र तैयार कर चुके हैं। ये समितियां राज्य या क्षेत्र के आधार पर बनाई जानी चाहिए, ताकि वे छात्रों को ध्यान में रखकर कारगर ‘मॉड्यूल’ तैयार कर सकें। ‘ट्रेनिंग मॉड्यूल’ भी व्यापक होना चाहिए और हर साल उसकी समीक्षा की जानी चाहिए, ताकि बदलती हुई ज़रूरतों के अनुसार उसमें आवश्यक परिवर्तन लाया जा सके।

छात्रों के विकास में माता-पिता, अभिभावकों और परिवार के बुजुर्गों की बड़ी भूमिका होती है। बच्चों में इंटरनेट के बढ़ते इस्तेमाल के बावजूद अलग-अलग अध्ययनों में पाया गया है कि बच्चे किसी भी सूचना के मामले में परिवार के सदस्यों पर सबसे अधिक भरोसा करते हैं। इसलिए शिक्षकों के प्रशिक्षण के साथ-साथ अभिभावकों को भी सूचनाओं को लेकर सवाल करने की आदत डालनी होगी। अभिभावकों को बच्चों को सवाल पूछने से रोकने की आदत त्यागनी होगी। खबरों का विश्लेषण करना सीखने से पहले छात्रों की उनमें दिलचस्पी जगानी होगी। यह भी समझना जरूरी है कि मीडिया और सूचना साक्षरता से अभिप्राय ‘मीडिया कंट्रोल’ नहीं है। छात्रों को किसी भी सूरत में सूचनाओं के लिए कुछ ही माध्यमों तक सीमित रहने की सलाह नहीं देनी चाहिए। मीडिया और सूचना साक्षरता का लक्ष्य यह होना चाहिए कि छात्र अपनी समझ बढ़ाते हुए सच्ची और झूठी खबरों में अंतर करना सीखें। हम ऐसे दौर में रह रहे हैं, जहां ग़लत सूचनाओं के प्रसार से अनेक प्रकार के सामाजिक वबाल खड़े हो रहे हैं। यहां तक कि उसका असर देश में होने वाले चुनावों पर भी पड़ रहा है। इसलिए छात्रों को सूचनाएं जुटाने, बांटने और विश्लेषण के ‘टूल्स’ से लैस करना होगा।

मीडिया और सूचना साक्षरता हमारे लिए भले ही अभी नई अवधारणा हो, परंतु विश्व के अनेक हिस्सों में कई वर्षों से इसे लेकर प्रयोग हो रहे हैं। मीडिया और सूचना साक्षरता का उद्देश्य सिर्फ मीडियाकर्मी तैयार करना नहीं है। इसका उद्देश्य उन लोगों तक मीडिया के काम करने के तरीकों की जानकारियां पहुंचाना है, जो संदेशों और जानकारियों का फायदा उठाने वाले हैं।

मीडिया साक्षरता का महत्त्व आज पहले से कहीं अधिक इसलिए भी हो गया है, क्योंकि बाज़ार और व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा की वजह से मीडिया का स्वरूप बहुत बदल चुका है। साथ ही साथ समाज में न्यू मीडिया इतना घुल-मिल चुका है कि यदि उसे इसके तौर-तरीकों से वाकिफ नहीं कराया गया, तो यह उसी के लिए नुकसानदेह साबित हो सकता है। सूचना साक्षरता किसी व्यक्ति की वह योग्यता है, जिससे वह जान जाता है कि उसे किस सूचना की जरूरत है और वह सूचना कहां मिलेगी। इसके अतिरिक्त सूचना साक्षरता से व्यक्ति में सूचना का मूल्यांकन करने तथा सूचना का प्रभावी ढंग से उपयोग करने की योग्यता भी विकसित होती है।

डिजिटल कंपनी केपीएमजी द्वारा मीडिया और एंटरटेनमेंट इंडस्ट्री पर कराये गए एक अध्ययन में दावा किया गया है कि अंग्रेजी भाषा के पाठकों का डिजिटल की तरफ मुड़ना अब लगभग बंद हो चुका है। इसलिए अनुमान है कि वर्ष 2030 तक भारतीय भाषाओं में डिजिटल उपयोगकर्ताओं की संख्या 50 करोड़ तक पहुंच जाएगी और लोग इंटरनेट का इस्तेमाल स्थानीय भाषा में करने लगेंगे। अगर सभी भाषाओं की बात करें, तो वर्ष 2030 तक भारत में 100 करोड़ लोग इंटरनेट से जुड़े होंगे। ये यूजर मुख्य रूप से गैर अंग्रेजी भाषी मोबाइल फोन उपभोक्ता और विकसित ग्रामीण क्षेत्रों से होंगे, जो 'ऑनलाइन कंटेंट' के लिए भुगतान करने को भी तैयार होंगे। विचार कीजिए, इनमें से कितने लोग सही और गलत सूचनाओं के अंतर को समझ पाएंगे और इस संख्या को देखते हुए हमारे लिए मीडिया और सूचना साक्षरता की कितनी ज्यादा आवश्यकता है।

डिजिटल मीडिया की भूमिका पर 'वी आर आल जर्नलिस्ट्स नाउ' पुस्तक के लेखक स्कॉट गांट का कहना है - "प्रेस की स्वतंत्रता के प्रावधान अब सिर्फ उन लोगों पर लागू नहीं होते, जिनके पास प्रिंटिंग प्रेस है, बल्कि ये उन पर भी लागू होने चाहिए, जिनके पास मोबाइल फोन, वीडियो कैमरा, ब्लॉगिंग सॉफ्टवेयर या ऐसी कोई भी तकनीक है, जिससे वे अपनी बात और सूचनाएं लोगों तक पहुंचा सकते हैं।" इन लोगों में ऐसे लोग भी बहुत बड़ी संख्या में होंगे, जो फेक न्यूज़ या प्रोपेगेंडा न्यूज़ या गलत सूचनाओं का प्रसार कर रहे होंगे। ब्रिटेन के जज लार्ड डेनिंग ने कहा था - "प्रेस की आज़ादी का मतलब यह नहीं होता कि प्रेस को किसी की प्रतिष्ठा नष्ट करने, भरोसा तोड़ने या न्याय की धारा को दूषित करने की आज़ादी दी जा सकती है।" यानी मीडिया को कहीं-न-कहीं अपना नियमन करना होगा। डिजिटल मीडिया का अतिवाद एक बड़े संकट का कारण भी बन सकता है। जो जनविश्वास मीडिया ने वर्षों की परंपरा से अर्जित किया है, वह खंडित हो सकता है। ऐसे में यह बहुत जरूरी है कि मीडिया से जुड़े लोग कहीं-न-कहीं अपनी सीमाओं पर भी बात शुरू करें। आचार संहिता पर भी बात करें और उसके पालन के लिए संस्थागत प्रयास हों। अगर हम आज की भाषा में बात करें तो लोग कहते हैं कि मीडिया एक 'प्रोडक्ट' है; लेकिन याद रखिए कि मीडिया अगर 'प्रोडक्ट' है, तो पाठक उपभोक्ता हैं और उपभोक्ता के भी कुछ अधिकार होते हैं। अगर वह माल खरीद रहा है, तो उसे जो माल दिया जा रहा है, उसकी गुणवत्ता में खामी होने पर उपभोक्ता को शिकायत करने का अधिकार प्राप्त है। 'इन्फोडेमिक' की समस्या को उजागर करता एक शोध आलेख इस अंक में शामिल किया गया है। उससे आपको इस मुद्दे पर कुछ जानकारी अवश्य मिलेगी।

आज जिस प्रकार अकादमिक जगत् में विदेशी अनुसंधान पद्धतियों का प्रभाव निरंतर बढ़ रहा है उससे हम भारतीयों के समक्ष एक गंभीर प्रश्न उत्पन्न हुआ है कि क्या प्राचीन भारतीय ज्ञान के अध्ययन में अनुसंधान पद्धतियों का उपयोग नहीं होता था? जब हम पश्चिम की अनुसंधान पद्धतियों के विकास पर नजर डालते हैं तो पता चलता है कि प्राचीन काल से ही भारत में अनुसंधान पद्धतियों का उपयोग होता रहा है। वेदों में विषय का वर्गीकरण 'मण्डल' में, रामायण का 'काण्डों' में, महाभारत का 'पर्वों' में, श्रीमद्भागवत का 'स्कन्धों' और गीता का 'अध्यायों' में किया गया है। यह आवृत्ति एवं परिवर्तन अनुसंधान पद्धति की ओर इशारा करती है। अनेक कारणों से मध्यकालीन भारत में अनुसंधान एवं अनुसंधान पद्धति पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया, जिसके कारण भारतीय अनुसंधान पद्धतियों में नवीन प्रवृत्तियों का विकास पर्याप्त मात्रा में नहीं हो सका है। आज आवश्यकता इस बात की है कि प्राचीन भारतीय तथा आधुनिक अनुसंधान पद्धतियों में समन्वय बैठाया जाए। इस विषय पर एक शोधपरक आलेख इस अंक में है। आशा है इससे इस मुद्दे पर विमर्श आगे बढ़ेगा। इस अंक में एक और महत्त्वपूर्ण आलेख है, जो जम्मू कश्मीर की लोक-नाट्य परंपरा भांड-पाथर से संबंधित है और स्पष्ट करता है कि लोकसंचार परंपरा का प्रयोग शांति स्थापित करने में कैसे हो सकता है।

इस अंक में एक और महत्त्वपूर्ण विषय पर सामग्री है, जो इस बहस से जुड़े तथ्यों पर प्रकाश डालती है कि क्या पत्रकारों के लिए किसी प्रकार की शैक्षिक योग्यता निर्धारित कर देने से मीडिया में उभर रही विसंगतियां दूर हो जाएंगी? इस बहस को 2012-13 में भारतीय प्रेस परिषद् के तत्कालीन अध्यक्ष न्यायमूर्ति श्री मार्कंडेय काटजू ने शुरू किया था। इस अंक में रघुवीर सहाय और आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की पत्रकारिता के संबंध में भी दो आलेख हैं, जो वर्तमान पत्रकारों को पत्रकारिता के समृद्ध मूल्यों से परिचित कराते हैं। इनके अलावा भी आलेख हैं जो उम्मीद है आपको पसंद आएंगे। आपकी प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा रहेगी।

-प्रो. (डॉ.) प्रमोद कुमार

प्रकाशन विभाग
भारतीय जन संचार संस्थान
अरुणा आसफ अली मार्ग, न्यू जेएनयू कैंपस, नई दिल्ली-110067

संचार माध्यम

भारतीय जन संचार संस्थान की अर्द्धवार्षिक शोध पत्रिका

खंड 32 (2) | आईएसएसएन: 2321-2608 | जुलाई-दिसंबर 2020

विषय सूची

1. कोविड महामारी और इन्फोडेमिक: एक अध्ययन — 1
शिव प्रकाश कटियार

2. प्राचीन भारतीय ज्ञान और अनुसंधान पद्धतियां — 6
ओमप्रकाश सिंह

3. वैचारिक सरोकार के पत्रकार रघुवीर सहाय — 11
सत्यप्रकाश सिंह

4. आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की पत्रकारिता — 18
राजकुमार उपाध्याय 'मणि'

5. स्वतंत्रता संग्राम में भाषाई समाचार पत्रों के योगदान का अध्ययन — 22
वीरेंद्र आजम

6. शांति-निर्माण और संघर्ष-समाधान में लोक संचार की भूमिका — 31
जयप्रकाश सिंह

7. महामारी, साफ-सफाई, स्वास्थ्य जागरूकता और महात्मा गांधी — 38
आशाराम खटीक और सुबोध कुमार

8. पत्रकारों के लिए व्यावसायिक योग्यताः कितनी आवश्यक, कितनी व्यावहारिक — 43
प्रमोद कुमार

9. आयातित एवं बाजार के प्रभाव से ग्रसित स्वातंत्र्योत्तर भारतीय पत्रकारिता और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के प्रश्न का विरोधाभासः एक आलोचनात्मक विवेचन — 50
संजय वर्मा

10. हंगामा और विवादित बयानों पर सिमटती संसदीय पत्रकारिता — 56
हरीश चंद्र लखेड़ा

11. इंटरनेट पर उपलब्ध हिंदी समाचार-पत्रों के स्वरूप का अध्ययन — 60
उमाशंकर मिश्र

12. भारतीय मुक्त विश्वविद्यालयों के संदर्भ में न्यू मीडिया आधारित वीडियो व्याख्यान के उपयोग में आ रही बाधाओं का अध्ययन — 69
मयंक गौड़

13. उच्च शिक्षा में वेब रेडियो के महत्त्व का अध्ययन — 75
रेनू *श्रीवास्तव*

14. कोरोना काल में संसद के मानसून सत्र 2020 की कार्यवाही की दैनिक समाचार पत्रों में कवरेज का विश्लेषण — 81
अमरेंद्र कुमार और ओम शंकर

15. महामारी के दौर में स्वास्थ्य संचार — 86
चंद्रशेखर और सुबोध कुमार

16. भारत के श्रम बल में महिलाओं की भागीदारी और उनके सशक्तीकरण में योजनाओं की भूमिका — 89
सरोज सिंह और ओम प्रकाश

18. राष्ट्रीय शिक्षा नीति में शिक्षा संचार तकनीक की परिकल्पना और प्रयोग : एक अध्ययन — 95
बिजेंद्र कुमार

19. आईआईएमसी गतिविधियां — 99

20. लेखकों के लिए दिशा निर्देश — 108

संचार माध्यम | खंड 32(2): 1-5, जुलाई-दिसंबर 2020
आईएसएसएन: 2321-2608

कोविड महामारी और इन्फोडेमिक: एक अध्ययन

डॉ. शिव प्रकाश कटियार[1]

सारांश

आज पूरा विश्व कोरोना संक्रमण का सामना कर रहा है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने इसे महामारी घोषित किया है। कोविड-19 महामारी के समय विश्व स्तर पर सूचनाओं का आदान-प्रदान बड़ी मात्रा में हुआ। इंटरनेट और सोशल मीडिया तकनीक ने सूचनाओं को साझा करना बहुत ही सरल कर दिया है, जिसके कारण बड़ी मात्रा में सूचनाओं का आदान-प्रदान होता रहा है। सोशल मीडिया सूचनाओं के आदान-प्रदान में भेदभाव नहीं करता। कोई भी इसका इस्तेमाल कर सकता है। आमजन सूचनाएं प्राप्त और साझा कर सकते हैं और साथ ही साथ विभिन्न सरकारी, गैर सरकारी और मीडिया संस्थाओं द्वारा भी इसका भरपूर उपयोग किया जा रहा है। सोशल मीडिया सूचनाओं का एक बड़ा विकल्प बनकर उभरा है और कोरोना महामारी के दौरान इस माध्यम पर सूचनाओं का बहुत भारी मात्रा में आदान-प्रदान हुआ है, जिसमें कोरोना से बचाव, वैश्विक स्तर पर इसकी स्थिति, मृतकों की संख्या आदि सूचनाएं लगातार लोगों को मिलती रही हैं। लेकिन इसका एक पहलु और भी है, अगर सूचनाओं का आदान-प्रदान इतनी बड़ी मात्रा में हो रहा है तो जाहिर है कि उनमें से कई सूचनाएं गलत भी होती हैं और सही और गलत सूचना के बीच भेद करना पढ़े-लिखे लोगों के लिए भी मुश्किल साबित हुआ है। अतः सही सूचना का चयन करना एक चुनौती का काम है। इसके चलते आज कई तरह के फैक्ट चेक पोर्टल अस्तित्व में आए हैं जो लोगों को सूचना की वास्तविकता के बारे में अवगत कराते हैं। आज पूरा विश्व, इस महामारी के साथ-साथ गलत सूचना की अत्यधिक उपलब्धता, जिसे विश्व स्वास्थ्य संगठन ने 'इन्फोडेमिक' की संज्ञा दी है, का भी सामना कर रहा है। इस कारण 'इन्फोडेमिक' को समझना जरूरी हो जाता है। इस परिप्रेक्ष्य में, यह शोध लेख कोविड-19 महामारी के समय 'इन्फोडेमिक' से उत्पन्न परिस्थितियों और उनके द्वारा होने वाले परिणाम पर प्रकाश डालने का प्रयास करता है।

संकेत शब्द : कोविड-19, इन्फोडेमिक, महामारी, संक्रमण, संचार

प्रस्तावना

कोरोना वायरस (COVID-19) एक वैश्विक महामारी के रूप में तबाही मचा चुका है। यह एक नई बीमारी है, जो वर्ष 2019 में खोजी गई। इसलिए इसका नाम कोविड-19 रखा गया। इसके सभी नाम विश्व स्वास्थ्य संगठन के द्वारा रखे गए। इस वायरस को सर्वप्रथम चीन के वुहान शहर में दिसंबर 2019 में खोजा गया। इसके बारे में महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि इस वायरस के स्रोत का अभी तक पता नहीं लगाया जा सका है। 11 मार्च, 2020 को विश्व स्वास्थ्य संगठन ने कोविड-19 को एक वैश्विक महामारी घोषित किया था। भारत में कोविड-19 का पहला मामला 30 जनवरी, 2020 को केरल में पाया गया। इस वायरस की खोज करने वाले चीनी चिकित्सक ली. वेनलियांग का इसी बीमारी से दिनांक 6.2.2020 को निधन हो गया था। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार, स्वास्थ्य सिर्फ रोग या दुर्बलता की अनुपस्थिति ही नहीं, बल्कि एक पूर्ण शारीरिक, मानसिक और सामाजिक खुशहाली की स्थिति है। स्वस्थ व्यक्ति रोजमर्रा की गतिविधियों से निपटने के लिए और किसी भी परिवेश के मुताबिक अपना अनुकूलन करने में सक्षम होते हैं। रोग की अनुपस्थिति एक वांछनीय स्थिति है, लेकिन यह स्वास्थ्य को पूर्णतया परिभाषित नहीं करता है। यह स्वास्थ्य के लिए एक कसौटी नहीं है और इसे अकेले स्वास्थ्य निर्माण के लिए पर्याप्त भी नहीं माना जा सकता है। समग्र स्वास्थ्य की निम्न परिभाषा हैः 'शारीरिक फिटनेस स्वस्थ होने का एक मात्र आधार नहीं है, स्वस्थ होने का मतलब मानसिक और भावनात्मक रूप से फिट होना है। स्वस्थ रहना आपकी समग्र जीवनशैली का हिस्सा होना चाहिए। एक स्वस्थ जीवनशैली जीने से पुरानी बीमारियों और दीर्घकालिक बीमारियों को रोकने में मदद मिल सकती है।' आज बड़ी संख्या में लोग बीमारी के न होने को स्वास्थ्य से जोड़कर देखते हैं, जबकि शारीरिक, मानसिक, मनोवैज्ञानिक, आध्यात्मिक और सामाजिक दृष्टि से सही और संतुलित होने का नाम स्वास्थ्य है।

शोध उद्देश्य

1. कोविड-19 महामारी में इन्फोडेमिक के प्रभाव का अध्ययन करना।
2. इन्फोडेमिक से बचाव हेतु सुझाव प्रस्तुत करना।

शोध पद्धति

इस शोध पत्र को लिखने में विषयवस्तु विश्लेषण पद्धति का प्रयोग किया गया है। आंकड़ों के संग्रहण हेतु विभिन्न स्रोतों जैसे समाचारपत्रों, वेबसाईट और अन्य साहित्य का प्रयोग किया गया है। इस शोध पत्र में स्थानीय, राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय अखबारों तथा विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्टों पर आधारित झूठी अफवाहों तथा गलत सूचनाओं को शामिल किया है। ऐसा इसलिए किया गया है, क्योंकि गलत सूचनाओं व झूठी अफवाहों पर अन्य प्रकाशन सीमित थे

इन्फोडेमिक

महामारी के इतिहास में कोविड-19 एक ऐसी महामारी है, जिसमें तकनीक व सोशल मीडिया का प्रयोग लोगों तक सही व सुरक्षित सूचना

[1]प्रोजेक्ट जूनियर कंसलटेंट, नेशनल इंस्टिट्यूट ऑफ एजुकेशनल प्लानिंग एंड एडमिनिस्ट्रेशन, श्री अरविंदो मार्ग, नई दिल्ली-110016। ईमेल : shivprakashkatiyar@gmail.com

प्रदान करने के लिए वृहद स्तर पर किया गया। इसके साथ ही तकनीक, जो कि सभी लोगों को जोड़े रहती है, की सहायता से ऑनलाइन व ऑफलाइन माध्यम से अत्यधिक सूचना उपलब्ध करा दी जाती है। इस अत्यधिक सूचना को ही 'इन्फोडेमिक' कहा जाता है। इन्फोडेमिक में सही व गलत, दोनों प्रकार की सूचनाएं सम्मिलित होती हैं। जहां एक ओर सही सूचना कोविड-19 से लड़ने के लिए उपयोगी है, वहीं गलत सूचना व दुष्प्रचार लोगों के शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। यह लोगों में कलंक का भाव पैदा करता है व साथ ही स्वास्थ्य सुधार की दिशा में किए जा रहे प्रयासों के लिए भी खतरा उत्पन्न करता है। इसके अतिरिक्त महामारी को रोकने के लिए किए जा रहे प्रयासों के प्रभाव को कम करता है। गलत सूचना की वजह से लोगों की जान भी चली जाती है। बिना सही जानकारी व उचित विश्वास के किए जा रहे नैदानिक परीक्षण व प्रतिरक्षण अभियान अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पाएंगे। इस तरह, कोरोना वायरस को समाप्त कर पाना मुश्किल होगा। अतः गलत सूचना से कोविड-19 पर चल रहा सार्वजनिक वाद-विवाद अपने लक्ष्य से भटक सकता है जो हेट स्पीच, संघर्ष का खतरा, हिंसा, मानव अधिकारों का उल्लंघन, प्रजातंत्र के लिए खतरा व सामाजिक एकता के लिए खतरा उत्पन्न करता है। इसके साथ-साथ यह व्यावसायिक व आर्थिक नुकसान भी करता है। इस संदर्भ में यूनाइटेड नेशंस के सेक्रेटरी जनरल ने अप्रैल 2020 में यूनाइटेड नेशंस कम्युनिकेशंस रेसपांस इनीशिएटिव जारी किया। इसके अतिरिक्त यूनाइटेड नेशंस ने 11 मई, 2020 को 'गाइडेंस नोट ऑन एड्रेसिंग एंड काउंटरिंग कोविड-19 रिलेटेड हेट स्पीच' जारी किया।

वर्ल्ड हेल्थ एसेंबली ने मई 2020 में कोविड-19 की प्रतिक्रिया के संबंध में संकल्प डब्ल्यू. एच. ए. 73.1 पारित किया, जिसमें कोविड-19 महामारी पर नियंत्रण के लिए इन्फोडेमिक का प्रबंधन करना एक महत्त्वपूर्ण भाग माना गया (विश्व स्वास्थ्य संगठन, 2020, पृष्ठ 1-3)।

विश्व स्वास्थ्य संगठन कोविड-19 महामारी के संक्रमण को कम करने के लिए प्रयासरत है, लेकिन गलत सूचना का वैश्विक संक्रमण, जो सोशल मीडिया व अन्य माध्यमों से फैल रहा है, जन स्वास्थ्य के लिए गंभीर समस्या पैदा कर रहा है। 'हम केवल एक संक्रमण का ही सामना नहीं कर रहे, हम एक इन्फोडेमिक का भी सामना कर रहे हैं।' यह वक्तव्य डब्ल्यू. एच. ओ. डायरेक्टर जनरल टेडरोस अधानम घेबरेयेसस, के द्वारा 15 फरवरी, 2020 को मुनिच सिक्योरिटी कांफ्रेंस में दिया गया। यह जानना महत्त्वपूर्ण है कि इन्फोडेमिक में गलत व सही दोनों प्रकार की सूचनाएं निहित हैं। यूनीसेफ के अनुसार बड़ी मात्रा में गलत सूचना का प्रसारण सोशल मीडिया व परंपरागत संचार माध्यम के द्वारा किया जाता है। वर्तमान समय में परंपरागत संचार माध्यमों की यह भूमिका है कि वे जनसाधारण को साक्ष्य आधारित सूचनाएं उपलब्ध कराएं। यह सूचना सोशल मीडिया के द्वारा भी उपयोग में लाई जा सकती है (प्रथम वर्ल्ड रिपोर्ट, 2020, पृष्ठ 1)।

कोविड-19 महामारी ने एक अतिरिक्त समस्या 'इन्फोडेमिक', जहां विभिन्न मीडिया पोर्टल स्वास्थ्य के बारे में बिना किसी उपयुक्त स्रोत के गलत सूचना उपलब्ध कराते हैं, पैदा की है। महामारी की गंभीरता के कारण बड़ी संख्या में शैक्षिक लेख विभिन्न लेखकों व जर्नलों के द्वारा बगैर किसी समकक्ष समीक्षा प्रक्रिया के छापे गए। इस कारण गलत सूचना को बढ़ावा मिला, जबकि कोविड-19 को रोकने व स्वास्थ्य संबंधी जागरूकता बढ़ाने संबंधित नीतियों को बनाने के लिए विश्वसनीय सूचना की आवश्यकता है। ट्विटर पर 6 व 7 फरवरी, 2020 को प्रकाशित 1000 ट्वीट का विश्लेषण किया गया और पाया गया कि वैज्ञानिकतापूर्ण ट्वीट की तुलना में गलत सूचना का ट्वीट ज्यादा किया गया (मेहदले एवं फारेस, 2020, पृष्ठ 1-11)।

वर्तमान समय में सोशल मीडिया के प्रभावी होने के कारण गलत सूचना का प्रसारण भी तेजी से होता है। अतः कोविड-19 के दौरान विज्ञान आधारित संचार की आवश्यकता है। इस संदर्भ में विश्व स्वास्थ्य संगठन ने गलत तथ्यों को बेनकाब करने के लिए 'मिथ बसटर्स' नाम से एक पोर्टल की शुरुआत की। द यूनाइटेड स्टेट्स सेंटर फॉर डिसीज कंट्रोल एंड प्रिवेंशन ने कोविड-19 की अद्यतन जानकारी व इससे जुड़े समाचार उपलब्ध कराने के लिए एक वेबसाइट का निर्माण किया। यह वेबसाइट 'स्टाप द स्प्रेड आफ रियूमर्सः नो द फैक्ट्स अबाउट कोरोना वायरस डिजीज' विषय पर आधारित है। गूगल ने भी कोविड-19 से बचाव संबंधी जानकारी उपलब्ध कराई।

कोविड-19 इन्फोडेमिक यह दर्शा चुका है कि सूचना की सामग्री को नियंत्रित करने की आवश्यकता है। झूठी सूचना और अफवाह डर व अनिश्चितता को जन्म देती हैं। महामारी के समय में डर व अनिश्चितता का बढना एक गंभीर मामला है। अनजाने में फैलाई गई सूचना, गलत सूचना एवं जानबूझकर फैलाई गई सूचना, दुष्प्रचार की श्रेणी में आती है। वैश्वीकरण के कारण, एक देश में फैली झूठी सूचना दूसरे देश में आसानी से पहुंच जाती है। सोशल मीडिया पर प्रसारित होने वाली सूचना में किसी भी प्रकार से तथ्यों को जांचने की व्यवस्था भी नहीं होती है। अतः आम जनता को उपयुक्त सूचना देना आवश्यक हो जाता है (जनुएल, 2020, पृष्ठ 1-5)।

लॉकडाउन के दौरान जब लाखों लोग अपने घरों में बंद थे, तब लोगों का डिजिटल स्क्रीन पर ज्यादा समय व्यतीत होता था। अधिक समय व्यतीत होने से कोरोना वायरस के बारे में चिंता व तनाव बढ़ जाता था। जर्नल आफ ट्रेवल मेडिसिन में छपी अभय कदम व सचिन अत्रे (2020) की समीक्षा यह बताती है कि भारत में लाकडाउन के दौरान सोशल मीडिया की पहुंच कोविड-19 के विशेष संदर्भ में तीन गुना तक बढ़ चुकी है। अतः हमें जागरूक रहने की आवश्यकता है, जिससे सोशल मीडिया हमारी मानसिक शांति को भंग न कर सके (बनर्जी, 2020, पृष्ठ 1-4)।

महामारी के लिए जांच की सुविधा उपलब्ध है व शायद भविष्य में इसका कोई उपचार भी उपलब्ध हो जाएगा, लेकिन इन्फोडेमिक के लिए वर्तमान समय में कोई भी उपचार दिखाई नहीं दे रहा है। इस समय मोबाइल फोन ज्यादा उपयोगी बन चुका है व लोग इस पर ज्यादा समय बिता रहे हैं। यह सूचना व सेवा प्राप्त करने का सर्वोपयोगी साधन बन चुका है। यद्यपि कई लोग समाचार पत्रों व टेलीविजन को विश्वसनीय मानते हैं। मोबाइल पर तीन प्रकार की झूठी खबरें प्रसारित हो रही हैं- प्रथमः स्वयं को कोविड-19 से बचाने के तरीकों के बारे में अफवाह, द्वितीयः फ्री इंटरनेट पैक व अन्य

सुविधाएं प्राप्त करने के बारे में झूठी खबरें फैलाना, तृतीयः समुदाय विशेष के बारे में कोविड-19 महामारी फैलाने के आरोपों के विरुद्ध घृणा फैलाने संबंधी ख़बरें (सिंह, 2020)।

कोविड-19 महामारी के समय मीडिया की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। मीडिया ने महामारी विषय पर कई तरह की सार्वजनिक चर्चाएं करवाईं। परिणामस्वरूप मीडिया ने लोगों के एक बड़े समूह को सही जानकारी उपलब्ध कराने में मदद की। कोरोना के संबंध में जागरूकता इंटरनेट वेब पोर्टल, एफ. एम. रेडियो व समाचार चैनलों के माध्यम से प्रसारित दो महत्त्वपूर्ण वीडियो 'हाउ इंडिया इज़ डूइंग इन दी बैटल अगेंस्ट कोरोना वायरस?' और 'कोविड-19-कैन इंडिया फ्लैटन द कर्व' के माध्यम से फैलाई गई। कोविड-19 महामारी के समय सोशल मीडिया की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। सोशल मीडिया प्लेटफार्म जैसे फेसबुक, ट्विटर और व्हाट्सएप पिछली महामारियों के समय अस्तित्व में नहीं थे, परंतु इस समय इन प्लेटफार्मो ने हम सब को 'सोशल डिस्टेंसिंग' के समय जोड़े रखा। हम सबको भावनात्मक रूप से भी सहायता मिली। विभिन्न संगठनों जैसे डब्लू.एच.ओ. व अन्य ने सभी देशों के लिए दिशा निर्देश जारी किए कि वे अपने नागरिकों को इस प्रकोप के समय सोशल मीडिया के उपयोग हेतु जागरूकता पैदा करें। गलत सूचना के प्रसारण के प्रभाव का अध्ययन करने के लिए कई अध्ययन किए गए व कई परियोजनाएं चलाई गईं। भारत में गुरु काशी विश्वविद्यालय पंजाब ने ट्विटर पर व्यक्त भावनाओं के विश्लेषण से संबंधित एक परियोजना चलाई। दिल्ली आधारित डिजिटल लैब-वोएगर इनफोसेक (Voyager Infosec) ने तबलीगी जमात की घटना के एक सप्ताह के अंदर वितरित की गई 3000 क्लिप का परीक्षण किया। लॉकडाउन के दौरान महाराष्ट्र साइबर सेल ने व्यक्तियों के खिलाफ झूठी खबर व हेटस्पीच फैलाने के कारण 115 मामले दर्ज किए। महाराष्ट्र सरकार ने कोविड महामारी के बारे में झूठी खबर व अफवाह फैलाने के संबंध में 'क्या करें व क्या न करें' के बारे में एडवाइजरी जारी की। इन्फोडेमिक के मामले में असम में पुलिस ने 52 मामले दर्ज किए व 25 लोगों को सोशल मीडिया पर झूठी खबर फैलाने के कारण गिरफ्तार किया। साइबर सेल व पुलिस बल इस बात को सुनिश्चित कर रही है कि झूठी सूचना फैलाने वाला कोई भी व्यक्ति बिना सजा के छूटने न पाए (वशिष्ट, 2020, पृष्ठ 3-4)।

कोविड-19 मानसिक बीमारियों को भी बढ़ा रहा है जिससे लोगों में चिंता व घबराहट बढ़ रही है। वर्ष 2003 में सार्स के प्रकोप के दौरान शोधार्थियों ने मानसिक स्वास्थ्य संबंधी चिंताओं का भी अध्ययन किया था, जिनमें अवसाद, तनाव, मनोविकृति तथा पैनिक अटैक प्रमुख रूप से पाए गए। ये बीमारियां उत्पन्न होने का प्रमुख कारण महामारी के परिणाम की चिंता के साथ-साथ लोगों का सामाजिक एकांतवास में रहना, बीमारी होने से स्वयं के साथ भेदभाव हुआ मानना तथा दूसरों को भी संक्रमित करने का अपराधबोध शामिल है। संक्रामक रोग का सभी लोगों पर गहरा प्रभाव पडता है। इन बीमारियों को लेकर हमारे निर्णय चिकित्सीय ज्ञान पर आधारित न होकर सामाजिक समझ पर आधारित होते हैं। वर्तमान समय में ऑनलाइन सूचनाएं प्राप्त करने का चलन बढ़ा है। उदाहरण के तौर पर, ट्विटर पर इबोला और स्वाइन फ्लू के प्रकोप का विश्लेषण किया गया और पाया गया कि ट्विटर यूज़र ने इन दोनों बीमारियों को लेकर गहरे डर का इजहार किया। बढ़ती मानसिक स्वास्थ्य संबंधी बीमारियों के कारण इसके बारे में जागरूकता फैलाने की आवश्यकता महसूस की गई। विश्व में जागरूकता बढ़ाने के उद्देश्य से प्रति वर्ष 10 अक्तूबर को विश्व मानसिक स्वास्थ्य दिवस मनाया जाता है। विश्व मानसिक स्वास्थ्य संघ ने वर्ष 1992 में इस दिवस की स्थापना की थी (दैनिक जागरण, नई दिल्ली, 2020, पृष्ठ 3)। कोविड-19 महामारी इतनी विकराल थी कि इसने मानसिक बीमार लोगों की संख्या दोगुनी कर दी है। इसका कारण देश में अवसाद, तनाव व घबड़ाहट का व्याप्त होना है। यह सब घटित होने के पीछे कोरोना का डर, देश में की गई बंदी, डॉक्टरों व दवाई की कमी, बड़ी आबादी को रोजी-रोटी की चिंता व अन्य कारण भी हैं।

अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान, नई दिल्ली के प्रोफेसर डॉ. राजेश सागर के अनुसार देश में कोरोना से पहले 3.5 से 5 फीसद लोग अवसाद से पीड़ित थे। अब यह संख्या करीब 10 फीसद हो गई है। इस तरह तनाव व घबराहट की बीमारी भी दो से तीन गुना बढ़ी है। इस कारण भविष्य में आत्महत्या के मामले भी बढ़ने की आशंका है। इंडियन साइकेट्रिक सोसायटी ने लॉकडाउन के दौरान 1685 लोगों पर ऑनलाइन सर्वे किया था, जिसमें 38.2 फीसद लोगों में घबराहट की समस्या पाई गई। वहीं 10.5 फीसद लोग अवसाद से पीड़ित पाए गए। मॉडरेट स्तर का अवसाद तो 74 फीसद लोगों में पाया गया। इसका कारण यह है कि लोग कोरोना से भयभीत थे, काम-काज बंद था, कारोबार बंद था तथा कई लोगों की नौकरियां भी चली गई थीं (दैनिक जागरण, नई दिल्ली, 2020, पृष्ठ 4)।

इंडोनेशिया में सोशल मीडिया पर लोगों को स्वयं झूठी सूचनाओं को पहचानने की क्षमता पर किए गए अनुभवजन्य अनुसंधान (एंपिरिकल रिसर्च) विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि लोगों की यह क्षमता उनकी आमदनी, शिक्षा, इंटरनेट प्रयोग करने का कौशल तथा सूचनाओं को जांचने के दृष्टिकोण पर निर्भर करती है। इस शोध से यह साबित होता है कि लोग स्वयं झूठी सूचनाओं के समाधान में महत्त्वपूर्ण हैं। एक दूसरे अध्ययन ने भी यह साबित किया कि 'एवरीडे यूज़र' सोशल मीडिया पर फैल रही स्वास्थ्य संबंधी झूठी सूचनाओं को दूर करने की क्षमता रखते हैं। ये दोनों अध्ययन साबित करते हैं कि वे कन्ज्यूमर, जो झूठी सूचनाओं को प्रसारित करने में मुख्य भुमिका निभाते हैं, वे झूठी सूचनाओं को रोकने में सक्षम हैं (स्वामीनाथन, 2020, पृष्ठ 1-10)।

अफवाहों की महामारी स्वास्थ्य के लिए एक नया खतरा उत्पन्न करती है, इसलिए जन स्वास्थ्य की शब्दावली में एक नया शब्द इन्फोडेमिक जुड़ गया है। इन्फोडेमिक की परिभाषा इस प्रकार हैः सभी प्रकार की तेजी से फैलने वाली सूचना अफवाहों, गपशप और अविश्वसनीय सूचना को शामिल करते हुए। इसके फैलने से संदेह, चिंता तथा घबराहट पैदा होती है। यह इस संदर्भ में भी महत्त्वपूर्ण है कि ये सभी झूठी खबरें कोविड-19 महामारी के समय में फैल रही हैं। महामारी की तरह इन्फोडेमिक का प्रबंधन किया जा सकता है। क्षेत्र में फैली महामारी का प्रकोप प्रतिक्रिया का महत्त्वपूर्ण भाग है। इसके तीन प्रमुख क्षेत्र हैं: कः स्वास्थ्य संबंधी

धमकियों को पहचानना व उनकी निगरानी करना, खः प्रकोप के बारे में जानकारी तथा गः शमन तथा नियंत्रण के लिए क्रिया कलाप। इसी तरह, इन्फोडेमिक का सफलतापूर्वक प्रबंधन निम्नलिखित बिंदुओं पर निर्भर करता हैः कः उनको पहचानना तथा निगरानी करना, खः उनका विश्लेषण करना तथा गः उनके नियंत्रण तथा शमन संबंधी उपाय (विश्व स्वास्थ्य संगठन, 2020, पृष्ठ 34)।

कई लोग विज्ञान अथवा विज्ञान से संबंधित सूचना के बारे में लिखते हैं, लेकिन इनमें से प्रत्येक व्यक्ति इस तरह से प्रशिक्षित नहीं होता है कि वह साक्ष्य का उचित मूल्यांकन, शब्दजाल की व्याख्या करना अथवा सांख्यिकी की रिपोर्ट को प्रस्तुत करना, जैसे कि विशेषज्ञ विज्ञान पत्रकार करते हैं, कर पाए। इस तथ्य पर ध्यान देने की जरूरत है कि मूलभूत स्रोत से जानकारी की व्याख्या, संशोधन और उसकी उपेक्षा किस प्रकार से की गई है। यदि इस जानकारी के साथ मूलभूत स्रोत का संदर्भ दिया गया है, तब यह एक अच्छा संकेत है कि लिखने वाला व्यक्ति वास्तव में यह सब समझता है। जानकारी के स्वभाव को देखते हुए दूसरे मीडिया चैनलों पर यह देखा जा सकता है। आदर्श रूप से नए वैज्ञानिक शोधों पर ऐसे लोगों से स्वतंत्र टिप्पणी, जो इस कार्य में शामिल नहीं हैं, ली जाती है। वैज्ञानिक होने का मतलब यह नहीं है कि वे किसी भी ऐसे कार्य पर टिप्पणी कर सकते हैं, जिसमें उन्होंने प्रशिक्षण या अनुभव नहीं लिया हो (हजल्तन, 2020, पृष्ठ1-4)।

वैज्ञानिक कोविड-19 से संबंधित झूठी सूचनाओं के ज्वार को रोकने में सक्षम हैं। कोविड-19 से संबंधित झूठी सूचनाओं को रोकने में नीतियां बनाने वाले लोगों की गलत नीतियां लागू होने से बचाने में, महामारी की जनता में समझ बढ़ाने और लोगों की जिंदगी बचाने में वे मदद कर सकते हैं। वर्तमान समय में वैज्ञानिकों का एक महत्त्वपूर्ण कार्य है कि वे अपना कार्य व विशेषज्ञता जनता के साथ साझा करें। झूठी सूचनाओं को पहचानने के 8 तरीके हैं: कः स्रोत संदेह खः खराब भाषा गः भावनात्मक लगाव घः मूर्खों का सोना ङः झूठा लेखा चः ज्यादा बांटना छह: कीमत वसूल लेना तथा जः तथ्यों की जांच करना (फ्लेमिंग, 2020, पृष्ठ 155-156)।

झूठी सूचना के लक्षण

झूठी सूचना के निम्नलिखित लक्षण हैं:- डर, संदेह व घबराहट, अधिक साझा की जाने वाली सूचना और स्थिति की गंभीरता से इनकार करना।

कोरोना काल में फैलाई गई प्रमुख झूठी खबरें/अफवाहें

1. पोल्ट्री उत्पाद में कोविड-19 का वायरस उपलब्ध है व इससे कोरोना वायरस फैल सकता है। तत्पश्चात लोगों ने चिकन खाना बंद कर दिया। इस कारण किसानों व व्यापारियों ने बड़ी संख्या में मौजूद ब्रायलर को मार डाला।
2. एक ऑडियो क्लिप में दावा किया गया कि सब्जी विक्रेता अपनी सब्जियों/फलों पर थूक लगा कर कोरोना वायरस संक्रमण फैला रहे हैं।
3. संघ लोक सेवा आयोग की प्रारंभिक परीक्षा में सम्मिलित होने वाले परीक्षार्थियों को कोविड-19 का टेस्ट कराना पड़ेगा।
4. सरकारी राशन की दुकानों पर सामान समाप्त होने वाला है।
5. बाजार में नमक तथा अन्य खाद्य सामग्री की उपलब्धता नहीं हो पाएगी।
6. देवी-देवताओं के नाराज होने से कोरोना वायरस आया। कई लोग तो कोरोना देवी की पूजा करने लगे।
7. झाड़-फूक कराने से कोरोना वायरस नहीं फैलेगा।
8. भविष्य में लॉकडाउन होगा तथा भारत सरकार द्वारा इमरजेंसी लगा दी जाएगी एवं सेना का नियंत्रण होगा।
9. मुस्लिम युवाओं को पकड़कर उनमें कोरोना-19 पॉजिटिव ब्लड चढ़ाया गया।
10. लखनऊ, उत्तर प्रदेश में एक झूठे भगवान अहमद सिद्दीकी, जो स्वयं को कोरोना वाले बाबा बताते थे, ने दावा किया कि जो लोग मास्क नहीं पहन सकते हैं, वे लोग मेरे द्वारा दिया गया ताबीज पहन कर कोरोना से बच सकते हैं। बाद में इस बाबा को धोखाधड़ी के मामले में गिरफ्तार कर लिया गया।

निष्कर्ष

मीडिया रिपोर्टों के अनुसार, कोविड-19 महामारी के दौरान कई लोगों ने संक्रमित होने के डर से, नौकरियों के छूटने से, सामाजिक संपर्क में असमर्थता, अकेलापन, घूमने-फिरने में स्वतंत्रता का न होना तथा लॉकडाउन के दौरान अपने घरों में न जा पाने... आदि कारणों से आत्महत्या कर ली। अन्य कारणों के अलावा इसमें झूठी अफवाहों का फैलना भी शामिल है। दुनिया में कोरोना का कहर बढ़ता ही जा रहा है। विश्व के कई देशों में दूसरे दौर की महामारी बढ़ने पर प्रतिदिन नए मामलों में रिकार्ड उछाल आ रहा है। परिणामस्वरूप दुनिया में पहली बार दिनांक 30.10.2020 को एक दिन में रिकार्ड पांच लाख से ज्यादा नए संक्रमित मामले पाए गए। दुनिया में अमेरिका और ज्यादातर यूरोपीय देश दूसरे दौर की महामारी की चपेट में हैं। यूरोपीय देशों में संक्रमण की रोकथाम के लिए कई सख्त कदम उठाए गए हैं। फ्रांस और जर्मनी में तो लॉकडाउन तक लगा दिया गया है, जबकि ब्रिटेन, स्पेन और इटली में सख्त पाबंदी लगाई गई है। वहीं अमेरिका में महामारी फिर से बढ़ने लगी है। भारत में दिनांक 29.10.2020 को पहली बार 91 हजार से ज्यादा नए कोरोना रोगी पाए गए।

कोविड-19 महामारी के दौरान झूठी खबरें व अफवाहें फैलना एक गंभीर मामला है। यह न केवल लोगों के लिए सामाजिक व आर्थिक नुकसान कर रहा है, बल्कि लोगों में मानसिक बीमारियों को भी बढ़ा रहा है जो लोगों की जान भी ले रहा है। इन्फोडेमिक का सामना करने के लिए साक्ष्य आधारित व विश्वसनीय सूचना की आवश्यकता है। यह मामला विज्ञान संचार से संबंधित है। अतः आज वैज्ञानिकों का यह दायित्व है कि कोरोना के बारे में आम जनता को सरल भाषा में जानकारी उपलब्ध कराने का प्रयास करें। इसके अतिरिक्त सोशल मीडिया के संदेशों को नियंत्रित करने के लिए एक उचित नियम की भी आवश्यकता है। यह भी महत्त्वपूर्ण

है कि आम जनता भी इस बारे में अपनी जिम्मदारी निभाए व सोशल मीडिया का उपयोग सोच-समझ कर करे।

इन्फोडेमिक की समस्या के समाधान हेतु सुझाव

1. विश्व स्वास्थ्य संगठन, यूनाइटेड नेशंस आर्गेनाइजेशन तथा यूनाइटेड नेशंस इंटरनेशनल स्ट्रेटजी फार डिसास्टर रिडक्शन संयुक्त रूप से मिलकर इलेक्ट्रॉनिक व प्रिंट मीडिया तथा सोशल मीडिया के विशेष संदर्भ में फैल रही गलत जानकारी व झूठी अफवाहों को रोकने के लिए कानून बना सकती हैं, जिससे इनका प्रसार एक देश से दूसरे देश में रोका जा सके।
2. केरल के सरकारी स्कूलों ने एक अभिनव पहल 'फेक न्यूज क्लासेज' शुरू की है। यहां पर विद्यार्थियों को यह सिखाया जाता है कि वे झूठी सूचनाओं को कैसे पहचानें। इस सूचना का स्रोत क्या है? आदि प्रश्न पूछ कर भी झूठी सूचनाओं को आगे प्रसारित होने से रोका जा सकता है।
3. वैज्ञानिक व सामाजिक वैज्ञानिक मिलकर जन साधारण को सरल भाषा में जानकारी उपलब्ध करा सकते हैं।
4. जानकारी हिंदी व क्षेत्रीय भाषाओं में उपलब्ध कराई जा सकती है।
5. कोविड-19 से बचाव के बारे में सूचना उपलब्ध कराने के लिए जन अभियान चलाए जाने की आवश्यकता है।
6. कोविड-19 के भय के कारण देश में शोध के कोविडीकरण की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। अतः इस प्रवृत्ति से निकलने की आवश्यकता है एवं पहले से जारी शोधकार्य व शिक्षण को पूरा करने की आवश्यकता है।
7. हम सबको अपनी संस्कृति की ओर लौटकर प्राकृतिक जीवन जीने की आवश्यकता है।

संदर्भ

जनुएल एच. (2020). मलेशिया'स इन्फोडेमिक एंड पालिसी रेस्पोंस. *इंस्टिट्यूट ऑफ़ स्ट्रेटेजिक एंड इंटरनेशनल स्टडीज पालिसी ब्रीफ*, *इशू 2*-20, पृष्ठ 1-5.

दैनिक जागरण (2020, नवंबर 2). *कोरोनामीटर*. पृष्ठ 3.

दैनिक जागरण (2020, अक्टूबर 10). *मानसिक स्वस्थ्य के प्रति जन जागरूकता की जरूरत*, पृष्ठ 3.

दैनिक जागरण (2020, अक्टूबर 10). *महामारी में दोगुनी हुई मानसिक बीमार लोगों की संख्या*, पृष्ठ 4.

प्रथम वर्ल्ड रिपोर्ट (2020, फरवरी 29). जेनेवा, हाउ टू फाइट इन्फोडेमिक. *वॉल्यूम 395*, पृष्ठ 1.

बनर्जी, डी. (2020, मई 6). कोविड पेंडेमिक, सोशल मीडिया एंड डिजिटल डिस्टेंसिंग. *द न्यू इंडियन एक्सप्रेस*. पृष्ठ 1-4.

मेहदले, एन. एवं जावेद, एफ. (2020). लेवेरागिंग मीडिया एंड हेल्थ कम्युनिकेशन स्ट्रेटेजीज ओवरकम द कोविड-19 इन्फोडेमिक. *जर्नल ऑफ़ पब्लिक हेल्थ पॉलिसी*, पृष्ठ 1-11.

वशिष्ट, सी. (2020). द कोविड-19 पेन्डेमिक: एन एनालिसिस ऑफ़ सिचुएशन एंड मीडिया रेस्पोंस. *विवेकानंद इंटरनेशनल फाउंडेशन न्यूज लैटर*, अप्रैल 2020, पृष्ठ 3-4.

विश्व स्वास्थ्य संगठन (2020). मैनेजिंग एपिडेमिक्स: की फैक्ट्स अबाउट मेजर डेडली डिज़ीज. *प्रथम संस्करण*, पृष्ठ 34.

विश्व स्वास्थ्य संगठन (2020, सितम्बर 23). मैनेजिंग द कोविड-19 इन्फोडेमिक: प्रोमोटिंग हेल्थी बेहवियर्स एंड मितिगातिंग द हरम फ्रॉम मिसइनफार्मेशन एंड डिस इनफार्मेशन. *जॉइंट स्टेटमेंट डब्लूएचओ, यूएन यूनीसेफ, यूएनडीपी, यूनेस्को, यूएनएड्स, आईटीयू, यूएन ग्लोबल पल्स और आईएफआरसी*, पृष्ठ 1-3.

स्वामीनाथन, एम. (2020). रयूमर्स, मिस इनफार्मेशन एंड सेल्फ वेरिफिकेशन ऑफ़ फैक्ट्स इन द एज ऑफ़ कोविड-19, पृष्ठ 1-10.

सिंह, एस. (2020). लाइफ ड्यूरिंग इन्फोडेमिक: ए फोटो एस्से. *ईपीडब्लू*. https://www.epw.in/engage/article/life-during-info-demic-photo-essay, accessed on 2.11.2020 से पुनर्प्राप्त

हजल्तन, ए. (2020). हाउ टू रीड द न्यूज़ लाइक अ साइंटिस्ट एंड अवॉयड द कोविड-19 इन्फोडेमिक. *वर्ल्ड इकनॉमिक फोरम*, पृष्ठ 1-4.

संचार माध्यम | खंड 32(2): 6-10, जुलाई-दिसंबर 2020
आईएसएसएन: 2321-2608

प्राचीन भारतीय ज्ञान एवं अनुसंधान पद्धतियां

प्रो. ओम प्रकाश सिंह[1]

सारांश

आज भारतीय उच्च शिक्षा एवं अनुसंधान संस्थानों में शोध के लिए पश्चिमी शोध प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है। जब विद्यार्थी विदेशी अनुसंधान प्रविधियों का अध्ययन करते हैं तो एक प्रश्न स्वाभाविक उनके मन-मस्तिष्क में उठता है कि क्या भारत जैसे प्राचीन राष्ट्र में अपनी स्वयं की शोध प्रविधियां एवं संदर्भ की पद्धतियां नहीं रही हैं? क्या भारत का विपुल साहित्य भंडार बिना संदर्भ सूचियों के है? इन सभी प्रश्नों का समाधान आवश्यक है। पश्चिम की अनुसंधान पद्धतियों के विकास से पूर्व भारतीय परिवेश में अनुसंधान पद्धतियों का बखूबी उपयोग होता था। इसके अनेक उदाहरण हैं। वेदों में विषय का वर्गीकरण मंडल में, रामायण का कांडों में, महाभारत का पर्वो में, श्रीमद्भागवत का स्कंधों एवं गीता का अध्यायों में किया गया है। यह आवृत्ति एवं परिवर्तन अनुसंधान पद्धति को स्पष्ट करती है। समय के विकास एवं बाह्य हमलों तथा गुलामी के कारण मध्यकालीन अवधि में अनुसंधान एवं अनुसंधान पद्धति पर ध्यान नहीं दिया गया, जिसके कारण अनुसंधान पद्धतियों में नवीन प्रवृत्तियों का विकास पर्याप्त मात्रा में नहीं हो सका। आज इस कमी को पूरा करने की जरूरत है। यह भी आवश्यक है कि प्राचीन भारतीय तथा आधुनिक अनुसंधान पद्धतियों में समन्वय बैठाया जाए।

संकेत शब्द : पत्रकारिता, महावीर प्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्य, सरस्वती।

प्रस्तावना

अनुसंधान मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति का हिस्सा है। जो प्रश्न अथवा सम्भावनाएं हमारे सम्मुख उपस्थित होती हैं, मनुष्य उनके मूल तथ्यों की खोज करता है। मनुष्य अज्ञात तथ्यों को भी प्रकट एवं स्पष्ट करने का प्रयास करता है। इसी स्वाभाविक प्रवृत्ति का जुड़ाव जब ज्ञान अथवा सामाजिक व्यवहार से होता है, तो वहीं सामाजिक विज्ञानों का घेरा विशाल हो जाता है। प्रत्येक क्षेत्र में शोध हो और सामाजिक समस्याओं का स्पष्ट वैज्ञानिक सैद्धांतिक ढांचा उभरे, यही शोध का आधार है। मात्र मौलिक तथा नवीन समस्याओं से जुड़े ज्ञान की खोज ही अनुसंधान का लक्ष्य नहीं है। इसी कारण मौलिक अथवा विशुद्ध शोधों के अलावा संभावनात्मक ज्ञान की खोज भी अनुसंधान का लक्ष्य है (ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी, 1996, पृ. 1237)। इसी क्रम में कुछ समस्याओं के अनुरूप भी शोध किए जाते हैं। जिसे हम प्रवृत्तिमूलक नाम देते हैं, लेकिन प्रत्येक शोध का लक्ष्य सैद्धांतिक ही होता है। अनुसंधान से प्राप्त ज्ञान सिद्धांत के विकास में सहायक बने अथवा सिद्धांत का भाग बने यह महत्त्वपूर्ण होता है।

इस विवेचन के क्रम में सिद्धांत को भी समझना जरूरी है। सिद्धांत वास्तव में किसी व्यवहार अथवा वस्तु या समस्या के विषय में विचारों अथवा मतों के सामान्यीकरणों का समुच्चय (योग) है। इस प्रकार हम सरल शब्दों में कह सकते हैं कि सिद्धांत वास्तव में विचार आधारित अवधारणा अथवा दृष्टि है, जो कि सामान्यीकृत स्थिति को व्यक्त करती है। सिद्धांतों को समझने के बाद संपूर्ण संरचना की जानकारी इस कारण ज्ञात हो जाती है, क्योंकि सिद्धांत एक सामान्यीकरण व्यवहार अथवा प्रक्रिया है। सिद्धांत मूलतः मानसिक दृष्टि से संबद्ध होते हैं। इस प्रकार सिद्धांतों का संबंध किसी वस्तु, समस्या अथवा विषय से जुड़ी उस मानसिक तस्वीर से है, जो मनुष्य के मानस पटल पर उभरती है। वैसे मनुष्य जो कुछ सोचता है, देखता है या सुनता है, सभी का बिंब मनुष्य के मस्तिष्क में तो बनता ही है, लेकिन इस मस्तिष्कीय बिंबन की प्रक्रिया में मनुष्य एक ही होता है। सिद्धांत मानसिक विम्बन की एकाकी दशा अथवा अवस्था नहीं है। सिद्धांत तो उस मानसिक बिंबन की सामूहिक दशा को व्यक्त करता है, जो उसको समझने वाले अथवा जानने वाले सभी लोगों के मन में समान रूप से उभरता है।

दर्शन एवं सिद्धांत की चर्चा भी करना जरूरी है। दर्शन एक मानसिक दृष्टि है, परंतु सिद्धांत सामान्यीकृत मानसिक दृष्टि का समुच्चय है। दर्शन में सामान्यीकृत का समुच्चय नहीं होने के कारण वह व्यापक होने की जगह सीमित हो जाता है। इसके साथ-साथ व्यक्ति की सीमाएं भी उसको प्रभावित करती हैं। इसी कारण व्यक्ति के मूल्यों, मान्यताओं की सीमा से परे निरपेक्ष ज्ञान की प्राप्ति की चर्चा सामाजिक संदर्भों में होने लगी। यहीं से मूल निरपेक्ष व्यवहारवाद पश्चिम में उभरा है। भारतीय मनीषा इस संदर्भ में सदा ही तर्क आधारित रही है। इसी कारण ज्ञान आप्त व्यक्ति के दर्शन एवं दृष्टि को सिद्धान्त के रूप में माना गया, तभी इसी से निगमनात्मक की परंपरा चली। भारतीय ज्ञान परंपरा में आप्त व्यक्ति स्वयं में मूल्य निरपेक्षित माना गया है। संभवतः पश्चिम के पास इसका उत्तर नहीं होगा, क्योंकि वह आप्त की जगह सिर्फ तर्कवाद एवं पद्धति पर ही जोर देता है। इसके विपरीत प्रत्यक्षीकरण व्यवहारवाद की स्थिति ने मानव समाज पर आधारित सैद्धांतिक प्रक्रिया को प्रारंभ किया। किसी व्यवहार को परख कर, समझ कर, देखकर अनुभव करने के उपरांत जो मानसिक दृष्टि बनती है उसे व्यक्त करने से सिर्फ एक अध्येता अथवा अनुसंधानकर्ता की दृष्टि ही सामने आती थी, लेकिन इसी एक अध्येता द्वारा संपन्न अनुसंधान से प्राप्त मानसिक दृष्टि का अन्य अनुसंधानकर्ताओं से प्राप्त समान निष्कर्षात्मक मानसिक दृष्टि से समुच्चय बनता है। इसी स्थिति में आगमनात्म्क पद्धति अस्तित्व में आती है। इन्हीं के साथ-साथ कुछ सिद्धांत दृष्टि, समस्या या तथा उसकी प्रवत्ति से जुड़े होते हैं। इन्हें हम व्यापक सिद्धांत की कोटि में

[1]प्रोफेसर एवं निदेशक, महामना मदनमोहन मालवीय हिन्दी पत्रकारिता संस्थान, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी (उत्तर प्रदेश)। ईमेल : opmgkvp@gmail.com

नहीं रखते हैं। इन्हें समस्यापूर्ति के रूप में देखना चाहिए (वामन, 1996, पृ. 85-90)।

इस प्रकार स्पष्ट है कि आगमन एवं निगमन दोनों ही पद्धतियां निष्कर्ष निकालने के तरीकों से जुड़ी हैं। उक्त दोनों पद्धतियों से निकाले गए निष्कर्ष सिद्धांत सत्य हों, यही अनुसंधान का लक्ष्य होता है। इस प्रकार सत्यपरक मानसिक दृष्टि बने यही मुख्य संदर्भ हमें प्राप्त होता है (वामन, 1996, पृ. 303-304)।

इस प्रकार सिद्धांत एवं पद्धति दोनों का लक्ष्य सत्य आधारित एवं दृष्टि से है। इसी सत्य को पाने अथवा व्यक्त करने के लिए विज्ञानवाद का आश्रय लिया गया। अब थोड़ी चर्चा विज्ञानवाद की भी आवश्यक है। विज्ञान निगमनात्मक भी है और आगमनात्मक तर्क भी है। सामान्य रूप से विज्ञान किसी व्यक्ति, समाज या प्रकृति की संरचना और व्यवहार का प्रयोग एवं अवलोकन द्वारा किया गया अध्ययन है। विज्ञान के मुख्य लक्षणों में (1) प्रामाणिकता, (2) परिशुद्धता (3) अमूर्तता और (4) तंत्र या व्यवस्था सम्मिलित हैं।

इस आधार पर हम विज्ञान (1) सैद्धांतिक या विशुद्ध और (2) अनुप्रयुक्त या व्यावहारिक वर्ग में विभक्त कर सकते हैं। प्राकृतिक विज्ञानों एवं सामाजिक विज्ञानों में भी हम सैद्धांतिक या विशुद्ध एवं अनुप्रयुक्त या व्यावहारिकता के तत्त्व पाते हैं - जैसे विद्युत, प्रकाश, ध्वनि आदि सैद्धांतिक भौतिक के अंग हैं। इसके अलावा सूक्ष्मदर्शी रेडियो एवं टेलीविजन अनुप्रयुक्त भौतिक के अन्तर्गत आते हैं। इसी प्रकार सैद्धांतिक सामाजिक विज्ञान के अंतर्गत हम व्यवस्था एवं अव्यवस्था का अध्ययन करते हैं। अनुप्रयुक्त सामाजिक विज्ञान में अव्यवस्था का अध्ययन करते हैं। अनुप्रयुक्त सामाजिक विज्ञान में अव्यवस्था कम करने के तरीके ढूंढ़ते हैं। इस प्रकार कह सकते हैं कि अनुप्रयुक्त विज्ञान उपयोगी होता है। इसके विपरीत सैद्धांतिक विज्ञान हमारा ज्ञान बढ़ाता है।

वैज्ञानिक अध्ययन के लिए वैज्ञानिक पद्धति आवश्यक है। चूंकि सिद्धांत एवं परिकल्पनाओं की एक व्यवस्था या तंत्र होता है। अर्थात् परिकल्पनाओं से सिद्धांत बनता है और सिद्धांतों से विज्ञान की एक शाखा, उसी प्रकार ये सभी शाखाएं मिलकर पूरे विज्ञान के तंत्र को बनाती हैं। विज्ञान के इसी गुण, तंत्र या व्यवस्था के कारण ही भविष्य की घटनाओं के विषय में ज्ञान संभव है। इस प्रकार कारण और नियम जानने के बाद परिणाम की प्राप्ति होती है। जैसे-जैसे विज्ञान विकसित होता है, वैसे-वैसे उसमें अधिक व्यवस्था आती जाती है।

ऐतिहासिक संदर्भ में विज्ञान एवं वैज्ञानिक प्रद्धति

'विज्ञान' के अर्थ, स्वरूप तथा अवधारणा के स्पष्टीकरण के लिए ऐतिहासिक संदर्भ का विवेचन आवश्यक है। अपने प्राचीन और व्यापक अर्थों में विज्ञान विशेष ज्ञान के अर्थ में दर्शनशास्त्र का पर्यायवाची शब्द रहा है। इसी अर्थ को फ्रांस, जर्मनी, नार्वे देशों में ग्रहण किया गया है। शास्त्रीय रूपों में इसे तात्त्विक और आध्यात्मिक ज्ञान के रूप में जाना जाता रहा है। दूसरे अर्थ में यह 'विशेष बुद्धि' या व्यवस्थित ज्ञान के लिए प्रयुक्त होता है। विशेष बुद्धि (जिसे गीता में व्यवसायात्मिका बुद्धि कहा गया है) या व्यवस्थित ज्ञान को कार्य-कारण भाव अथवा तार्किक पद्धति भी कहते हैं। तृतीय अथवा आधुनिक अर्थों में इसका प्रयोग केवल भौतिक विज्ञानों के लिए होता है, जिनका प्रतीक उनकी अपनी पद्धति है। इस पद्धति द्वारा प्राप्त निष्कर्षों में सत्यापनशीलता, निश्चयात्मकता, वस्तुनिष्ठता, सामान्यता एवं पूर्वकथनीयता के लक्षण पाए जाते हैं। संक्षेप में कह सकते हैं कि विज्ञान जगत् और विषय वस्तुओं के ज्ञान की खोज है (रिची एवं अन्य, 1976, पृ. 1)।

विज्ञान एवं वैज्ञानिक पद्धति एक दूसरे के पूरक हैं। इस पूरकता के साथ-साथ इनमें परिवर्तनशीलता की प्रवृत्ति भी पाई जाती है। इसी कारण प्राचीन ज्ञान और वर्तमान ज्ञान में इतना अंतर हो गया है कि इसे हम वैज्ञानिक मानने के लिए तैयार ही नहीं हैं। आज हम भौतिक विज्ञानों के समान वस्तुनिष्ठ व्यवस्थित, क्रमबद्ध ज्ञान को ही विज्ञान कहते हैं (रिची एवं अन्य, 1976, पृ. 3-4)।

'वैज्ञानिक' ज्ञान का उपयोग जब मानवीय हितों के लिए किया जाता है तो वह प्राविधिक विज्ञान का विषय हो जाता है। भौतिक विज्ञानों का प्रयोगात्मक प्रभाव वर्तमान जगत पर स्पष्ट है। भौतिक विज्ञानों के इस प्रायोगिक महत्त्व ने समाजशास्त्रियों को अभिप्रेरित किया कि वे वैज्ञानिकता को आत्मसात् कर लें। इसी कारण 'विज्ञान' शब्द के अर्थ को विशिष्ट रूप से आधुनिक विशिष्ट पद्धतियों से प्राप्त निष्कर्षों का सत्यापन निश्चयात्मक वस्तुनिष्ठ, सामान्य और संकुचित अर्थों में ही ग्रहण किया जाता है, न कि व्यापक अर्थों में (वर्मा, 1986, पृ. 101)।

इस प्रकार स्पष्ट है कि वर्तमान समय में विज्ञान में वैज्ञानिक पद्धति का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह सामाजिक विज्ञानों में प्राकृतिक विज्ञानों के साथ समीपता स्थापित करने के प्रयासों का परिणाम है। समाज वैज्ञानिकों की यह मूल धारणा है कि वैज्ञानिक पद्धति को अपनाकर 'विज्ञानत्व' को पूर्णांश में प्राप्त किया जा सकता है। इन विशिष्ट अर्थों में वैज्ञानिक पद्धति का विकास यूरोपीय पुनरुत्थान की देन कहा जाता है। संशय, जिज्ञासा, निरीक्षण, परीक्षण नियम निर्धारण आदि बौद्धिक चिंतन के मूल मंत्र बन गये हैं। सत्रहवीं शताब्दी में हॉब्स के चिन्तन पर गैलीलियो, लियोनार्ड न्यूटन का प्रभाव पड़ा है। 'प्राकृतिक नियम' की विचारधारा ने शाश्वत नियमों की खोज को बल दिया। अगस्त काम्त भी पदार्थशास्त्र से प्रभावित था। हर्बर्ट स्पेन्सर ने डार्विन के विकासवाद को ग्रहण कर धीरे-धीरे सामाजिक विकासवाद की अवधारणा को प्रचलित किया। स्पेन्सर, लिलियेनफील्ड, सेफूल आदि ने सावयवीवाद का समर्थन किया। काम्त ने विधेयवाद या स्वीकारवाद के कार्य-कारण और वस्तुओं के सह संबंध के विश्लेषण पर जोर दिया। जॉन स्टुअर्ट मिल और दुर्खीम दोनों उससे प्रभावित हुए। इस प्रकार अनुभववाद परीक्षण की धारा चली। धीरे-धीरे एक ऐसी पद्धति-विज्ञान का विकास होता गया, जो किसी भी विषय की 'वैज्ञानिकता' का प्रतीक थी। इसी के साथ पद्धति वैज्ञानिकों की प्रधानता हो गई। उनकी मुख्य दृष्टि विषय की पूर्वमान्यताओं, प्रक्रियाओं, वर्णन और व्याख्या के तरीकों और उपलब्धियों के लक्षणों पर होती है। इनका प्रारंभ जर्मनी में हुआ। वैज्ञानिक पद्धतियों को अपनाने की प्रेरणा ग्राहमबलास, बेंटले मेरियम, केटलिन आदि से मिली। आज वैज्ञानिक पद्धति सामाजिक विज्ञान की शान का प्रतीक बन गई है (वर्मा, 1986, पृ. 100)।

गणितीय योग्यता, यांत्रिक-अभिक्षमता, निरीक्षण से संयुक्त

लियोनार्डो दा विंसी को वर्तमान अर्थ में प्रथम भौतिकशास्त्री माना जा सकता है। पुनर्जागरण के बाद ज्ञान में हुए अत्यधिक विकास पर विचार करते समय हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि यूनानी विज्ञान के पुनः अनुसंधान और प्राकृतिक तथ्यों में पुनः उत्पन्न रुचि के साथ उसी समय एक नई कला जहाजरानी का विकास हुआ। इसके लिए परिशुद्ध उपकरणों की आवश्यकता हुई और उसने खगोलीय निरीक्षण को नई प्रेरणा दी। नाविक के लिए निरीक्षण-परिशुद्धता इतनी अधिक अपेक्षित थी कि अब तक उसकी कल्पना भी नहीं की गई थी।

वैज्ञानिक पद्धति का अध्ययन, परीक्षण से प्रारंभ होता है। इस प्रक्रिया के बारे में क्या सोचा जाता है, इस पर भी कुछ अवश्य कहा जाना चाहिए। प्रयास और असफलता से सीखना सभी चेतनजीवों में समान है। व्यावहारिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा इस प्रकार की सभी प्रक्रियाओं को जैसा कि वाह्य प्रेक्षक देखता है, विशुद्ध भौतिक पदों द्वारा वर्णित करेगा (वर्मा, 1986, पृ. 101)।

सामाजिक विज्ञान में भी व्यवस्था लाने का प्रयत्न होता रहा है। सामाजिक विज्ञान में व्यवस्था निर्णय का प्रयत्न करने वाले विचारकों में अरस्तू, हीगल, मार्क्स तथा पार्सन्स महत्त्वपूर्ण हैं। प्रयत्न विज्ञान बराबर विकसित होता रहता है। इसलिए उसका मूल वह पद्धति है, जिसके द्वारा वह बनता है। इसे हम वैज्ञानिक पद्धति कहते हैं। इसके तीन मुख्य अंग हैं (1) परिकल्पनाओं का निर्माण (2) परिकल्पना के परीक्षण के लिए आधार सामग्री संग्रह और (3) यह अनुमान कि परिकल्पना स्वीकार की जानी चाहिए या अस्वीकार।

बेकन नामक यूरोपीय विचारक ने कहा था कि वैज्ञानिक प्रेक्ष्य या तथ्य संकलन से उपकल्पना का कार्य प्रारंभ किया जाता है। इससे स्पष्ट है कि तथ्य संकलन आवश्यक है, लेकिन बेकन का कथन सही नहीं है, क्योंकि खोज का प्रारंभ किसी सैद्धांतिक या व्यावहारिक कठिनाई के हल के लिए मन में उत्पन्न धारणा से होता है। इस प्रकार तथ्य संकलन पहले से ही मन में विद्यमान धारणा का अस्तित्व रहता है। इसे ही परिकल्पना कहते हैं। इस प्रकार सामूहिक विज्ञान में परिकल्पनाओं का आधार आवश्यक है।

कलियांपर के अनुसार वैज्ञानिक परिकल्पनाओं के लिए यह आवश्यक है कि उनका परीक्षण हो सके और यदि वे असत्य हों तो उन्हें असत्य सिद्ध किया जा सके। यदि किसी परिकल्पना को अनुभवों के आधार पर सत्य सिद्ध करना असंभव हो तो उसे वैज्ञानिक परिकल्पना नहीं कह सकते। जो परिकल्पनाएं परीक्षण की कसौटी पर खरी उतरती हैं उनसे ही विज्ञान का कलेवर बनता है। उनके परीक्षण के लिए पहले आधार सामग्री का संग्रह करते हैं और फिर उसके आधार पर अनुमान लगाते हैं कि परिकल्पना स्वीकार्य है अथवा अस्वीकार्य। अनुमान वैज्ञानिक पद्धति का अंतिम चरण है। अनुमान के लिए तर्कशास्त्र का सहारा लिया जाता है। तर्कशास्त्र का अर्थ है चिंतन के सिद्धांत। इन सिद्धांतों का प्रयोग हम प्रतिदिन के जीवन में करते हैं, किंतु साथ ही बहुत-सी बातों को बिना सोचे मान लेते हैं। इसलिए हमारे साधारण ज्ञान में सत्य और असत्य की मिलावट रहती है। इसके विपरीत विज्ञान के किसी सिद्धांत को मानने से पहले हम उसके लिए प्रमाण देखते हैं। इस कारण तर्क वैज्ञानिक पद्धति का अंग है तथा यह (1) आगमन (2) निगमन के रूप में जाना जाता है। इस प्रकार विवेचन से स्पष्ट है कि पश्चिम में विज्ञान एवं वैज्ञानिक पद्धति का प्रारंभ पुनर्जागरण से होता है। भारत में यह परंपरा काफी पुरानी है। वैदिक काल से यह परंपरा निरंतर जारी है। आश्रमों में जो ज्ञान-विज्ञान पलता था अथवा जिसका परीक्षण एवं विकास होता था वह वास्तव में वैज्ञानिक होने के साथ-साथ वैज्ञानिक पद्धति युक्त भी था। इसकी विस्तृत चर्चा यहां संभव नहीं है, क्योंकि यह वास्तव में एक स्वतंत्र तथा व्यापक विषय है (वर्मा, 1986, पृ. 3)।

अंग्रेजी भाषा में विज्ञान का अर्थ प्रारंभ से ही दुर्भाग्यपूर्ण रहा है। उसे दर्शन के पर्यायवाची शब्द के रूप में ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, नार्वे आदि देशों में प्रयोग किया जाता रहा है। यह एक गठित ज्ञान है जो कि प्रस्तावनाओं की व्यवस्था के माध्यम से संप्रेषणीय है। एक विज्ञान आधुनिक भाषा में दर्शनशास्त्र के आदर्श रूप में, जैसा कि प्लेटो ने कहा था, स्वर्ग में स्थित है। उस तक पहुंचने की आकांक्षा सभी करते हैं, लेकिन कभी पहुंच नहीं सकते हैं। भारत में इसी अर्थ में विज्ञान को नहीं अपनाया गया।

वैज्ञानिक पद्धति के अंग

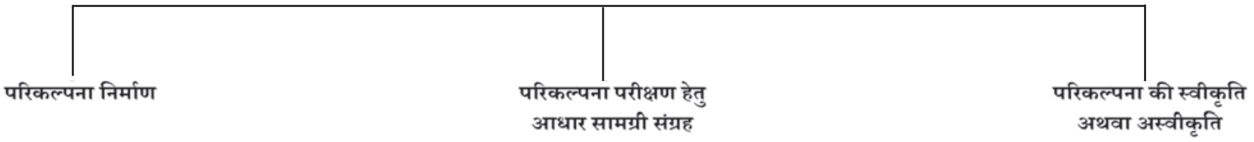

(वर्मा, 1986, पृ. 104-106)

भारत में मीमांसा शब्द 'विज्ञानवाद' के समरूप है। 'मीमांसा' का अर्थ संदेहास्पद बात के विषय पर पहुँचने के अर्थ में व्यक्त हुआ है। यह उपनिषदों से पूर्व में ही प्रचलित थी, परंतु इसका विकास धीरे-धीरे हुआ। इस प्रकार मीमांसा वास्तव में व्याख्या के नियमों से संबद्ध है। आपस्तंब के समय में मीमांसा सिद्धांत प्रचलित थे। आपस्तंब ने 'न्यायवित्समय' (लोग न्याय जानते हैं, उनका सिद्धांत) एवं न्यायविदः शब्द का प्रयोग किया। इस प्रकार मीमांसा के लिए न्याय शब्द पर्यायवाची बना। तंत्र युक्ति का प्रयोग शोध पद्धति के लिए प्राचीन वाङ्मय में किया जाता था (वर्मा, 1986, पृ. 81-82)।

न्याय को तर्क विद्या की संज्ञा दी गई। न्याय के लिए प्रत्यक्ष, अनुमान एवं परंपरा आधारित शास्त्र ज्ञान आवश्यक है। इस प्रकार स्पष्ट है कि अनुसंधान एवं व्याख्या की परंपरा प्राचीन भारत में थी, जो पश्चिम में बाद प्रारंभ हुई।

वैज्ञानिक पद्धति के चरण

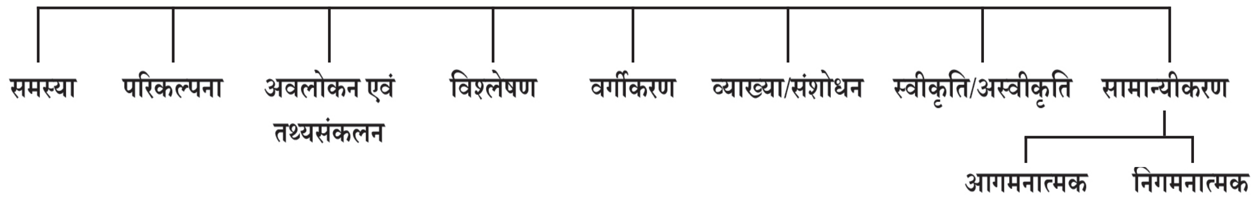

(वर्मा, 1986)

वैज्ञानिक पद्धति का स्वरूप एवं प्रकृति: विज्ञानवाद वैज्ञानिक पद्धति एवं इतिहास की चर्चा के साथ-साथ वैज्ञानिक पद्धति के विभिन्न अंगों, प्रकारों एवं प्रक्रिया का ज्ञान आवश्यक है-

(क) वैज्ञानिक पद्धति के अंग: इस संदर्भ का वर्णन हम ऊपर कर चुके हैं। वैज्ञानिक पद्धति के प्रयोग अथवा प्रयोग की आवश्यकता समस्या के संबंध में उपजी धारणा से प्रारंभ होती है। इस कारण वैज्ञानिक पद्धति के अंग इस प्रकार हैं-

(ख) वैज्ञानिक पद्धति के चरण: वैज्ञानिक पद्धति द्वारा सत्य को ढूंढने की प्रक्रिया में शोध प्रवृत्ति के संपूर्ण चरण निहित हैं। इसके लिए कई स्तरों से गुजरना पड़ता है। इसमें ही चरणों की संज्ञा दी जाती है। वैज्ञानिक पद्धति के मुख्य चरण इस प्रकार हैं-

वैज्ञानिक पद्धति के उक्त चरणों का प्रयोग शोधार्थी अपने शोध में करता है जिसे हम शोध प्रक्रिया के नाम से जानते हैं:-

(ग) शोध प्रक्रिया: शोध प्रक्रिया का प्रयोग निरंतर हो रहा है। इससे ज्ञान एवं विज्ञान का विकास होता है। शोध प्रक्रिया एक व्यावहारिक एवं चक्रीय अवधारणा है। इस प्रकार स्पष्ट है कि शोध प्रक्रिया के द्वारा अनुसंधान को संपादित कर ज्ञान का विकास किया जा सकता है। शोध प्रक्रिया अधोलिखित है (विलियम और हाट, 1952, पृ. 305-340) :-

प्राचीन भारतीय साहित्य में शोध संबंधी शब्द:

1. अनुसंधानम् (अनुसम्+धा+ल्युट्), पृच्छा, गवेषण, गहन निरीक्षण या परीक्षण, जांच योजना क्रमबद्ध करना। पृ.-43
2. आगमः (आ+गम्+घञ) आना, पहुंचना, दर्शन, बीजक, प्रमाणक, ज्ञान, परंपरागत सिद्धांत या उपदेश, आप्तवाक्य, सिद्धांत ज्ञान, प्रमाणक से समर्थित।
3. तन्त्रः (तंत्र+अच्) करपा, धागा, मुख्य सिद्धांत, नियम, शास्त्र। पृ.-420
4. निगमः (नि+गम्+घञ्): वेद, वेद का मूल पाठ, वेद का विधि वाक्य, ऋषि वचन, निश्चय, मार्ग (शब्द का मूल स्रोत) धातु पृ.523
5. वेद (विद्+घञ्/अच् वा) ज्ञान, श्रुति, स्मृति, पृ.-975
6. शोध (शुध्+ घञ्) शुद्धि संस्कार, संशोधन, समाधान, परिशोध पृ.-1031
7. श्रुतिः (श्रु+क्) वेद, ध्वनि, मौखिक संवाद, प्रमाणिकता पृष्ठ-1038

प्राचीन भारतीय ज्ञान एवं अनुसंधान पद्धति: प्राचीन भारतीय ज्ञान के विकास में आधुनिक अनुसंधान पद्धति के उपयोग पर विचार करना चाहिए। वास्तव में प्राचीन भारतीय ज्ञान के अनुसंधान में इसकी पद्धतियों

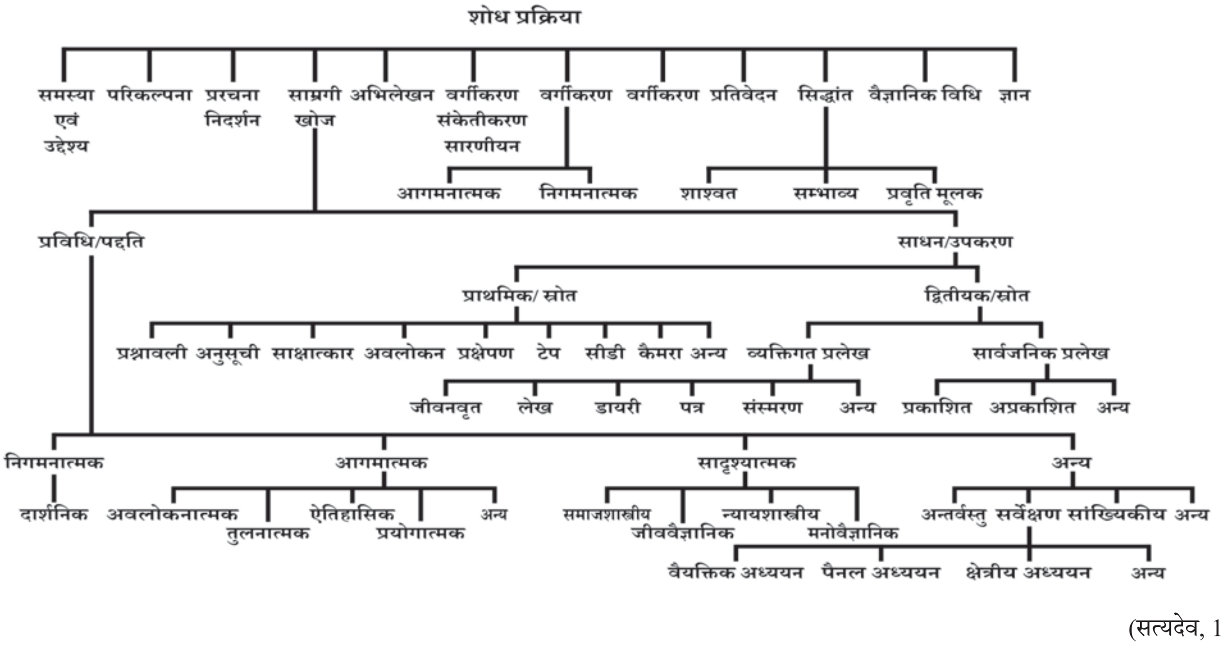

(सत्यदेव, 1976)

के उपयोग पर विचार करना चाहिए। प्राचीन भारतीय ज्ञान के अनुसंधान में अनुसंधान पद्धतियों के उपयोग की दृष्टि से समाज में तीन अध्येता समूह मिलते हैं: (1) प्राचीन भारतीय ज्ञान से विज्ञ लोग (2) आधुनिक ज्ञान से विज्ञ लोग एवं (3) प्राचीन एवं आधुनिक ज्ञान को जानते हैं। उन्हीं के द्वारा प्राचीन भारतीय अनुसंधान के संदर्भ में आधुनिक अनुसंधान पद्धतियों का उपयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त मात्र भारतीय ज्ञान को जानने वाले लोगों द्वारा आधुनिक अनुसंधान पद्धतियों पर उपयोग नहीं किया जाता है। इसी प्रकार प्राचीन ज्ञान आधुनिक ज्ञान से विज्ञ लोगों द्वारा प्राचीन ज्ञान से संपर्क के अभाव में इस क्षेत्र में अनुसंधान नहीं किया जाता है। वैसे वैदिक ज्ञान को निगम तथा तंत्र ज्ञान को आगम के रूप में प्रचलित संदर्भ से स्पष्ट है कि यह नाम अनुसंधान पद्धति शास्त्रीय है। अस्तु आगमन एवं निगमन शोध पद्धतियों के स्रोत भी यही हैं (सत्यदेव, 1976)।

इसके अतिरिक्त यह भी विचारणीय प्रश्न है कि क्या प्राचीन भारतीय ज्ञान के अध्ययन में अनुसंधान पद्धतियों का उपयोग नहीं होता है? इसका उत्तर है कि होता है, क्योंकि पश्चिम की अनुसंधान पद्धतियों के विकास से पूर्व भारतीय परिवेश में अनुसंधान पद्धतियों का उपयोग होता था। इसके उदाहरण इस प्रकार हैं। वेदों में विषय का वर्गीकरण मंडल में, रामायण का कांडों में, महाभारत का पर्वों में, श्रीमद्भागवत का स्कंधों एवं गीता का अध्यायों में किया गया है। यह आवृत्ति एवं परिवर्तन अनुसंधान पद्धति को स्पष्ट करती है। समय के विकास एवं वाह्य हमलों तथा गुलामी के कारण मध्यकालीन अवधि में अनुसंधान एवं अनुसंधान पद्धति पर ध्यान नहीं दिया गया, जिसके कारण अनुसंधान पद्धतियों में नवीन प्रवृत्तियों का विकास पर्याप्त मात्रा में नहीं हो सका। वर्तमान समय में भी आधुनिक अनुसंधान पद्धतियों में सभी का उपयोग प्राचीन भारतीय अध्ययन में उपयोगी नहीं हो सकता है। मात्र कुछ अनुसंधान पद्धतियां ही उपयोगी हो सकती हैं।

निष्कर्ष

वैदिक ज्ञान से आज तक के ज्ञान की निरंतर प्रवाहमान परंपरा से स्पष्ट है कि भारत में प्राचीन काल से ही अनुसंधान एवं अनुसंधान पद्धतियों की परंपरा अस्तित्व में थी। यह शृंखला मध्यकाल में प्रभावित हुई थी। वर्तमान में यह आवश्यकता है कि प्राचीन ज्ञान के अध्येता आधुनिक अनुसंधान पद्धतियों का ज्ञान प्राप्त करें और इनका प्रयोग करें पर मात्र उन्हीं पर निर्भर न हों। वर्तमान में यह आवश्यक है कि अनुसंधान पद्धतियों पर भी अनुसंधान करके प्राचीन भारतीय तथा आधुनिक अनुसंधान पद्धतियों में समन्वय बैठाया जाए। यही आवश्यक तथा उपयोगी है।

संदर्भ

ऑक्सफोर्ड एडवांस्ड लर्नर्स डिक्शनरी (1996). ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस स्ट्रीट, वाल्टन, पृ. 1237

काणे पांडुरंग वामन. (1966). *धर्मशास्त्र का इतिहास*. उ.प्र.हिंदी संस्थान, लखनऊ भाग-5, पृ. 85-90

काणे पांडुरंग वामन. (1966). *धर्मशास्त्र का इतिहास*. उ.प्र.हिंदी संस्थान, लखनऊ भाग-5, पृ. 303-304

रिची ए. डी. एवं अन्य (1976). *वैज्ञानिक पद्धति*. राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, पृ. 1

रिची ए. डी. एवं अन्य (1976). *वैज्ञानिक पद्धति*. राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, पृ.3-4

वर्मा, एस. (1986). *आधुनिक राजनीतिक सिद्धांत*. मीनाक्षी प्रकाशन, पृ. 101

वर्मा, एस. (1986). *आधुनिक राजनीतिक सिद्धांत*. मीनाक्षी प्रकाशन, पृ. 100

वर्मा, एस. (1986). *आधुनिक राजनीतिक सिद्धांत*. मीनाक्षी प्रकाशन, पृ. 101

वर्मा, एस. (1986). *आधुनिक राजनीतिक सिद्धांत*. मीनाक्षी प्रकाशन, पृ. 3

वर्मा, एस. (1986). *आधुनिक राजनीतिक सिद्धांत*. मीनाक्षी प्रकाशन, पृ. 81-82

वर्मा, एस. (1986). *आधुनिक राजनीतिक सिद्धांत*. मीनाक्षी प्रकाशन, पृ. 104-106

वर्मा, एस. (1986). *आधुनिक राजनीतिक सिद्धांत*. मीनाक्षी प्रकाशन, पृ. 142-157

वर्मा, एस. (1986). *आधुनिक राजनीतिक सिद्धांत*. मीनाक्षी प्रकाशन, पृ. 154

विलियम. जे. गोड़े. और पॉल, हाट. (1952). *मेथड्स इन सोशल रिसर्च*. न्यूयॉर्क: मैकग्रा हिल बुक कंपनी, पृ. 305-340

सत्यदेव (1976). *सामाजिक विज्ञानों की शोध व पद्धतियां*. हरियाणा ग्रंथ अकादमी, पृ.12-13

सत्यदेव (1976). *सामाजिक विज्ञानों की शोध व पद्धतियां*. हरियाणा ग्रंथ अकादमी, पृ. 2

सत्यदेव (1976). *सामाजिक विज्ञानों की शोध व पद्धतियां*. हरियाणा ग्रंथ अकादमी, पृ. 12-13

सत्यदेव (1976). *सामाजिक विज्ञानों की शोध व पद्धतियां*. हरियाणा ग्रंथ अकादमी, पृ. 6-7

सत्यदेव (1976). *सामाजिक विज्ञानों की शोध व पद्धतियां*. हरियाणा ग्रंथ अकादमी, पृ. 7-9

संचार माध्यम | खंड 32(2): 11-17, जुलाई-दिसंबर 2020
आईएसएसएन: 2321-2608

वैचारिक सरोकार के पत्रकार रघुवीर सहाय

सत्यप्रकाश सिंह[1]

सारांश

कोई भी तंत्र केवल पूंजी से नहीं बनता है। उसमें मनुष्य की भागीदारी भी रहती है, इस नाते उसकी भूमिका को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। दरअसल तंत्र अमानवीयता को सिद्ध करने के लिए, उसे वैसा बनाए रखने के लिए तर्क गढ़ता रहता है। उसकी भाषा निर्मित करता रहता है। जैसे, सच्चाई महज यह है कि पत्रकारिता केवल एक पेशा है, अब आदर्श के प्रचार का जमाना नहीं है, पत्रकारिता पहले से अधिक व्यावसायिक तरीकों से चलती है, पत्रकार होता तो किसी मालिक का नौकर ही है- इत्यादि जुमले आंशिक यथार्थ के माध्यम से एक खास तरह की संस्कृति विकसित करते हैं और पत्रकार से, उसकी फर्क पैदा कर सकने की क्षमता को अवरोधित करने का प्रयास करते हैं। रघुवीर सहाय पत्रकारिता के इस पहलू को ध्यान में रखते हुए पत्रकारों को बड़ी जिम्मेदारी से संयुक्त करते हैं और उन्हें अपने कर्त्तव्य से भागने का अवसर नहीं देते। यह रघुवीर सहाय का लोकतांत्रिक दृष्टिकोण है, जो अतिशय केंद्रीकरण के समानांतर सत्ता के अनेक केंद्र स्वीकार करता है और उनसे तार्किक गतिविधि की अपेक्षा करता है, ताकि उसका सामान्य मनुष्य तथा राष्ट्र के सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन से मानवीय रिश्ता बन सके।

संकेत शब्द : रघुवीर सहाय, लोकतांत्रिक दृष्टिकोण, समीक्षक, रचनात्मकता, उपभोक्तावादी संस्कृति

प्रस्तावना

अज्ञेय के 'दिनमान' से चले जाने के बाद रघुवीर सहाय ने 'दिनमान' के संपादन का दायित्व संभाला और 14 वर्षों तक उसे अपनी वैचारिक ऊर्जा और रचनात्मक विचारों से नए आयाम प्रदान करते रहे। ये 14 वर्ष उनके पत्रकार जीवन का वह दौर है, जिसमें वे सर्वाधिक सशक्त रूप से हिंदी पत्रकारिता में बहुत कुछ नया जोड़ते हैं और 'दिनमान' को अज्ञेय के 'दिनमान' से अलग, अधिक रचनात्मक और प्रखर 'दिनमान' में बदल देते हैं। अज्ञेय के कुछ अपने पूर्वाग्रह थे, जैसे कि वे मानते थे कि साहित्यकार है तो उसमें गंभीरता और संवेदनशीलता स्वाभाविक है।, किन्तु रघुवीर सहाय पत्रकारिता के क्षेत्र में कार्यरत सभी साहित्यकारों को इसी रूप में नहीं देखते थे। उन्होंने अज्ञेय के करीबी अनेक साहित्यकारों को उनकी वर्गीय स्थिति, उनकी महत्त्वाकांक्षा और उनके सार्वजनिक जीवन के आधार पर समझने का प्रयास किया। सर्वेश्वर को वे अच्छा साहित्यकार मानते हुए भी पत्रकारिता के लिए उपयुक्त नहीं मानते थे तो श्रीकांत वर्मा को वे महज राजनीतिक आकांक्षा वाला व्यक्ति मानते थे।

'दिनमान' को अलग तेवर प्रदान करने के लिए रघुवीर सहाय ने 'दिनमान' के लिए विशेष संवाददाता रखे, विषय निर्धारित करके अनेक विषयों पर बहस चलाई और प्रायः उन मुद्दों को बहस का केंद्र बनाया, जो राजनीतिक-सामाजिक जीवन के लिए महत्त्वपूर्ण होते हुए भी प्रायः उपेक्षित रह जाते हैं। अपने संपादन कार्य के दौरान उन्होंने 'दिनमान' में उन विषयों को प्राथमिकता दी, जो हाशियाकृत थे और लोकतांत्रिक राजनीति के आधारबिंदु थे। गांधी के उपरांत रघुवीर सहाय लोहिया के विचारों में वह क्षमता और प्रभाव देखते थे जो देश में वास्तविक लोकतंत्र की स्थापना कर सकता है। वे लोहिया को संसद के अंदर और सड़क पर लड़ते देख रहे थे। सत्ता के निरंतर केंद्रीकरण के खिलाफ आवाज उठाते देख रहे थे। उन्हें राजनीतिक गुरु मानकर उनसे निरंतर सीख रहे थे और संवाद कर रहे थे। इसी आधार पर उन्होंने लोहिया को अपना शिक्षक भी कहा है, किंतु इसका यह अर्थ बिल्कुल नहीं लगाना चाहिए कि रघुवीर सहाय ने सोशलिस्ट पार्टी की सदस्यता ग्रहण कर ली थी अथवा लोहिया के भक्त थे और लोहिया की राजनीति का साहित्यिक अनुवाद कर रहे थे। वे तो बस यह समझ विकसित कर रहे थे कि साहित्य और राजनीति के लक्ष्य एक समान होते हैं। वह लक्ष्य है मनुष्य के जीवन और परिवेश को मानवीय और तार्किक बनाना। एक स्वतंत्र, समतामूलक और न्यायमूलक समाज की स्थापना करना। इस कार्य के लिए उन्होंने 'दिनमान' को अपने समय का प्रमुख सांस्कृतिक मंच बनाया। उसे ऐसा तेवर और रुतबा प्रदान किया, जो पत्रकारिता के क्षेत्र में बहुत कम पत्र-पत्रिकाओं को प्राप्त हुआ है। हालांकि, रघुवीर सहाय की पत्रकारिता को महज 'दिनमान' के आधार पर नहीं समझा जा सकता है। इसके लिए 'दिनमान' से इतर अन्य पत्र-पत्रिकाओं के लिए किए गए उनके लेखन को भी अध्ययन का विषय बनाना होगा।

पत्रकारिता: एक पुनीत कार्य

रघुवीर सहाय पत्रकारिता को पुनीत कार्य मानते थे और उसे समाज को बदलने का प्रमुख माध्यम स्वीकार करते थे। इसलिए पत्रकारिता करना उनके लिए कविता लिखने की तरह ही रचनात्मक कार्य था। आत्महत्या के विरुद्ध कविता संग्रह के तीसरे संस्करण की भूमिका में उन्होंने लिखा है - 'अखबार में लिखना या खबरनवीसी करना मैंने 1947 से ही अपनी मातृभाषा में उतना ही रचनात्मक माना है जितना कविता करना।' आज की पूंजी प्रधान व्यावसायिक पत्रकारिता में प्रायः मानवीय संवेदना और सामाजिक उद्देश्यों को बेमेल समझा जाता है, जबकि रघुवीर सहाय सामाजिक सरोकार और प्रत्येक व्यक्ति के सम्मान को पत्रकारिता के केंद्रीय उद्देश्य के रूप में स्वीकार करते हैं। वे पत्रकार और पाठक के रिश्ते को एकतरफा रिश्ता नहीं मानते हैं न ही उत्पादक-उपभोक्ता का रिश्ता मानते हैं। उन्होंने लिखा है- ''पत्रकार, जिसे हम यहां संवाददाता,

[1]सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, राजधानी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली। ईमेल : satyaraghuvanshi@gmail.com

समीक्षक, व्याख्याकार आदि रूपों में अलग-अलग परिभाषित न करके संपादक कह रहे हैं। पाठक को जो चीज पढ़ने को देता है, वह वस्तुतः पाठक की ही सामाजिक और सांस्कृतिक आकांक्षा की प्रतिमूर्ति होनी चाहिए और इतना ही नहीं, इस आकांक्षा को जाग्रत करने में संपादक के योगदान को पाठक और पत्रकार के बीच एक संवाद के अंतर्गत आलोच्य भी होना चाहिए'' (सहाय, 2000, पृ. 60)। रघुवीर सहाय पाठक को केवल खरीददार नहीं मानते हैं, क्योंकि वह पाठक ही है जिसके प्रतिनिधि के अधिकार के कारण पत्रकार अपने को, उनके विशिष्ट प्रतिरूप बना पाते हैं। पाठक केवल पत्र पढ़ता ही नहीं अपितु उसे बनाता भी है। उसके होने का दबाव उसे बनाता है। वर्तमान पत्रकारिता में 'लोग जो चाहते हैं हम उसे छापते हैं' का वाक्य इस पाठक के खिलाफ एक बड़ा षड्यंत्र है। जनतांत्रिक प्रक्रिया के स्थान पर शक्ति के केंद्रीकरण का प्रयास है। पूंजी के हित में सामान्य पाठक के अधिकारों का अवमूल्यन है।

यह भी एक सच्चाई है कि समाचार पत्र-संस्थान में जिसका पैसा लगेगा, नीति निर्धारण में उसकी भूमिका भी होगी। खबर को हजारों लोगों तक पहुंचाने वाला साधन उसी का होगा, जिसे संभव है समाज बदलने से अधिक महत्त्वपूर्ण अखबार बेचना लगे - ''खबर को हजारों लोगों तक पहुंचाने वाला जो साधन है, वह मेरा अपना नहीं है। वह एक व्यावसायिक संस्था का है, जो कि अखबार बेचती है। जिसका उद्देश्य समाज को बदलने का विचार फैलाना नहीं, सिर्फ अखबार बेचना है'' (सहाय, 2000, पृ. 40)। यहीं एक पत्रकार का समाज तथा मनुष्य से बनने वाला संबंध महत्त्वपूर्ण हो जाता है। रघुवीर सहाय की एक प्रसिद्ध कविता है - 'खोज खबर'। जो उनके कविता संग्रह '*कुछ पते कुछ चिट्ठियां*' में संकलित है। जिसमें उन्होंने मीडिया की कार्यशैली को रेखांकित किया है-

> ''मुझसे कहा है कि मृत्यु की खबर लिखो
> मुर्दे के घर नहीं जाओ, मरघट जाओ
> लाश को भुगताने के नियम, खर्च और कुप्रबंध
> खोज-खबर लिख जाओ
> यह तुमने क्या लिखा - झुर्रियां, उनके भीतर छिपे उनके प्रकट होने के आसार
> आंखों में उदासी-सी एक चीज दिखती है
> यह तुमने मरने से पहले का वृत्तांत क्यों लिखा'' (सहाय, 2000, पृ. 300-301)।

मुर्दे के घर यदि आप गए तो सच्ची कहानी पता लग जाएगी और जीवन से मौत की तरफ बढ़ती हुई जीवन स्थितियों की तरफ भी आपका ध्यान जा सकता है, जो पूंजीपतियों के लिए गैर-जरूरी है और उनके वर्गीय हितों के खिलाफ भी। इसलिए मुर्दे के घर नहीं जाना है। खबर के रूप में लाश का आंकड़ा उसको भुगताने के नियम इत्यादि प्रस्तुत कर देना है। ये व्यवस्था वे लोग पैदा कर रहे हैं जो पत्रकारिता और उसके काम करने के तरीके पर कब्जा करना चाहते हैं।

जीविका के साथ दायित्व भी

पत्रकार, ऐसे परिवेश में जहां उसे जीविका के साथ-साथ दायित्व भी निभाना है, अपना कार्य बेहतर ढंग से तब कर सकेगा जब उसका वैचारिक आधार स्पष्ट हो और मानता हो कि व्यापार के अतिरिक्त भी कुछ और आनंद जीवन में है। स्वयं रघुवीर सहाय अपनी इस भूमिका का निर्वहन आजीवन जिम्मेदारी के आधार पर करते रहे। 'पाले और लू' से मरने वालों की वास्तविक स्थिति की पड़ताल करते रहे और रामदास जैसे लोगों की नियति को, सारे खतरे उठाते हुए रेखांकित करते रहे। परिणामस्वरूप उन्हें मालिक का कोप-भाजन तो बनना ही पड़ा साथ ही पत्रकारों की दुनिया में भी उन्हें अपेक्षित सम्मान नहीं मिला। दरअसल, बदलते समय में पत्र-संस्थान के मालिकों को संपादक नहीं, प्रबंधक चाहिए थे। संपादकों के सम्मान में तेजी से गिरावट हो रही थी और व्यावसायिक लाभ की दौड़ में रघुवीर सहाय जैसे जमीन से जुड़े वे संपादक-पत्रकार तेजी से गैर-जरूरी बनते जा रहे थे, जो पूंजी और व्यवस्था के अतिरिक्त केंद्रीकरण में साथ नहीं दे पा रहे थे। दूसरे, लोकतांत्रिक समाज में पत्रकार और सामान्यजन के अधिक तार्किक मानवीय और जिम्मेदारीपूर्ण संबंध की वकालत कर रहे थे और उनके बीच कमजोर होते जा रहे संबंधों पर लगातार प्रश्न उठा रहे थे। उसके कारणों की तलाश कर रहे थे।

एक साक्षात्कार के दौरान जब पंकज शुक्ल ने उनसे सफदर हाशमी की हत्या और फिर उसके विरोध में कलाप्रेमियों के देशव्यापी प्रदर्शन आदि की स्थिति पर सवाल पूछा तो उन्होंने स्थिति का विश्लेषण करते हुए कहा - ''यह किसी के भी साथ हो सकता है - अभी नहीं हो रहा है सब जगह, सफदर हाशमी जैसे लोगों के साथ? लेकिन उन लोगों के साथ हो रहा है जिनको कि आप जानते ही नहीं। आपके समाचार में केवल 'चार आदमी मारे गए' और 'एक औरत मारी गई' रहता है, आपको उनका नाम तक नहीं मालूम, आपका उनके साथ कोई लगाव ही नहीं है। चूंकि सफदर हाशमी के साथ आपका लगाव था, क्योंकि सफदर हाशमी भी विशिष्ट व्यक्ति हैं और आप भी विशिष्ट व्यक्ति हैं, इसलिए आप उनके बारे में चिंतित होते रहे हैं'' (सहाय, 2000, पृ. 541)। यहां रघुवीर सहाय की चिंता समझी जा सकती है। वे सफदर हाशमी की हत्या का विरोध करते हुए अपनी करुणा का दायरा विस्तृत करने की बात करते हैं। अपनी सुविधा के अनुसार मनुष्य जाति, धर्म, वर्ग इत्यादि के अनुसार जो एक संतुलन बना लेता है, उसकी बात करते हैं। कुछ लोग किसी करीबी की हत्या के माध्यम से यह समझ पैदा करते हैं कि जो लोग मारे जा रहे हैं वे हमसे अलग और कोई नहीं हैं, किंतु यह समझ हर किसी की हत्या से पैदा होनी चाहिए। जो खबर छप रही है, जैसी छप रही है उसी से स्पष्ट है कि खबर देने वाले कैसा समाज बनाना चाहते हैं। उसी स्तर पर एक संवेदनशील संपादक-पत्रकार की रचनात्मक भूमिका भी तय होती है।

खबरों के बारे में समझ

खबरों के बारे में रघुवीर सहाय की समझ उनकी पत्रकारिता को रचनात्मक आयाम प्रदान करती है। दरअसल खबर उनके लिए कोई धमाका या सनसनी नहीं है, अपितु वह तो समाज में अपनी शक्ल देखते रहने की, सच को जानने समझने की ताकत है। उन्होंने लिखा है -''जहां तक खबर का सवाल है, उसको खोजने, लिखने और खरीदने वाले तीनों सज्जन खबर को अगर धमाके से खोज रहे हैं और पढ़कर धमाके का अनुभव कर रहे हैं तो उनकी धमाका सहने की शक्ति हो सकता है बढ़ रही हो, पर उनकी सच को समझने की शक्ति घटती जा रही है'' (सहाय,

2000, पृ. 44-45)। खबर उनके लिए धमाका नहीं है। कौतूहल और सनसनी भी नहीं है और न ही तथ्य जुटाकर लिखना भर है। वह लोगों को चौंकाने के स्थान पर भरोसा देती है, हिम्मत बंधाती है तोड़ती नहीं, जोड़ती है। इस प्रकार रचनात्मकता को खबर से जोड़कर वे पत्रकारिता को नया रूप प्रदान करते हैं।

तथ्य और तटस्थता पत्रकारिता के विशेष गुण हैं, किंतु 'यथातथ्यता' और 'तटस्थता' मानव निरपेक्ष मूल्य नहीं हो सकते हैं। यह पत्रकारिता के वास्तविक चरित्र के भी विपरीत है। रघुवीर सहाय के लिए 'यथार्थ यथास्थिति नहीं' है। उनके यहां यथार्थ वही है जो बदलाव की इच्छा पैदा करता है। यथार्थ की उनकी यह समझ उस यथार्थ के समानांतर पत्रकारिता को रचनात्मक आयाम प्रदान करती है - ''खबर में लेखक तथ्यों को बदल नहीं सकता, पर दो या दो से अधिक तथ्यों के मेल से असलियत खोल सकता है। कोई तथ्य अपने आप में यथार्थ नहीं है। तथ्य आदर्श और जीवित मानव संबंध से जुड़कर ही यथार्थ बनता है और वही समाज को बदलने की क्रिया होती है '' (सहाय, 2000, पृ. 38)। जबकि पत्रकारिता के जगत में तथ्यों को जुटाकर लिख भर दिया जाता है। उन तथ्यों का एक दूसरे से क्या संबंध है, यह उजागर नहीं किया जाता है। इससे पाठक में कोई भावना जागृत नहीं होती है, समाचार को जानकर उसमें कोई तड़प और राग उत्पन्न नहीं होता है और समाज को जो ताकत पहुंचनी चाहिए वह नहीं पहुंच पाती है।

पत्रकारिता की मूल संवेदना

रघुवीर सहाय 'अनुभव की तार्किकता' को पत्रकारिता की मूल संवेदना स्वीकार करते हैं। इसी आधार पर वे साहित्य और पत्रकारिता का अंतर्संबंध स्वीकार करते हैं। साहित्यकार अनुभव की बारीकियों से यथार्थ की रचना करता है और पत्रकार भी उसी आधार पर किसी प्रकार का समझौता किए बगैर यथार्थ उद्घाटित कर सकता है। महेश आलोक को दिए गए साक्षात्कार में उन्होंने कहा है - ''प्रत्येक अनुभव, अनुभव की बारीकियां और उसकी गहराई यदि वह खरा है और आप उसका बयान करते हैं, तो वह पत्रकारिता है'' (*सहाय, 2000, पृ. 545*)। सभी खतरे जानते हुए रघुवीर सहाय पत्रकार को क्यों महत्त्व देते हैं यह जानना आवश्यक है? एक तो यह कि वे पत्रकारिता को बदलाव की बड़ी प्रेरक शक्ति मानते हैं और इस मोर्चे पर मनुष्य के हित और सम्मान के लिए लड़ने को प्रतिबद्ध हैं। दूसरे, वे अनुभव से जानते हैं कि अखबार चलाना मतलब अखबार का व्यवसाय करना है। किस खबर को कितना स्थान मिलेगा, कब मिलेगा, यह व्यवसाय को ध्यान में रखकर किया जाता है। पंकज शुक्ल ने एक साक्षात्कार के दौरान 'दिनमान' की समतावादी विचारधारा की पक्षधरता का जब उनसे प्रश्न किया तो उन्होंने स्पष्ट किया कि 'दिनमान' समाजवादी नहीं था। 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के मालिक व्यवसाय करना चाहते थे, समाजवाद का प्रचार नहीं। उसने लोहिया के बारे में जो कुछ शुरुआती दौर में छापा, वह इसलिए कि अखबार बिकेगा। उनकी कोई वैचारिक प्रतिबद्धता नहीं थी। अज्ञेय के संपादन में जब 'दिनमान' निकल रहा था तो, ''दो-तीन वर्षों में 'दिनमान' के हर अंक में आप पाएंगे लोहिया की तस्वीर, लोहिया का नाम और कोई एक विचार करने वाली बात'' (सहाय, 2000, पृ. 540)। 'दिनमान' के कर्मचारी यह जानते थे कि मालिक लोहिया का प्रचार करने के पक्ष में हैं। इसलिए यह जानते हुए भी कि अज्ञेय लोहिया भक्त नहीं हैं, न लोहिया की विचारधारा को पूरी तरह मानते हैं, उन्होंने लोहिया का नाम लेना, प्रचार करना और मालिकों को खुश रखना जारी रखा। तो यह सब कुछ व्यावसायिक लाभ और साख के लिए किया गया, जबकि रघुवीर सहाय का लोहिया से व्यक्तिगत और वैचारिक रिश्ता था। वे लोकतांत्रिक समाजवादी मूल्यों में विश्वास रखते थे और लोहिया उसी की नुमांइदगी करते थे। इसलिए 'दिनमान' की बागडोर संभालने के बाद उन्होंने लोहिया का मिथ्या प्रचार बंद करके उन्हें सही मायनों में गंभीरता से रेखांकित करना शुरू किया।

मौलिक दृष्टिकोण

रघुवीर सहाय की पत्रकारिता संबंधी मान्यताओं से अलग उसके व्यावहारिक पक्ष की सबसे प्रमुख विशेषता उनका मौलिक दृष्टिकोण है। इसमें उनके विषय के चयन और उसकी अभिव्यक्ति में एक नयापन दिखाई पड़ता है। भाषा की जबरदस्त तोड़-फोड़ के साथ विचारों की उधेड़बुन दिखाई पड़ती है। आवेग और प्रतिक्रिया की आक्रामकता से परहेज करते हुए संतुलित वैचारिक प्रतिबद्धता उनकी लोकतांत्रिक पत्रकारिता का प्रमुख उदाहरण है, जिसमें प्रत्येक मनुष्य के साथ एक लोकतांत्रिक रिश्ता बनाने का प्रयास करते वे हमेशा नजर आते हैं।

रघुवीर सहाय ने भारतीयों की औपनिवेशिक मानसिकता पर गंभीरता से विचार किया है। आजादी के उपरांत अंग्रेजी को इस देश की भाषा बनाए रखने के लिए बड़ा षड्यंत्र चलाया गया। इससे शासक वर्ग के हित सुरक्षित होते थे। रघुवीर सहाय देखते हैं कि केंद्र में प्रधानमंत्री से लेकर लिपिक तक के लिए एक प्रकार से अंग्रेजी की योग्यता अनिवार्य है और भारत में यह गर्व का विषय बन गया है कि वे अंग्रेजी जानते हैं, हिंदी ठीक से जानते हों या नहीं। यह स्थिति शासक वर्ग ने पैदा की, लेकिन वही चिल्ला-चिल्लाकर आग्रह करता दिखाई पड़ जाएगा कि कामकाज में अधिकाधिक हिंदी का प्रयोग किया जाना चाहिए, जैसे कि सारी गलती सामान्य जनता की है। शासक वर्ग ने उसे (अंग्रेजी को) संभ्रांत, श्रेष्ठ, आधुनिक और विद्वता का प्रतीक बनाकर भारत की मानसिक गुलामी को प्रशस्त किया है। इतना ही नहीं, जनतांत्रिक मूल्यों के लिए लोकतंत्रीय व्यवहार भी हम विदेशों से आयात कर रहे हैं (सहाय, 2000, पृ. 344)। अधिकारियों की यह बात और चौंकाने वाली होती जा रही है कि हां, मुझे हिंदी भी आती है। एक और बुरी स्थिति है कि हिन्दी के समर्थन में अंग्रेजी हटाओ के नारे इतनी जोर-शोर से लगाए जाते हैं कि अन्य भारतीय भाषाओं के लोग चौकन्ने हो जाते हैं कि कहीं हिंदी को हम पर थोपने का प्रयास तो नहीं हो रहा है। रघुवीर सहाय इस स्थिति के पीछे गहरी राजनीति देखते हैं। इसे एक खास वर्गीय और मानसिक स्थिति वालों का, जनतंत्र के खिलाफ कुचक्र के रूप में देखते हैं, किंतु अब सामाजिक स्तर पर भी अंग्रेजी की स्वीकार्यता दिन-ब-दिन बढ़ रही है। उसके पीछे भी सत्ता में शामिल होने की आकांक्षा ही प्रमुख है। 1990 में 'जनसत्ता' में अनुवाद नहीं करो शीर्षक के अंतर्गत उन्होंने लिखा - ''जिसके पास थोड़ी भी अच्छी सामाजिक स्थिति है वह सत्ता के नजदीक रहना चाहता है और यह जानता है कि सत्ता हिंदी के नजदीक नहीं है। सत्ता को हिंदी की जरूरत तभी पड़ती है जब किसी-न-किसी प्रकार से वंचितों का समर्थन प्राप्त करना

हो'' (सहाय, 2000, पृ. 135)। अर्थात् शासक की भाषा अंग्रेजी है तथा शासित की भाषा हिंदी और भारतीय भाषाएं। इस मानसिकता ने भारत के अंदर कई भारत पैदा किए हैं और एक का दूसरे से कोई विशेष आत्मिक संबंध भी विकसित नहीं हो रहा है। इसका प्रतिवाद करते हुए वे कहते हैं कि अंग्रेजी पत्रकार द्वारा लिखित सामग्री का हिंदी अनुवाद करके पढ़ें उसकी बौद्धिकता स्पष्ट हो जाएगी। ऐसा वे अंग्रेजी पत्रकारिता का विरोध करने के लिए नहीं अपितु उस मानसिकता का प्रतिरोध करने की नीयत से करते हैं, जो अंग्रेजी पत्रकारिता और पत्रकार को हिंदी पत्रकारिता से विशिष्ट समझते हैं।

पूंजीवादी व्यवस्था में उपभोक्तावादी संस्कृति का विकास एक नई तरह की गुलामी की संस्कृति को प्रश्रय दे रहा है। ताकतवर औद्योगिक तंत्र दुनिया को अपने लिए निरंतर छोटा करता जा रहा है और आधुनिक बनाने के नाम पर तरह-तरह के प्रपंच रच रहा है - ''संचार के आधुनिक साधनों से लैस ताकतवर देश शोषित देशों में यह भ्रम फैलाते रहते हैं कि विकसित प्रौद्योगिकी की बासी जूठन पाना ही आधुनिक होना है। देखो आधुनिकता के विचित्र रोग और समृद्धि की सुंदर खतरनाक तस्वीर और भूल जाओ कि विकास राष्ट्र की सम्पत्ति के समान बंटवारे के लिए करना है - फिर यह भी भूल सकते हो कि वह राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए करना है'' (सहाय, 2000, पृ. 27)। हमने आधुनिकता का, विकास का अर्थ वही समझा, जो विश्व की बड़ी शक्तियों ने समझाया। परिणामस्वरूप हमारी भावनाओं से समाज कटता जा रहा है। मनुष्य का सम्मान घटता जा रहा है। बाजार में शामिल होना हमारे लिए आधुनिकता और विकास का पैमाना बन गया है - ''हिंदुस्तानी चेहरे छांटे जा रहे हैं/ विदेशी कंपनियां ढूंढ़ रही हैं सही हिंदुस्तानी चेहरा/ बड़े-बड़े घरों की लड़कियां लोक-पोशाक पहनकर/ नथ चढ़ाकर हाथ की बुनी साड़ी/पहने खड़ी हैं कतार में'' (सहाय, 2000, पृ. 324)। दरअसल, इस व्यवस्था में आधुनिकता और विकास का नारा प्रायोजित करने वाला तो संपन्न होता रहता है, किंतु दूसरा मानसिक, आध्यात्मिक और राजनैतिक रूप से विपन्न होता रहता है। यह कार्य कुछ देशों द्वारा, संभावित खरीददार को एजेंडा के तहत विचार बेचकर किया जा रहा है और मनचाहा परिणाम प्राप्त किया जा रहा है। इनका भारत ही नहीं पूरी दुनिया पर इतना असर है कि कार्यक्रम निर्माण की सारी कसौटियां ध्वस्त हो चुकी हैं। उनका पैदा किया हुआ उपभोक्ता आक्रामक तरीके से स्वयं को दूसरे मनुष्य, समाज और राष्ट्र से अलगाता हुआ, अनेक बार श्रेष्ठ भाव के तहत उनके कार्यक्रम खरीद रहा है। उन्हें उन अनेक शक्तियों का समर्थन भी प्राप्त है, जो मीडिया को कार्यक्रम दिखाने के लिए पैसा देते हैं। ''आज वही कार्यक्रम दिखाए जा सकते हैं जिन्हें खरीदने के लिए सरकार नहीं, बल्कि वे लोग तैयार हों जो दर्शकों को एक दूसरे से तोड़कर अपने उद्देश्यों के मुताबिक समाज बनाना चाहते हैं। जिसमें आदमी के रिश्ते अधूरे और अमानवीय हों'' (सहाय, 2000, पृ. 47)। अमानवीय ताकतों का पहला हमला भाषा पर होता है। एक नए तरह की बाजार की भाषा प्रचलित कर दी जाती है जहां से अभिव्यक्तियां भी 'टारगेट ऑडियंस' के अनुसार तय होती हैं। भाषा की सार्वजनिकता, गंभीरता नष्ट करके उसे ऐसा रूप दे दिया जाता है कि रचना और उसके पाठकों के बीच रचनात्मक रिश्ता नहीं बन पाता है।

आम आदमी के हित की पत्रकारिता

रघुवीर सहाय लोकप्रिय लिखने या सरल लिखने या सतही उत्तेजनाओं के बरक्स गहरे वैचारिक उधेड़बुन से गुजरते हैं और सामान्य पाठक या आदमी के हित को ध्यान में रखकर अपनी पत्रकारिता करते हैं। ऐसा करने के क्रम में वे सत्ताओं की कार्यविधि और मनुष्य की मानसिक अवस्था, जिसमें उन्हें डाल दिया जाता है या उनका परिष्कार नहीं किया जाता है, की भी खबर लेते हैं। जैसे वे समाज की उस मानसिकता पर प्रश्न उठाते हैं, जिसमें नारी, उसकी नारी संबंधी समझ के सांचे में फिट नहीं बैठती है और उस पर बलात्कार करने वाले को दोषी नहीं कहती है। वह औरत का इस रूप में इस्तेमाल करने की हिमायती है कि उसे जीवित रखा जाय पर वह मनुष्य न बन पाए, वस्तु बनकर पड़ी रहे। रघुवीर सहाय इसे राजनैतिक आकांक्षा और शक्ति के केंद्रीकरण के रूप में व्याख्यायित करते हैं - ''औरत का इस्तेमाल बलात्कार के द्वारा यौन स्वार्थ की पूर्ति के लिए होना समस्या का केवल एक पक्ष है। इसके पीछे पुरुष की वासना से अधिक है पुरुष समाज की वह राजनैतिक आकांक्षा, जिसकी पूर्ति में वह एक शक्तिशाली वर्ग के साथ शामिल है और जिससे यह रणनीति बनती है कि मनुष्यों को स्वतंत्र व्यक्ति न रहने दिया जाए। स्त्री इस रणनीति में सबसे पहला आसान आक्रमण झेलने को अभिशप्त है'' (सहाय, 2000, पृ. 457)। सत्ता राजनैतिक षड्यंत्र से और विभिन्न संस्थाओं के माध्यम से साधारण नागरिकों को भी अपनी रणनीति में शामिल करती है और अपने अनैतिक कार्यों के लिए वैधता और सामाजिक-नैतिक अधिकार प्राप्त करती है। 'जनसत्ता' में लिखे गए कॉलम 'बलात्कार का नैतिक अधिकार' में वे इस तथ्य की तरफ इशारा करते हैं कि प्रशासनिक मशीनरी कैसे सामान्य मनुष्य को अपनी रणनीति में शामिल करने में सफल हो रही है। माया त्यागी, जो एक डकैत थी, को भीड़ ने सड़क पर नंगा कर दिया और जब पुलिस से सवाल किया गया तो उसने कहा कि हमने नहीं जनता ने नंगा किया है। यह भीड़ और अमानवीय व्यवस्था के हाथ मिला लेने का खतरनाक समीकरण है। स्त्री-पुरुष के रिश्ते में कुछ इसी तरह का समीकरण सामंतवाद और पूंजीवाद का बना हुआ है। जहां सामंती समझ और ब्लैक इंटरनेट ने उनके आत्मीय संबंधों को भी अनुचित असीमित भोग की श्रेणी में ला खड़ा किया है।

'जाति प्रथा की कसौटी' नामक कॉलम में रघुवीर सहाय ने खुशवंत सिंह की उस मुहिम को अमानवीय बताते हुए उनकी जमकर खबर ली, जिसमें उन्होंने एक पत्रिका में संपादक की हैसियत से भारत की विभिन्न जातियों के नामी व्यक्तियों का सचित्र परिचय छापना शुरू किया था। ''इन्हीं संपादक की विद्या या विचार के जातिगत टुकड़े करने वाली पत्रकारिता की बदौलत मुझे पहली बार ज्ञात हुआ कि रविशंकर, जिन्हें मैं अपने चारों ओर की जातियों से ऊपर 'कलाकार' की जाति का सदस्य मानता था और कुछ नहीं, केवल रविशंकर मुखर्जी हैं'' (सहाय, 2000, पृ. 477)। खुशवंत सिंह की भांति ही दूसरे प्रकार के अनेक ऐसे बुद्धिजीवी भी हैं, जो मानकर चलते हैं कि जाति पर बात न करो तो जाति स्वतः ही खत्म हो जाएगी। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य में अनेक प्रगतिशील रचनाकारों ने इसी पद्धति से जाति की समस्या से निपटा है। कुछ ने यह मान लिया कि लिखते रहेंगे और देश से जाति की समस्या समाप्त होती रहेगी। रघुवीर

सहाय जाति की समस्या का प्रश्न औपनिवेशिक सोच, वर्गीय-जातीय मनःस्थिति और व्यक्तिगत व्यवहार के स्तर पर उठाते हैं। 'जनसत्ता' में अर्थात् कॉलम लिखते हुए 'रामदास की नौकरी' कॉलम में उन्होंने पेशा-जाति और सामाजिक व्यवहार की गंभीर बहस छेड़ी है और अमानवीय व्यवस्था में समाज से भंग कर दिए गए भंगी समाज के सम्मान और रोजी-रोटी के सवाल को रामदास के माध्यम से उठाया है।

अपनी पत्रकारिता में रघुवीर सहाय ने ऐसी भी अनेक बातें लिखी हैं, जो प्रचलित प्रगतिशीलता के पैमानों से मेल नहीं खाती हैं। जैसे कांग्रेस सरकार की अमानवीयता का उत्तर देने के लिए वे संयुक्त समाजवादी पार्टी और जनसंघ से उम्मीद लगाते हैं तो नक्सलवादियों और सत्ताधारियों पर एक ही नीति रखने का आरोप लगाते हैं। देश में सांप्रदायिकता के जिम्मेदार लोगों की खबर लेते हैं तो तुष्टीकरण को सांप्रदायिकता का ही एक रूप स्वीकार करते हैं। हिंदुस्तान के हिंदू-मुसलमान को प्रत्येक राज्य में एक ही भाषा, संस्कृति की नुमाइंदगी करने के लिए समान नागरिक निजी कानून की वकालत करते हैं।

व्यावहारिक दृष्टिकोण

ये वे विषय हैं जिन पर भारत का बुद्धिजीवी बहुत कम लिखता-बोलता है। बोलता-लिखता है तो तय खेमेबाजी और खास 'परसेप्शन' के आधार पर बोलता-लिखता है, जबकि रघुवीर सहाय चाहे संपादकीय लिखें, कॉलम लिखें अथवा खबर लिखें, नितांत व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाते हैं। कौन क्या है, के बजाय कौन क्या कर रहा है, पर विशेष ध्यान देते हैं। पत्रकारिता का काम ही रोज-रोज निकल आती कीलों और उससे उत्पन्न दर्द को समझने का है, इसलिए उसे प्रत्येक बात, विचार, घटना की सूक्ष्म पड़ताल करनी होती है, कहने का साहस करना होता है, उसके खतरे उठाने होते हैं। यह खतरा संगठित राजनीति से तो है ही, जमातों और प्रतिष्ठानों और चालू धाराओं से भी पैदा होता है। रघुवीर सहाय इन खतरों को उठाने में विश्वास रखते हैं। इसलिए उनकी पत्रकारिता अधिक ऊबड़-खाबड़ रास्तों से गुजरती है।

पत्रकार राजकिशोर (2016) ने 'रघुवीर सहाय की पत्रकारिता न झूठा गुस्सा न सतही उत्तेजनाएं' नामक लेख में उनकी इस विशेषता की तरफ इशारा किया है। ''पिछड़ी जातियों के लिए आरक्षण पर बहस में वे उन असंख्य संवेदनशील लोगों की तरह अलग-थलग पड़ गए थे, जो न इसका समर्थन कर पा रहे थे, न विरोध। इसलिए कि आरक्षण को वे एक स्वतंत्र घटना के रूप में देखने को तैयार नहीं थे। उन्हें स्वतंत्रता और समानता के लिए संघर्ष की परंपरा की एक कड़ी के रूप में ही आरक्षण स्वीकार्य था। लेकिन वे आरक्षण विरोध की वास्तविकताओं को भी देख रहे थे, इसलिए उस विरोध की एकाग्र भर्त्सना करने की आकुलता भी उनमें नहीं थी। आरक्षण के संदर्भ में वे शायद अकेले व्यक्ति थे जिसने यह सवाल उठाया कि जिस नौकरशाही में आप पिछड़ों को हिस्सेदारी देने जा रहे हैं उनकी शक्ल के बारे में आपका क्या ख्याल है?''(पृ. 102-103)।

दरअसल रघुवीर सहाय को आरक्षण नहीं, आरक्षण देने के तरीके पर ऐतराज है, जिसका संगठित राजनीति लोगों को बांटने और एक के मन में दूसरे के प्रति ऐसे टेक्स्ट भरने के लिए करती है ताकि संवाद के समस्त साधन अवरुद्ध हो जाएं। अपनी डायरी में 1990 में उन्होंने लिखा है - ''गरीबी हटाओ के रूप में है, ये आरक्षण, 'गैर-बराबरी मिटाओ' के रूप में नहीं है। गरीबी हटाओ एक पूंजीवादी समाज का कार्यक्रम है। गैर-बराबरी मिटाओ एक नया समाज बनाने का कार्यक्रम है। 1971 में गरीबी हटाओ और 1990 में 'आरक्षण' एक ही प्रकार के सामाजिक परिवर्तन है; जबकि 1960 में आरक्षण एक गैर-बराबरी मिटाओ कार्यक्रम था'' (सहाय, 2000, पृ. 426)। डायरी में लिखी इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि रघुवीर सहाय आरक्षण का विरोध नहीं करते हैं' अपितु आरक्षण देने के तरीके पर उंगली उठाते हैं, इसलिए कि आरक्षण सामाजिक-सांस्कृतिक बदलाव का सूचक बने न कि वैमनस्य का, या महज एक राजनीतिक टूल का।

रघुवीर सहाय की पत्रकारिता पर बात करते हुए उनकी पत्रकारिता की भाषा पर बात करना जरूरी है, जो प्रचलित पत्रकारिता की भाषा से स्वतंत्र मिजाज रखती है। रघुवीर सहाय भाषा के मोर्चे पर बहुत सजग रचनाकार हैं, फिर चाहे वे साहित्य लिख रहे हों अथवा पत्रकारिता कर रहे हों। वास्तव में जो आदमी वे बनाना चाह रहे थे उस पर अनेक तरह के संकट हैं। व्यावसायिकता, पत्रकारिता की भाषा का सरलीकरण करके बाजार निर्मित समझ प्रस्तुत करने का यंत्र बनाती है और सत्ता उसकी भाषा को इस रूप में प्रभावित करती है कि उसके कहे से अपने हित में फायदा उठा सके। निरंतर बढ़ते इस खतरे में रघुवीर सहाय सामान्य जन से बहुत सार्थक, सटीक अभिधात्मक भाषा में संवाद करने की आवश्यकता महसूस करते हैं। उनकी इस चिंता को उनकी 'दो अर्थ का भय' कविता में देखा जा सकता है'' (सहाय, 2000, पृ. 157)। उनकी पत्रकारिता की भाषा में आए बदलाव, नए प्रकार का शिल्प दरअसल उनकी चिंता का ही विस्तार है।

संगठित सत्ताएं भाषा को तोड़ने-मरोड़ने और अपने पक्ष में करने का भरसक प्रयास करती हैं। वे शब्दों को नष्ट करती हैं, नए संदर्भ में ढालकर उसकी गंभीरता समाप्त करती हैं, अपने हित में नए शब्द गढ़ती हैं और जनमानस में नए संस्कार और संस्कृति को प्रचलित करती हैं। रघुवीर सहाय इस तरह की संस्कृति से अवगत थे। वे देख रहे थे कि जो घटना दृष्टि पैदा कर सकती है वह दृश्य परोस रही है, दुख की रचना सुख पैदा कर रही है, दलीलें और बहस न ठीक मुद्दे पर विचार करने देते हैं न ही संवाद को बढ़ावा दे पा रहे हैं, असरदार बातों में सार्थकता नहीं दिखाई पड़ रही है। इसका बड़ा कारण वे भाषा के जनोन्मुख स्रोतों पर सुनियोजित षड्यंत्र के रूप में देखते हैं। इसलिए भाषा के मोर्चे पर एक निरंतर संघर्ष की स्थिति, हम रघुवीर सहाय की पत्रकारिता में पाते हैं। जैसे भारत में राजनीति शब्द सत्तानीति का पर्याय बनता जा रहा है। राजनीति शब्द आते ही किसी गंदगी या बुराई का एहसास होने लगता है, लेकिन रघुवीर सहाय राजनीति जैसे सार्थक शब्द और सांस्कृतिक गतिविधि को सत्तानीति का पर्याय नहीं बनने देना चाहते हैं, क्योंकि उनके लिए लोकतंत्र में, राजनीति में विश्वास बनाए रखना, बहुत कुछ बचाए रखना है (सहाय, 2000, पृ. 478)। इसी प्रकार वे सुविधा के अनुसार किसी को सांप्रदायिक और किसी को गैर-सांप्रदायिक साबित करने के शगल को भी आड़े हाथों लेते हैं और कहते हैं कि सांप्रदायिकता विरोधी संस्था या दल होने का अभिप्राय एकता समर्थक होना नहीं है (सहाय, 2000, पृ. 371)। इस प्रकार वह गैर-सांप्रदायिक और

सांप्रदायिक संदर्भों का अर्थ-विस्तार करते हैं और सत्तानीति के पैंतरों को उद्घाटित करते हैं।

सहाय के शब्द चयन का बारीक विश्लेषण

रघुवीर सहाय की पत्रकारिता इसी संदर्भ में भरी-पूरी आंख की पत्रकारिता है कि वह यथार्थ को कई स्तरों पर पकड़ती और उद्घाटित करती है। वे बार-बार यह तथ्य रेखांकित करने का प्रयास करते हैं कि कार्यक्रम घोषित करना नीति नहीं है। किसी आंदोलन से, अनशन से आम जनता को राहत मिली या ताकत का विश्लेषण ही आंदोलन के मूल्यांकन का मूल होना चाहिए। इसके साथ-साथ सत्ताओं के शब्द चयन का बारीक विश्लेषण भी हमें उनकी पत्रकारिता में दिखाई पड़ता है। जैसे 'भयंकर अकाल' शब्द के प्रयोग पर वे कहते हैं कि अकाल स्वयं में ही भयंकर यथार्थ है। देशी या विदेशी शराब के संदर्भ में देशी शराब से मरने वालों पर अखबारों में समाचार को वे अच्छी, विदेशी शराब पीने के समर्थन में एक खास तरह का तर्क स्वीकार करते हैं। 'जनता' और 'भीड़' शब्दों के प्रयोग में विशेष सावधानी बरतते हैं तो नेत्रहीन और दृष्टिहीन होने का फर्क समझते-समझाते हैं। दृष्टि और दृश्य का फर्क समझाते हैं तो यथार्थ को यथातथ्यता नहीं मानते हैं और समकालीनता को महज कालबोधक न मानकर मूल्यबोधक स्वीकार करते हैं और उसे मनुष्य के प्रति पक्षधरता से जोड़ते हैं। अपूर्वानंद (2008) ने उनकी पत्रकारिता की भाषा को 'संदर्भ की बहस का गद्य' कहा है, क्योंकि वह समाज में मनुष्यों के आपसी रिश्तों की आर्थिक और सांस्कृतिक समझ को बढ़ाने का कार्य करती है, न कि तात्कालिक प्रचार के लिए खंडित सत्य से ही काम निकालने वाली शब्दावली का सहारा लेती है। ''हिंदू-मुसलमान संघर्ष की प्रवृत्ति भारत की समाजवादी आकांक्षाओं की सबसे बड़ी शत्रु है'' (सहाय, 2000, पृ. 436)। क्योंकि दोनों में भारतीय चरित्र और स्वभाव की गहरी समानताएं हैं और जब ये समानताएं खंडित हो जाएंगी तो ऐसा कुछ भी नहीं बचेगा, जो रचनात्मक हो।

उनकी पत्रकारिता में शब्दों की मितव्ययिता का विशेष ध्यान दिखाई पड़ता है। कहीं भी भावों का 'पैराफ्रेज' नहीं है। वाक्य संरचना इतनी ठोस है कि कोई भी शब्द निकाल देने पर या फिर उसका क्रम बदल देने पर अर्थ का अनर्थ हो सकता है। वे चमकदार पंक्तियां भी नहीं मिलेंगी, जिनका नारों में उपयोग किया जा सके। उनकी पत्रकारिता गैर-जरूरी तथ्यों के समावेश से भी परहेज करती है। उसी गंभीर और स्थिर भाषा में व्यंग्य भी विन्यस्त है। प्रायः इस तरह कि व्यंग्य का अनुमान ही नहीं होता है, किंतु वह विरोधाभासों, विसंगतियों को रेखांकित कर सोचने पर मजबूर करता है। व्यंग्य की यह बारीकी 'ऊबे हुए सुखी' संग्रह के नाम और 'उम्दा जीवन दास विचार' जैसे शीर्षकों के माध्यम से समझा जा सकता है। आमतौर पर प्रचलित धारणा के अनुसार पत्रकारिता की भाषा जैसी होनी चाहिए रघुवीर सहाय की भाषा उससे काफी अलग है, जिसके अपने राजनीतिक-सांस्कृतिक सरोकार हैं। उनकी भाषा आम जनता की भाषा नहीं है। लगभग साहित्यिक भाषा है। अंग्रेजी के शब्दों से वह प्रायः दूरी बनाते हैं और हिंदी को सटीक अभिव्यक्ति में सक्षम भाषा के रूप में बरतते हैं। देशज शब्दों के माध्यम से कथ्य को और गंभीर, लोकप्रिय और मारक बनाते हैं।

निष्कर्ष

विषय और अभिव्यक्ति के स्तर पर अलग राह अपनाना रघुवीर सहाय की मजबूरी है, क्योंकि उन्हें जिस असर की दरकार थी वह चलताऊ मूल्यों और पद्धति से निर्मित हो पाना संभव नहीं है, किंतु अलग राह अपनाने के अपने संकट हैं, जो स्वयं उनके जीवन में घटित होते हैं। न पत्रकार जमात उन्हें पूरी तरह से स्वीकार कर पा रही थी न ही तेजी से बदलती पत्रकारिता के सांचे में वे फिट बैठ सके। फिर भी पत्रकारिता को वे एक जागरूक संवाद माध्यम मानकर बरतते हैं। सत्ता की संस्कृति और व्यवहारों में विन्यस्त डर और दहशत को समेटते हैं तथा विकल्प की प्रस्तुति के साथ संभावनाओं पर बल देते हैं। उनकी पत्रकारिता क्रूरतर तथा एकीकृत व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष की अनुगूंज है। हालांकि कई बार ऐसा जरूर लगता है कि उनकी पत्रकारिता स्वयं को गैर-कांग्रेसवाद की राजनीति तक समेट लेती है, जिससे कुछेक मुद्दों, उभारों पर उनका उतना सामर्थ्यवान विरोध नहीं दिखाई पड़ता जितना होना चाहिए था, किंतु जो लिखा उसकी जरूरत से भी इनकार नहीं किया जा सकता है।

संदर्भ

अपूर्वानंद. (2008). *साहित्य का एकांत*, पृष्ठ - 138 (प्रथम संस्करण ed.). दिल्ली: वाणी प्रकाशन.

राजकिशोर. (1996). *हिंदी लेखक और उसका समाज*, पृष्ठ- 102-103 (प्रथम संस्करण ed.). पंचकुला: आधार प्रकाशन.

सहाय, र. (2000). *रघुवीर सहाय रचनावली* - 4. पृष्ठ- 60 . संपादन , सुरेश शर्मा (प्रथम संस्करण ed.). दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

सहाय, र. (2000). *रघुवीर सहाय रचनावली* - 4 . पृष्ठ - 40 . संपादक - सुरेश शर्मा (प्रथम संस्करण ed.). दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

सहाय, र. (2000). *रघुवीर सहाय रचनावली*, पृष्ठ- 300-301. संपादक- सुरेश शर्मा (प्रथम संस्करण ed.). दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

सहाय, र. (2000). *रघुवीर सहाय रचनावली* - 3 , पृष्ठ - 541 (प्रथम संस्करण ed.). दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

सहाय, र. (2000). *रघुवीर सहाय रचनावली* - 4 , पृष्ठ - 44-45. संपादक - सुरेश शर्मा (प्रथम संस्करण ed.). दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

सहाय, र. (2000). *रघुवीर सहाय रचनावली* - 4 , पृष्ठ- 38. संपादक- सुरेश शर्मा (प्रथम संस्करण ed.). दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

सहाय, र. (2000). *रघुवीर सहाय रचनावली* - 3, पृष्ठ- 545 . संपादक- सुरेश शर्मा (प्रथम संस्करण ed.). दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

सहाय, र. (2000). *रघुवीर सहाय रचनावली* - 3, पृष्ठ - 540 . संपादक- सुरेश शर्मा (प्रथम संस्करण ed.). दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

सहाय, र. (2000). *रघुवीर सहाय रचनावली* - 4, पृष्ठ - 344. संपादक- सुरेश शर्मा (प्रथम संस्करण ed.). दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

सहाय, र. (2000). रघुवीर सहाय रचनावली - 5 , पृष्ठ - 135 . संपादक-सुरेश शर्मा (प्रथम संस्करण ed.). दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

सहाय, र. (2000). *रघुवीर सहाय रचनावली* - 4, पृष्ठ - 27 . संपादक-सुरेश शर्मा (प्रथम संस्करण ed.). दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

सहाय, र. (2000). *रघुवीर सहाय रचनावली* - 1, पृष्ठ - 324. संपादक-सुरेश शर्मा (प्रथम संस्करण ed.). दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

सहाय, र. (2000). रघुवीर सहाय रचनावली - 4, पृष्ठ - 47. संपादक-सुरेश शर्मा (प्रथम संस्करण ed.). दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

सहाय, र. (2000). *रघुवीर सहाय रचनावली* - 5, पृष्ठ - 457. संपादक-सुरेश शर्मा (प्रथम संस्करण ed.). दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

सहाय, र. (2000). *रघुवीर सहाय रचनावली* - 5, पृष्ठ - 477 . संपादक-सुरेश शर्मा (प्रथम संस्करण ed.). दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

सहाय, र. (2000). *रघुवीर सहाय रचनावली* - 2, पृष्ठ - 426. संपादक-सुरेश शर्मा (प्रथम संस्करण ed.). दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

सहाय, र. (2000). *रघुवीर सहाय रचनावली* - 1, पृष्ठ - 157. संपादक-सुरेश शर्मा (प्रथम संस्करण ed.). दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

सहाय, र. (2000). *रघुवीर सहाय रचनावली* - 4, पृष्ठ - 478. संपादक-सुरेश शर्मा (प्रथम संस्करण ed.). दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

सहाय, र. (2000). *रघुवीर सहाय रचनावली* - 5, पृष्ठ - 371. संपादक-सुरेश शर्मा (प्रथम संस्करण ed.). दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

सहाय, र. (2000). *रघुवीर सहाय रचनावली* - 4, पृष्ठ - 436 . संपादक-सुरेश शर्मा (प्रथम संस्करण ed.). दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

संचार माध्यम | खंड 32(2): 18-21, जुलाई-दिसंबर 2020
आईएसएसएन: 2321-2608

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की पत्रकारिता

डॉ. राजकुमार उपाध्याय 'मणि'[1]

सारांश

हिंदी साहित्य में आधुनिक काल का नाम लेते ही भारतेंदु का स्मरण स्वतः हो जाता है, किंतु भारतेंदु युग के उपरांत सहसा द्विवेदी युग में पूर्ण व प्रभावशाली आधुनिकता का बोध होने लगता है जिसे रामविलास शर्मा ने हिंदी नवजागरण का तृतीय चरण बताया है। विशेषतः उन्होंने अपनी कृति 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण' में प्रबल रूप से स्थापित किया कि भारतीय स्वाधीनता के संघर्ष में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी हिंदी नवजागरण के उन्नायक थे। अपने समय में ही आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी 'सरस्वती' पत्रिका और पत्रकारिता के प्रतिमान बन गए। समूचा उत्तर भारत उनकी मेधा से परिचित हुआ ही, देश-देशांतर में 'सरस्वती' पत्रिका के चल जाने से अधिक ख्याति बढ़ने लगी। 'सरस्वती' पत्रिका के अपने सत्रह वर्षों के प्रकाशन काल में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी हिंदी जगत् के पितामह बन गए थे। 'सरस्वती' में छपना आचार्य द्विवेदी का वरदहस्त माना जाता था। साहित्यिक अनुशासन की कसौटी पर उन्होंने अनेक साहित्यकारों को संवारा-निखारा तो अनेक लोगों से उन्हें प्रतिरोध भी सहना पड़ा था।

संकेत शब्द : पत्रकारिता, महावीर प्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्य, सरस्वती

प्रस्तावना

हिंदी की 'सरस्वती' पत्रिका और पत्रकारिता के प्रतिमान बन चुके आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी (1864-1938) का जन्म जिला रायबरेली के दौलतपुर नामक ग्राम में हुआ था (नगेंद्र , 2001, पृ. 496)। संपूर्ण गांव में वैसे तो साहित्यिक परिवेश था, किंतु वहां शिक्षा-अध्ययन का कोई केंद्र नहीं था। महावीर प्रसाद द्विवेदी के परिवार का वातावरण संस्कृतमय था। ननिहाल में नाना-मामा भी पांडित्य-परंपरा की कड़ी थे। यही कारण रहा कि महावीर प्रसाद द्विवेदी को जहां ग्रामीण परिवेश के उक्ति-सवैयों ने हिंदी साहित्य की ओर प्रेरित किया, वहीं उनके ननिहाल ने उन्हें संस्कृत साहित्य में गहन अध्ययन की ओर उन्मुख किया। परिणामतः शब्दकोश, अमरकोश, दुर्गासप्तशती और कालिदास साहित्य का अध्ययन घर पर ही होने लगा। आगे की उनकी शिक्षा मदरसे से प्रारंभ हुई, जहां कुछ दिन पढ़ने के बाद ही उन्हें छोड़ना पड़ा और यहां के प्रमाण पत्र में भूलवश उनका नाम 'महावीर सहाय' से 'महावीर प्रसाद' हो गया। जिस नाम को संपूर्ण हिंदी जगत् आज 'आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी' के नाम से जानता है। अंग्रेजकालीन भारत में प्रारंभिक शिक्षा के अध्ययन की बड़ी कठिनाई थी, क्योंकि विद्यालय अत्यंत दूर होते थे। परिणामस्वरूप उन्हें दौलतपुर गांव में उर्दू सीखने के बाद अंग्रेजी पढ़ने के लिए रायबरेली जाना पड़ता था, किंतु यहां संस्कृत न पढ़ाए जाने के कारण उन्हें सहभाषा के रूप में फारसी पढ़नी पड़ी। दूरी और गरीबी से त्रस्त रायबरेली का विद्यालय भी उन्हें छोड़ना पड़ा और इस तरह फतेहपुर में उनकी औपचारिक शिक्षा का अंत हुआ।

तत्कालीन भारत अंग्रेजी कुशासन से पीड़ित था। इनके पिता भी अंग्रेजी शासन के गुलाम सिपाही थे, जिनकी पलटन अट्ठारह सौ सत्तावन के स्वतंत्रता आदोलन में विद्रोही हो गई थी। विद्रोह के समय द्विवेदी जी बंबई में बल्लभ संप्रदाय में दीक्षित होकर रहने लगे थे। आजीविका का साधन न होने के कारण और पढ़ाई छूटने के बाद उन्होंने अजमेर रेलवे में पंद्रह रुपये मासिक पर नौकरी का कार्य शुरू किया, किंतु यहां नहीं जमा तो पिताजी के पास दस रुपये मासिक की नौकरी शुरू कर दी। कर्मनिष्ठ द्विवेदी जी ने ईमानदारीपूर्वक यहीं पर तार विभाग और रेलवे विभाग में नौकरी करके अपने व्यक्तित्व का अच्छा परिचय दिया, तत्पश्चात् टेलीग्राफ इंस्पेक्टर के रूप में झांसी चले गए।

'सरस्वती' से सम्पर्क

बंबई-झांसी के स्थानांतरण-प्रत्यंतरण से ऊबे महावीर प्रसाद द्विवेदी को अंग्रेजी अफसरों की खुशामद करना अच्छा नहीं लगा, यही कारण था कि कार्य के भार और तानाशाह अधिकारियों के कारण उन्होंने नौकरी से इस्तीफा दे दिया। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी नौकरी करते समय झांसी में ही 'सरस्वती' मासिक पत्रिका के संपर्क में आए। बाबू चिंतामणि घोष से उनकी एक पाठ्य पुस्तक के संशोधनोपरांत द्विवेदी जी का संपर्क हुआ। इसी समय 'सरस्वती' मासिक पत्रिका के संपादकों के कार्य छोड़ देने के बाद द्विवदी जी ने नौकरी के दौरान 'सरस्वती' का कार्यभार संभाल लिया। सन् 1903 में नौकरी छोड़कर पत्रिका का संपादन करने लगे। झांसी में ही नवोदित कवि मैथिलीशरण गुप्त से उनका परिचय हुआ। सन् 1905 से अविरल-नियमित ढंग से 'सरस्वती' के प्रकाशन से लोगों ने आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का लोहा मान लिया। 'सरस्वती' पत्रिका को लेकर रामविलास शर्मा का मत है कि "सरस्वती सबसे पहले ज्ञान की पत्रिका थी, वह हिंदी नवजागरण का मुख पत्र थी और हिंदी-भाषी जनता की सर्वमान्य जातीय पत्रिका थी। ज्ञान की रीतिवादी रूढ़ियों का नाश करके नवीन सामाजिक-सांस्कृतिक स्तर पर भारतीय साहित्य में वह प्रतिष्ठा प्राप्त की, जो बीसवीं सदी में अन्य किसी पत्रिका को प्राप्त न हुई" (शर्मा, 2018, पृ.360)। इसके बाद सरस्वती का संपादन झांसी से न करके कानपुर के जूहीकलां गांव से शुरू किया गया। इसी वर्ष से 'सरस्वती' पर 'सभा की छाया' (अनुमोदन शब्द) नागरी

[1]सह आचार्य, हिंदी विभाग, हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला, हिमाचल प्रदेश। ईमेल : rkumani@gmail.com

प्रचारिणी सभा, काशी से इसका विवाद उठा। फरवरी, 1905 में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'अनुमोदन का अंत' नामक संपादकीय के अंत में 'अनीस कवि' की कविता छापी थी, जिसकी पंक्ति की अंतिम अर्द्धावली अत्यन्त मार्मिक थी—

देस में रहेंगे, परदेस में रहेंगे,
काहू भेस में रहेंगे, तऊ रावरे कहावैंगे।

पत्रकारिता के प्रतिमान

कुछ समय में ही आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी 'सरस्वती' पत्रिका और पत्रकारिता के प्रतिमान बन गए। समूचा उत्तर भारत उनकी मेधा से परिचित हुआ ही, देश-देशांतर में 'सरस्वती' पत्रिका के चल जाने से अधिक ख्याति बढ़ने लगी। इस संदर्भ में नगेंद्र (2015) लिखते हैं कि "सन् 1903 में ये 'सरस्वती' के संपादक बने और 1920 तक बड़े परिश्रम और लगन से यह कार्य करते रहे। 'सरस्वती' के संपादक के रूप में इन्होंने हिंदी भाषा और साहित्य के उत्थान के लिए जो कार्य किया, वह चिरस्मरणीय रहेगा" (पृ. 497)। कहने का अभिप्राय यह है कि 'सरस्वती' और द्विवेदी जी एक-दूसरे के पूरक बन गए थे। आचार्य द्विवेदी के संपादकीय-अनुशासन ने सरस्वती का विस्तार ही नहीं किया, अपितु अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध वैचारिक आंदोलन से जन-जागरण को जागृत कर समाज में आधुनिकता का उन्मेष किया। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की संपादन-कला की समस्त विशेषताओं को लक्षित करते हुए उदयभानु सिंह (2000) लिखते हैं- "जनवरी 1903 से द्विवेदी जी ने संपादन आरंभ किया। पत्रिका के अंग-अंग में उनकी प्रतिभा की झलक दिखलाई पड़ी। विषयों की अनेकरूपता, वस्तुयोजना, संपादकीय टिप्पणियों, पुस्तक-परीक्षा, चित्रों, चित्र-परिचय, साहित्य-समाचार के व्यंग्यचित्रों, मनोरंजक सामग्री, बाल-वनितोपयोगी रचनाओं, प्रारंभिक विषय-सूची, प्रूफ-संशोधन और पर्यवेक्षण में सर्वत्र ही संपादन-कला-विशारद द्विवेदी का व्यक्तित्व चमक उठा" (पृ. 162)।

द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' पत्रिका को नई साहित्यिक विधाओं के परिमार्जन के साथ-साथ भाषा के परिष्कार एवं साहित्यकारों के निर्माण की फैक्टरी बना डाली। इस संदर्भ में तिवारी (2015) अपनी पुस्तक 'हिंदी का गद्य-साहित्य' में लिखते हैं – "सरस्वती का महत्त्व तीन दृष्टियों से है। एक तो इसके माध्यम से हिंदी-भाषा का परिष्कार हुआ और हिंदी की वाक्य-रचना एवं पदविन्यास में एकरूपता लाने की चेष्टा की गई; दूसरे, इसकी प्रेरणा से हिंदी में अनेक लेखक और कवि प्रतिष्ठित हुए। तीसरे, इसी के माध्यम से हिंदी की नवीन गद्य विधाओं के विकास का पथ प्रशस्त हुआ" (पृ. 628)। इस प्रकार 'सरस्वती' कवियों व गद्य लेखकों की पाठशाला बन गई थी, जिसमें रचना छप जाना स्वयं के साहित्यकार बन जाने का प्रमाणपत्र था। 'सरस्वती' की प्रयोगशाला में जहां 'कहानी' विधा का जन्म हुआ, वहीं अनेक साहित्यकारों का निर्माण हुआ।

सात वर्ष तक कठोर परिश्रम करते हुए द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' को साहित्यिक शिखर पर स्थापित कर दिया था। उनके संपादन और अथक लेखन ने उन्हें रुग्ण बना दिया। यही कारण था कि उन्हें सन् 1910 में उन्निद्र रोग से पीड़ित होने के कारण अपने मित्र पं० देवी प्रसाद शुक्ल को 'सरस्वती' पत्रिका का संपादन कार्य सौंपना पड़ा। अगले वर्ष उन्होंने सन् 1911 में संपादन कार्य शुरू किया तो 1918 तक चलता रहा, किंतु इसी वर्ष स्नायु-रोग हो जाने के कारण दो वर्ष के लिए अवकाश लेना पड़ा। परिणामतः पुनः पं० देवी प्रसाद शुक्ल ने संपादन कार्य संभाला, परंतु आचार्य द्विवेदी जैसा समर्पण न होने के कारण 'सरस्वती' का प्रचार-प्रसार कम होने लगा और लोकप्रियता की रेखा नीचे जाने लगी। तब पत्रिका के मालिक बाबू चिंतामणि घोष के आग्रह पर सन् 1920 में उन्होंने पुनः संपादन कार्य संभाला, परंतु उस प्रखर प्रतिभा ने शारीरिक शिथिलता के कारण कुछ महीने तक संपादन-कार्य करने के बाद पुनः हमेशा के लिए संपादन कार्य से अवकाश ले लिया। किंतु वे 1928 तक नियमित दो लेख तक लिखते रहे। अपने गांव में निवास करते हुए द्विवेदी जी 'सरस्वती' से जुड़े रहे, जिसका संपादन पं० देवी प्रसाद शुक्ल कर रहे थे। द्विवेदी जी के काल में हरिभाऊ उपाध्याय 'सरस्वती' में सहयोगी संपादक के रूप में कार्य कर चुके थे, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी 'सरस्वती' पत्रिका के नये संपादक चुने गए, यद्यपि द्विवेदी जी ने कुछ समय तक उनका सहयोग किया।

हिन्दी जगत् के पितामह

'सरस्वती' पत्रिका के अपने सत्रह वर्षों के प्रकाशन काल में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी हिंदी जगत् के पितामह बन गए थे। सरस्वती में छपना आचार्य द्विवेदी का वरद्हस्त माना जाता था। साहित्यिक अनुशासन की कसौटी पर उन्होंने अनेक साहित्यकारों को संवारा-निखारा तो अनेक लोगों से उन्हें प्रतिरोध भी सहना पड़ा था। 'सरस्वती' पत्रिका की ख्याति और महावीर प्रसाद द्विवेदी की लोकप्रियता का प्रमुख कारण तद्युगीन साहित्यिक-युद्ध अर्थात् पत्रकारिता का वाद-विवाद-संवाद की प्रधानता है। 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित 'अनुमोदन का अंत' संपादकीय से 'सरस्वती' का साहित्यिक विवाद नागरी प्रचारिणी सभा से ही प्रारंभ हो जाता है, जो संस्था मूल रूप से 'सरस्वती' पत्रिका की जन्मदात्री थी। महावीर प्रसाद द्विवेदी जी अपनी स्वाभिमानी प्रवृत्ति से न तो कभी झुके और न ही साहित्यिक अनुशासनहीनता को स्वीकार किया। परिणामतः अपनी सशक्त आलोच्य-लेखनी से प्रत्येक दिशा में सभी को मानने के लिए विवश किया और सभी विरोधियों को पराभूत भी किया। बड़े-बड़े साहित्यिक महारथियों को अपनी लेखनी का निशाना बनाया। सभा के संस्थापक बाबू श्यामसुंदर जी से जो विवाद 'अनुमोदन' के लिए हुआ था, वह उनकी लिखित क्षमा याचना (भारतमित्र 1906) में समाप्त हुआ। यही नहीं, सभा के खोजकार्य में सहयोगी पं० केदार नाथ पाठक (आचार्य रामचंद्र शुक्ल के साहित्यिक आदर्श) से विवाद छिड़ा, किंतु आचार्य द्विवेदी की विनम्रता से मुग्ध पाठक जी ने भी क्षमायाचना मांग ली। उनका सभा के लोगों से विवाद चलता रहा किंतु महावीर प्रसाद द्विवेदी की तेजस्विता की पहचान कर सभा ने उन्हें सम्मानित करके अपने प्रगाढ़ संबंध का परिचय दिया।

यही कारण था कि सभा ने सबसे पहले 1931 में उन्हें सम्मानित ही नहीं किया, अपितु 1933 में एक भव्य समारोह में उन्हें एक अभिनंदन ग्रंथ भेंट किया था, जिसके द्वय-संपादक बाबू श्यामसुंदर दास और रायकृष्णदास जी थे। सर्वाधिक लोकप्रिय विवाद 1905 के नवंबर अंक का है, जिसमें आचार्य द्विवेदी ने 'भाषा और व्याकरण' नामक लेख में बाबू

बालमुकुंद गुप्त के बंगला भाषा में 'अनस्थिरता' शब्द पर विस्तार से चर्चा की। इसे हिंदी के विकास में बाधक बताया। इस महत्त्वपूर्ण लेख से हिंदी जगत् अधिक प्रभावित तो हुआ, किंतु गुप्त जी ने इसे अपनी आलोचना समझते हुए 'भाषा की अनस्थिरता' शीर्षक से अपने 'भारत मित्र' में एक लेखमाला 'आत्माराम' नाम से प्रकाशित की, जिसमें द्विवेदी जी पर बुरे ढंग से प्रहार किया गया था। परिणामस्वरूप इस विवाद ने द्विवेदी जी को अधिक मर्माहत किया। अतः इसके प्रत्युत्तर में 'हिंदी बंगवासी' पत्रिका में गोविंद नारायण मिश्र ने 'आत्माराम की टें-टें' शीर्षक लेख लिखा। अच्छे लेखकों ने द्विवेदी जी का साथ दिया, किंतु द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' में दूसरे ढंग से इसका उत्तर दिया। परंतु गुप्त जी ने 'हम पांचन के ट्वाला माँ' नाम से एक व्यंग्य लेख लिखा। अतः द्विवेदी जी ने इसके प्रत्युत्तर में आल्हाछंद के द्वारा 'लगे नरक ठिकान्न नाहिं' लिखा। अंततः प्रतिवाद धीरे-धीरे स्थिर हुआ। और कुछ समय बाद जब गुप्त जी इनसे मिलने जुहीकलां गए तो क्षमा मांग ली। यह दोनों क्षम्य-क्षमा की सदाशयता थी।

अनुवादक

गांव की साहित्यिक उर्वरता के परिवेश ने उनमें कवि-गुण का बीज उत्पन्न कर दिया था। उनका हिंदी अनुराग हिंदी के साहित्य को समृद्ध करने के लिए था, क्योंकि वे बंबई रहते हुए मराठी साहित्य की समृद्धि से प्रभावित हो चुके थे, इसलिए हिंदी को भी आगे बढ़ाना चाहते थे। सरकारी नौकरी को त्यागकर 'सरस्वती' का संपादन कार्य करना उनके हिंदी अनुराग और हिंदी की निष्ठा का ही परिचायक है। उनका प्रारंभिक साहित्यक कार्य अनुवादक के रूप में दिखाई देता है। इसकी पुष्टि करते हुए तिवारी (2015) लिखते हैं – "आचार्य द्विवेदी ने मुख्य रूप से अंग्रेजी और संस्कृत रचनाओं के अनुवाद किए हैं। अंग्रेजी रचनाओं में उन्होंने लार्ड बेकन के 'निबंधों', हर्बर्ट स्पेंसर की शिक्षा विषयक पुस्तक 'एजुकेशन' तथा जान स्टुअर्ट मिल की प्रसिद्ध कृति 'ऑन लिबर्टी' के अनुवाद क्रमशः 'बेकन विचार रत्नावली', 'शिक्षा' और 'स्वाधीनता' के नाम से प्रस्तुत किए हैं। संस्कृत से उन्होंने कालिदास के 'रघुवंश', 'कुमारसंभव' और 'मेघदूत', भट्टनारायण के 'वेणीसंहार' तथा भारवि के 'किरातार्जुनीयम" के गद्यानुवाद किए हैं। अनुवादक के रूप में भी द्विवेदी को कम सफलता नहीं मिली" (पृ. 628)। अपने एक दशक के अनुवाद कार्य द्वारा विविध विषयों से संबंधित कविताएं, विविध पत्रिकाओं में प्रकाशित संस्कृत, ब्रजभाषा अनेक खड़ी बोली के काव्य थे, उनका संकलन 1903 में 'काव्य-मंजूषा' नाम से प्रकाशित कराया। इसमें 1898 में हिंदी बंगवासी में प्रकाशित 'गर्दभ काव्य' भी संग्रहीत हैं। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की फुटकल कविताएं, टिप्पणी, आलोचना और गंभीर-विस्तृत संपादकीय उनकी सर्जना का विशाल भंडारण हैं। उनका प्रथम गद्य लेखन इन्हीं रूपों में प्रस्तुत है। उन्होंने 'सरस्वती' के कुशल संपादकत्व में भी अनेक अनूदित कार्य किए।

आचार्य द्विवेदी की प्रारंभिक मौलिक कविताएं प्राय: प्रकृति वर्णन व समाज की दीनदशा से अधिक प्रेरित रहती थीं। 'प्रभात वर्णन,' 'बसंत', 'कोकिल काव्य' उनके प्रकृति-प्रेम को ही दर्शाती हैं। जो आगे भी प्रकृति समन्वित काव्य की जो फुटकल सर्जना की गईं वे सभी खड़ीबोली में थीं। राजा रवि वर्मा के चित्रों पर आधारित अनेक स्फुट कविताएं भी मिलती हैं। उनमें स्वछंदतावादी प्रकृति प्रेम देखने को मिलता है साथ ही वे भारतेंदु युगीन हास्य व्यंग्य विनोदपूर्ण कविता भी लिखते थे। 1898 का संदर्भ-काव्य, विधि विडंबना, ग्रंथकार लक्षण आदि काव्य उनके हृदय की पीड़ा और भावना को ही अभिव्यक्त करता है। वे राष्ट्रीय काव्यधारा के प्रवर्तक भी थे, जिसे उन्होंने अपनी पत्रिका 'सरस्वती' के माध्यम से खूब प्रचारित किया। इस दिशा में वे 'भारत वर्ष', 'वन्दे मातरम्', स्वदेशी वस्त्र का 'स्वीकार' और 'कवि और स्वतंत्रता' जैसी कविताएं लिखकर राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन को गति प्रदान कर रहे थे। समरसता और एकता आजादी का मूलमंत्र था। उन्होंने अपनी कविता- 'मेरे प्यारे हिंदुस्तान' शीर्षक में इसी मूलमंत्र को प्रकट किया। कालांतर में इसे गांधी जी अपनाते हुए हिंदू-मुस्लिम आदि धर्म के लोगों के लिए आह्वान करते हैं -हिंदू मुसलमान ईसाई, यश गावें सब भाई-भाई।।

नारी जागृति

वस्तुत: आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के अनेक विचार ऐसे हैं, जो भारतेंदु हरिश्चंद्र से अधिक प्रभावित हैं। एकता समन्वय की बात करने वाले भारतेंदु ने सामाजिक उत्थान के लिए नारी-जागृति को अंगभूत माना था, उस परंपरा को इन्होंने आगे बढ़ाया है। भारतेंदु के ' बुध तजहिं मत्सर नारि नर सम होंहि, सब जग सुख लहैं' का विचार द्विवेदी जी में इस रूप में दिखता है-

पढ़ती थी वेद तक जहां महिला सदैव ही
नारी समूह है वहीं अज्ञान हमारा।

नारियों को केंद्र-बिंदु में रखकर आचार्य द्विवेदी ने काव्यकुंज, अबला विलाप, उहरौनी जैसी अनेक स्त्री-चेतना की कविताएं लिखी हैं। 'सरस्वती' पत्रिका निकालने के उनके दो उद्देश्य मालूम होते हैं- प्रथम- भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन को सहयोग देते हुए देश की स्वाधीनता और पूर्वकालीन साहित्यिक प्रवृत्तियों को मोड़कर नैतिक एवं सामाजिक धर्म पर खड़ीबोली के रूप में स्थापित करना। द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से साहित्य एवं कविता के लिए एक मानक बनाने का प्रयास किया तो दूसरी ओर रीतिकालीन प्रवृत्तियों एवं भाषा पर प्रहार किया। 'कवि-कर्त्तव्य' लेख में मानों उद्घोष ही किया है- 'यमुना के किनारे के लिए कौतूहल का अद्भुत-अद्भुत वर्णन बहुत हो चुका। न परकीयाओं पर प्रबंध लिखने की अब कोई आवश्यकता है और न स्वकीयाओं के 'गतागत' की पहेली बुझाने की।' पंडित जी ने युगीन परिस्थितियों को लक्ष्य करके भले ही रीतिकालीन प्रवृत्तियों को साहित्य से त्यागने का आह्वान किया हो किंतु वे शृंगारिक पदों के विशेष अनुरागी थे, इसका प्रत्यक्ष उदाहरण उनके जीवन और साहित्य से लिया जा सकता है। स्नेहमाला, विहार वाटिका व कालिदास की प्रियता, पत्नी जीवन, पत्नी के मृत्योपरांत उनके कथन एवं निराशा, कामवृत्तियां आदेश रूप मे समाहित हो गई थीं। इन प्रवृत्तियों के परित्याग के साथ-साथ उन्होंने काव्यभाषा के लिए खड़ी बोली पर जोर दिया, क्योंकि उनका मानना था कि खड़ी बोली अपने स्वरूप को विकसित करेगी और मानक भाषा के रूप में खड़ी हो जाएगी। काव्य भाषा के लिए हिंदी जगत् में उनके द्वारा वृहत आंदोलन चलाया गया। उन्होंने ब्रजभाषा को छोड़ खड़ी बोली अपनाने की सलाह दी। उन्होंने लिखा है- "ब्रजभाषा बहुत काल से कविता में प्रयुक्त होती आई है, पर एक अथवा दो

जिले की भाषा पर देश भर के निवासियों का प्रेम बहुत दिनों तक नहीं रह सकता'' (शर्मा, 2018, पृ. 227)। आगे उन्होंने स्पष्ट उद्घोष कर दिया था कि ''यह निश्चित है कि किसी समय बोलचाल की हिंदीभाषा, ब्रजभाषा की कविता के स्थान को अवश्य छीन लेगी''(शर्मा, 2018, पृ. 227)। वस्तुतः 'सरस्वती' में द्विवेदी जी ने अनेक ऐसे लेख लिखे जो भावी रचनाकारों के लिए पाथेय बने। उन्होंने विषय वस्तु, साहित्य रचना की भाषा के लिए कविता के छंदों पर गंभीर चर्चा की। छप्पय, सवैया, घनाक्षरी, दोहा, चौपाई को त्यागकर संस्कृत, उर्दू, बंगला के छंदों को अपनाने पर जोर दिया, क्योंकि अग्रलिखित छंद हिंदी साहित्य में बहुत लिखे जा चुके थे। उनका आग्रह था- वंशस्थ, मालिनी, द्रुतविलंबित और वसंत-तिलका में रचना की जाए जिसमें लेखक की स्वयं की व्यक्तिगत विशेषता दृष्टिगोचर हो सके।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल की भाषा, विषयवस्तु, प्रवृत्ति, रीतिकाल, छायावाद, नाटक, रस, छंद और अलंकारों के प्रति विचार आदि में द्विवेदी की छाप परिलक्षित होती है। महाकवि कालिदास द्विवेदी जी के प्रिय कवि थे, अत: उनके विषय में किसी के द्वारा वर्णित दोष उन्हें असह्य था। 'हिंदी कालिदास की समालोचना' उनकी आलोच्य कृति है। उनके मौलिक निबंध, आलेख-टिप्पणी और संपादकीय- रसज्ञरंजन, साहित्यसंदर्भ, साहित्यालाप, आलोचनांजलि, समालोचना, साहित्य सीकर, संकलन, विचार विमर्श, वनिता विलास में श्रेणीबद्ध हैं। आचार्य द्विवेदी अच्छे जीवनी लेखक भी थे। यही कारण है कि उनकी जीवनी मूलक रचनाएं - सुकवि संकीर्तन, कोविद कीर्तन, चरितचर्या और चरित्र चित्रण में विद्यमान हैं। ऐसी बहुमुखी प्रतिभा से अनुप्राणित महान आलोचक के मूल्यांकन एवं पुनर्मूल्यांकन की अर्थवक्ता होनी चाहिए, जिसकी गुणवत्ता साहित्य में दिखाई दे सके। द्विवेदी युग साहित्य में अमर है। आधुनिक साहित्य के तीन युगों में अवस्थित ऐसा साहित्य प्रचेता भारतेंदु युग से शुरू होकर अपने युग को स्थापित करते हुए प्रगतिवाद युग के प्रारंभिक काल में 21 दिसंबर, 1938 को अनंत आकाश में विलीन हुआ।

निष्कर्ष

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी कवि की अपेक्षा एक लेखक अधिक थे और लेखक से सुंदर संपादक किंतु सुंदरतम् रूपों में वे एक प्रखर आलोचक भी थे। वे व्यावहारिक आलोचना के शिखर महापुरुष थे। आलोचना उनका हथियार था, तो 'सरस्वती' उनकी ढाल थी। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने जिस पथ का प्रदर्शन किया, कालांतर में वह आलोचकों के लिए वरेण्य था। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी हिंदी साहित्य की वह धुरी हैं, जहां से आधुनिक साहित्य परिचालित होता है। उनका अवदान साहित्य में मील का पत्थर है, समाज में अक्षय है और पत्रकारिता में सदा ही प्रकाशमान है।

सन्दर्भ

तिवारी, आर. (2015). *हिंदी का गद्य-साहित्य*. विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृ. 628

नगेन्द्र (सं.) (2001). *हिंदी साहित्य का इतिहास*. मयूर पेपरबैक्स, पृ. 496

नगेन्द्र (सं.) (2015). *हिंदी साहित्य का इतिहास*. मयूर पेपरबैक्स, पृ. 497

शर्मा, आर. (2018). *महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण*. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 360

सिंह, यू. (2000). *महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग*. लखनऊ विश्वविद्यालय, पृ. 162

संचार माध्यम | खंड 32(2): 22-30, जुलाई-दिसंबर 2020
आईएसएसएन: 2321-2608

स्वतंत्रता संग्राम में भाषाई समाचार पत्रों के योगदान का अध्ययन

डॉ. वीरेंद्र आज़म[1]

सारांश

आज हम जिस स्वतंत्रता के साथ खुली हवा में सांस ले रहे हैं उस स्वतंत्रता की बुलंद इमारत लाखों देशभक्तों की कुर्बानियों की नींव पर खड़ी है। अपनी भावी पीढ़ियों को एक स्वतंत्र राष्ट्र देने के लिए हमारे पूर्वजों ने कई सौ वर्षों तक लगातार बलिदान दिए। आजादी पाने के लिए जहां राजनेताओं ने बड़े-बड़े आंदोलन चलाए, लाखों लोगों ने जेल यात्राएं कीं, जेलों में अमानवीय यातनाएं सहीं, क्रांतिकारियों ने गोलियां खाईं, आजादी के दीवानों ने फांसी के फंदे चूमे, वहीं देश के पत्रकार भी पीछे नहीं रहे। अनेक समाचार पत्रों के माध्यम से पत्रकारों ने देश में स्वतंत्रता की अलख जगाई, हालांकि गोरी सरकार ने अनेक कानून बनाकर समय-समय पर समाचार पत्रों पर अंकुश लगाए और संपादकों की गिरफ्तारियां कर उन्हें लंबी सजाएं दीं। प्रेसों पर ताले डलवाए, उन्हें नीलाम कराया, लेकिन आजादी के दीवाने संपादकों की कलम न झुकी, न रुकी। सन् 1857 की क्रांति से पूर्व समाचार पत्रों का प्रकाशन भी बहुत कम था और लोगों में राष्ट्रीय चेतना का भी अभाव था। लेकिन क्रांति के बाद स्वाभाविक रूप से पत्र-पत्रिकाओं में राष्ट्रीयता के भाव अंकुरित होने लगे। 19वीं शताब्दी में पत्रकारिता विशेषकर हिंदी पत्रकारिता का उद्भव और विकास बड़ी कठिन परिस्थितियों में हुआ। समय-समय पर पत्र-पत्रिकाएं जन्म लेतीं, लेकिन सरकारी अंकुश उनके सामने चट्टान बनकर खड़ा हो जाता। "खींचो न कमानों को न तलवार निकालो, जब तोप मुकाबिल हो तो अखबार निकालो"- अकबर इलाहाबादी का ये शेर स्वतंत्रता आंदोलन को गति देने वाले उस समय के अनेक राजनेताओं के लिए प्रेरणा बना और उन्होंने अंग्रेज सरकार के अत्याचारों को उजागर करने तथा लोगों में आजादी के प्रति नवजागरण करने के लिए अखबारों का प्रकाशन शुरू कर दिया। बीसवीं शताब्दी शुरू होते-होते अखबारों के प्रकाशन में काफी तेजी आई और अनेक ऐसे महत्त्वपूर्ण अखबार निकाले गए, जिन्होंने अंग्रेज सरकार को हिलाकर रख दिया। इन अखबारों ने आजादी के आंदोलन की नींव पुख्ता करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। आज जब देश स्वतंत्रता की 75वीं वर्षगांठ मनाने की तैयारी कर रहा है तो स्वतंत्रता संग्राम में भाषाई समाचार पत्रों की भूमिका का भी स्मरण किया जाना चाहिए।

संकेत शब्द : स्वतंत्रता आंदोलन, जनजागरण, समाचार पत्र, भाषाई पत्रकारिता, प्रेस

प्रस्तावना

स्वतंत्रता आंदोलन से अभिप्राय यहां उस आंदोलन से है जो अंग्रेज़ सरकार के खिलाफ़ हमारे राजनैतिक और सामाजिक संगठनों, देश की आम जनता, जिसमें अधिवक्ता, अध्यापक, किसान, मजदूर, व्यापारी, छात्र, सरकारी कर्मचारी के रूप में सभी वर्ग, धर्म के लोगों को शामिल करते हुए चलाया गया था। ईस्ट इण्डिया कंपनी के रूप में व्यापारी बनकर भारत आए अंग्रेज़ों ने धीरे-धीरे हिंदुस्तान पर कब्जा कर लिया और हिंदुस्तानियों के भाग्यविधाता बनकर बैठ गए। ब्रिटिश हुकुमत से देश को आज़ाद कराने के लिए देश में दो तरह के आंदोलन चलाए गए। एक, अहिंसक आंदोलन और दूसरा सशस्त्र क्रांतिकारी आंदोलन। अहिंसक आंदोलन के तहत बंग भंग विरोधी आंदोलन, असहयोग आंदोलन, नमक सत्याग्रह और भारत छोड़ो आदि अनेक आंदोलन चलाए गए। इन आंदोलनों में मुख्यतः 1857 की क्रांति से लेकर वर्ष 1947 में देश आज़ाद होने तक का समय विशेष रूप से उल्लेखनीय है। आंदोलनकारियों ने स्वतंत्रता आंदोलन को गति देने और सुषुप्त आम जनमानस को जगाने तथा उनमें आज़ादी की भूख जगाने के लिए अनेक समाचार पत्रों का प्रकाशन किया। उस समय आम जनता अनेक रुढ़ियों, अंधविश्वास आदि में फंसी थी और शिक्षा का भी अभाव था, अतः इन समाचार पत्रों ने न केवल लोगों में स्वतंत्रता की अलख जगाई, बल्कि रूढ़ियों की बेड़ियां तोड़ने के लिए जनजागरण भी किया। इसके लिए समाचार पत्रों ने विभिन्न राजनेताओं द्वारा चलाए गए सुधार आंदोलनों को भी प्रमुखता से प्रकाशित किया।

शोध उद्देश्य और प्रविधि

वर्ष 2021 आज़ादी की 75वीं वर्षगांठ का साल है। जिस पीढ़ी ने अपना सर्वस्व न्यौछावर कर हमें स्वतंत्रता दिलाई, वह पीढ़ी लगभग समाप्त हो चुकी है। आज़ादी का कोई इक्का-दुक्का सिपाही ही हमारे बीच बचा है। आज़ादी हासिल करने में हमारे बुजुर्गों, नौजवानों और महान नेताओं ने जो कुर्बानियां दीं उनकी दास्तां सिर्फ इतिहास की किताबों में ही बची है। आज़ादी का यह इतिहास गांव-गांव और गली-गली बिखरा पड़ा है, कुछ प्रमुख घटनाओं को भले ही इतिहास में स्थान मिल गया हो लेकिन अधिकांश घटनाएं ऐसी हैं, जिन्हें इतिहास के पन्नों में जगह मिल ही नहीं पाई। ऐसा ही स्वर्णिम इतिहास है भारतीय पत्रकारिता का। स्वतंत्रता आंदोलन को जनांदोलन बनाने में समाचार पत्रों के योगदान का एक बड़ा हिस्सा युवा पीढ़ी के लिए आज भी अछूता है। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान हिंदी, उर्दू और अंग्रेज़ी ही नहीं मलयाली, कन्नड़, मराठी, गुजराती, गुरुमुखी, तेलुगू, बंग्ला आदि विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं में भी बड़ी संख्या में समाचार पत्रों का प्रकाशन किया गया। प्रस्तुत अध्ययन में केवल कुछ समाचार पत्रों के प्रकाशन और उनके योगदान को ही आधार बनाया गया है, ताकि युवा पीढ़ी, विशेषकर युवा पत्रकार स्वाधीनता आंदोलन में अख़बारों की भूमिका के साथ ही खुद को होम करने वाले संपादकों के राष्ट्र के प्रति समर्पण भाव को समझ सके और इन समाचार पत्रों से पत्रकारिता के उद्देश्यों, नैतिकता तथा अपने कर्तव्यबोध से अवगत होकर अपना मार्ग प्रशस्त कर सके। चूंकि यह ऐतिहासिक शोध है, इसलिए मुख्य

[1]वरिष्ठ पत्रकार, 2सी/755, पत्रकार लेन, प्रद्युमन नगर, मल्हीपुर रोड, सहारनपुर-247001, उत्तर प्रदेश। ईमेल: virendraazam@yahoo.com

रूप से इसमें द्वितीयक स्रोतों का इस्तेमाल किया गया है।

स्वतंत्रता आंदोलन में समाचार पत्रों का योगदान

वास्तव में तो भारत में मीडिया की शुरुआत अंग्रेजी शासन की कारगुजारियों को उजागर करने के लिए ही हुई थी, भारत का पहला अखबार 'बंगाल गजट' इसका प्रमाण है। उस अखबार को अंग्रेज सरकार ने जबरन बंद करवा दिया था। यों, भारतीय भाषाओं में मीडिया की शुरुआत काफी बाद में हुई। हिंदी का पहला अख़बार 'उदंत मार्तंड' 1826 में प्रकाशित हुआ, परंतु जब हम भारतीय भाषाई मीडिया के स्वतंत्रता संग्राम में योगदान का जिक्र करते हैं तो सबसे पहले 'पयाम ए आज़ादी' का स्मरण आता है। माना जाता है कि 1857 की क्रांति की पृष्ठभूमि तैयार करने में इस समाचार पत्र की महत्त्पूर्ण भूमिका थी। क्रांतिकारी अजीमुल्ला खां ने दिल्ली के लीथो प्रेस से फरवरी 1857 में इस समाचार पत्र का प्रकाशन किया था। मुगल शाही घराने के मिर्जा बेदार बख़्त इसके संपादक थे। पहले यह समाचार पत्र उर्दू में निकाला गया लेकिन बाद में हिंदी में भी इसका प्रकाशन हुआ। 'पयाम ए आज़ादी' स्वतंत्रता का प्रबल पक्षधर था। उसमें प्रकाशित लेखों और कविताओं ने दिल्ली की जनता में स्वतंत्रता का एक ऐसा जज़्बा पैदा किया कि लोग अंग्रेज़ सरकार के खिलाफ़ मुखर होने लगे। यह पत्र कम समय ही निकला, लेकिन जब तक निकला तब तक इसने अंग्रेज़ सरकार को चैन नहीं लेने दिया। सितंबर 1857 से इस पत्र का मराठी संस्करण झांसी से भी प्रकाशित किया गया था। सुप्रसिद्ध क्रांतिकारी अजीमुल्ला खां द्वारा रचित बाग़ी सैनिकों का कौमी तराना 'पयाम ए आज़ादी' में प्रकाशित हुआ था। इस तराने को उस समय का राष्ट्रीय गीत कहा गया था। उस गीत की कुछ पंक्तियां निम्नलिखित थीं-

''हम हैं इसके मालिक, हिंदुस्तान हमारा।
पाक वतन है कौम का जन्नत से भी प्यारा।।
आज शहीदों ने तुझको, अहले वतन ललकारा।
तोड़ो गुलामी की जंजीरें, बरसाओ अंगारा।।''[1]

यह गीत बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय के 'वंदेमातरम्' राष्ट्रगीत से लगभग दो दशक पहले लिखा गया था। ''ऐसा कहा जाता है कि 1857 के विद्रोह के बाद जिन-जिन घरों में 'पयाम-ए-आज़ादी' की प्रतियां मिली थीं, उन घरों के सभी मर्दों को सार्वजनिक फांसी दे दी गई थी।''[2]

वर्ष 1877 में पं. बालकृष्ण भट्ट ने इलाहाबाद से 'हिंदी प्रदीप' मासिक पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया। इसका उद्देश्य हिंदी भाषा एवं साहित्य को विकसित करने के साथ ही देशवासियों में राष्ट्रीयता और भारतीयता की भावना को प्रबल करना था। वर्ष 1885 के बाद 'हिंदी प्रदीप' में क्रांतिकारी परिवर्तन आया और इसमें अंग्रेज़ सरकार के विरुद्ध लेख छपने लगे। 'हिंदी प्रदीप' को पं. माधव शुक्ल की कविता 'बम क्या है' प्रकाशित करने पर अंग्रेज़ सरकार के कोप का शिकार होना पड़ा।

कलकत्ता से 17 मई, 1878 को प्रकाशित 'भारत मित्र' (संपादक- पं. छुटुलाल मिश्र व पं. दुर्गा प्रसाद मिश्र) तथा 1890 में प्रकाशित 'हिंदी बंगवासी' (संपादक -अमृतलाल चक्रवर्ती) दो ऐसे पत्र रहे हैं, जिससे पं. हरमुकुंद शास्त्री, पं. रुद्रदत्त शर्मा, बाबू बालमुकुंद गुप्त, पं. बाबूराव विष्णु पराड़कर, पं. अंबिका प्रसाद वाजपेयी और पं. लक्ष्मण नारायण गर्दे जैसे शीर्ष संपादकाचार्यों ने संबद्ध रहकर संपादन कार्य किया। इन दोनों पत्रों की नीति काफी उग्र थी। ये देशवासियों में स्वाधीनता के लिए नवचेतना जगाने में सदैव अग्रणी रहे।

''स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर ही रहूंगा'' का उद्घोष करने वाले बाल गंगाधर तिलक ने 1881 में पुणे से मराठी दैनिक 'केसरी' का प्रकाशन शुरू किया। उन्होंने अंग्रेज़ों के खिलाफ़ अख़बार को हथियार बनाया और क़लम से जमकर प्रहार किए। इससे ब्रिटिश सरकार की आंखों का वे कांटा बन गए, और जब ''लोकमान्य तिलक ने अपने पत्र केसरी में 'देश का दुर्भाग्य' नामक शीर्षक से लेख लिखा, जिसमें ब्रिटिश सरकार की नीतियों का विरोध किया। इस पर उन्हें भारतीय दंड संहिता की धारा 124 ए के अंतर्गत राजद्रोह के अभियोग में 27 जुलाई 1897 को गिरफ्तार कर लिया गया। उन्हें 6 वर्ष के कठोर कारावास के अंतर्गत मांडले (बर्मा) जेल में बंद कर दिया गया।''[3]

कालाकांकर से 'हिन्दोस्तान'

जनपद प्रतापगढ़ के कालाकांकर के राजा रामपाल सिंह ने वर्ष 1885 में उत्तर भारत के पहले हिंदी दैनिक 'हिंदोस्तान' का प्रकाशन शुरू किया। 26 अगस्त, 1904 को बाबू दीनानाथ ने लाहौर से उर्दू साप्ताहिक 'हिंदुस्तान' का प्रकाशन प्रारंभ किया। अंग्रेज़ी सरकार के विरोध और राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत होने के कारण इसकी लोकप्रियता लोगों में बढ़ती जा रही थी। अतः अंग्रेज़ सरकार ने इसके संपादक को गिरफ्तार कर लिया और उन्हें दस वर्ष के कारावास की सज़ा दी, जिसके कारण चौथे वर्ष में अख़बार का प्रकाशन कुछ समय के लिए बंद हो गया। इसका प्रकाशन दोबारा दैनिक अख़बार के रूप में हुआ। रामभज दत्त 'हिंदुस्तान' के प्रमुख संपादकीय सहयोगी थे। 'हिंदुस्तान' ने आज़ादी प्राप्ति की बात करते हुए अरविंद घोष को उद्धृत किया-''स्वराज्य एक राष्ट्र के लिए उसी प्रकार है, जिस प्रकार शरीर के लिए आत्मा''(श्रीधर, 2008, पृ. 578)। इसके अतिरिक्त अनेक स्थानों से साप्ताहिक और दैनिक के रुप में 'हिंदुस्तान' का प्रकाशन किया गया। दिल्ली से दैनिक हिंदुस्तान का प्रकाशन 1936 में शुरू हुआ था। ''इसका उद्घाटन महात्मा गांधी ने किया था। 1942 का भारत छोड़ो आंदोलन शुरू होने पर 'हिंदुस्तान' लगभग 6 माह तक बंद रहा। यह सेंसरशिप के विरोध में था। एक अग्रलेख पर 6 हजार रुपये की जमानत मांगी गई। देश के स्वाधीन होने तक 'हिंदुस्तान' ने राष्ट्रीय आंदोलन को बढ़ावा दिया। इसे महात्मा गांधी व कांग्रेस का अनुयायी पत्र माना जाता था। गांधी-सुभाष के पत्र व्यवहार को 'हिंदुस्तान' ने अविकल रूप से प्रकाशित किया।''[4]

जुलाई 1903 में मौलाना हसरत मोहानी ने अलीगढ़ से 'उर्दू-ए-मुअल्ला' मासिक का प्रकाशन शुरू किया। इस उर्दू मासिक के जरिये मौलाना ने भी लोगों में देशभक्ति की अलख जगाई और स्वदेशी आंदोलन का पुरज़ोर समर्थन किया। मौलाना के एक लेख की बानगी देखिए- ''आज हर देशभक्त हिंदुस्तानी का फर्ज़ होता है कि अंग्रेज़ों के जुल्म के मुकाबले में तनकर खड़ा हो जाए और एक साथ मिलकर अंग्रेज़ों से मुकाबला करे और अंग्रेज़ी माल का बायकाट करे और उन्हें किसी प्रकार की मदद न करे।'' (श्रीधर, 2008, पृ. 571)। अगस्त 1908 में संपादक को दो साल क़ैद की सज़ा होने पर पत्रिका बंद हो गई, लेकिन एक साल में वे क़ैद से मुक्त कर

दिए गए और अक्तूबर 1909 में पुनः पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया गया। 1913 में पत्रिका से तीन हज़ार रुपये की ज़मानत मांग ली गई, जिसके कारण पत्रिका का प्रकाशन फिर बंद हो गया। बाद में 1925 में कानपुर से तीसरी बार पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया गया।

बंग भंग के विरुद्ध 'युगांतर', 'संध्या' और 'वंदेमातरम' का शंखनाद

1904 में कलकत्ता से बांग्ला दैनिक 'संध्या' का ब्रह्मबांधव उपाध्याय के संपादन में प्रकाशन शुरू हुआ। 1905 में बंग-भंग आंदोलन के चलते बंगाल में विस्फोटक स्थिति उत्पन्न हो गई थी। बंग-भंग के खिलाफ़ देशभर में प्रबल आंदोलन चलाए गए। अकेले बंगाल से नौ देशभक्तों को देश निकाला दे दिया गया और प्रेसों के खिलाफ़ भी दमनचक्र चला और मुकदमे चलाए गए। 'युगांतर', 'संध्या' और 'वंदेमातरम्' नामक समाचार पत्रों से क्रांति के संदेश प्रसारित किए जा रहे थे। तीनों समाचार पत्र इस आंदोलन के ध्वज वाहक बन गए थे। तीनों समाचार पत्रों ने लोगों में राष्ट्रीय चेतना जगाते हुए स्वतंत्रता आंदोलन को गति दी। बंग-भंग का विरोध करने के अतिरिक्त इन समाचार पत्रों ने विदेशी वस्तुओं का पुरज़ोर विरोध किया।

'संध्या' की संपादकीय टिप्पणियां बहुत विवेकपूर्ण, हृदयस्पर्शी और जनमानस को झकझोरने वाली होती थीं। 9 मई, 1907 के 'संध्या' के अंक में स्पष्ट शब्दों में लिखा गया था-''कोरे शब्दों से कुछ काम नहीं चलेगा। जब तक लाठी और बम नहीं होंगे, फिरंगी को होश नहीं आएगा और वह आपके लिए रत्तीभर भी परवाह नहीं करेगा।'' (श्रीधर, 2008, पृ. 577)। 'संध्या' गोरी सरकार की आंख में खटकने लगा था। अंग्रेज़ सरकार इसे राजद्रोही मानती थी। फिरंगी सरकार के खिलाफ कलम चलाने का परिणाम उपाध्याय भलीभांति जानते थे, लेकिन उनका कहना था -''यदि संघर्ष करते हुए मृत्यु भी आ जाए तो वह अमरत्व ही होगा।'' (श्रीधर, 2008, पृ. 577)। 30 अगस्त, 1907 को संध्या प्रेस की तलाशी ली गई और 3 सितंबर, 1907 को उपाध्याय को राजद्रोह के आरोप में गिरफ्तार कर लिया गया, लेकिन उसी शाम उनकी जमानत हो गई। उनका मानना था कि 'उन व्यक्तियों के लिए उत्पीड़न और निर्दयता का कोई अर्थ नहीं है जो शरीर को आत्मा के समान समझने को पाप समझते हैं।' 27 अक्तूबर, 1907 को टिटनेस के कारण 'संध्या' के संपादक ब्रह्मबांधव उपाध्याय का अस्पताल में निधन हो गया।

'वंदेमातरम्' का प्रकाशन अगस्त 1906 में विपिनचंद्र पाल, चितरंजन दास और सुबोध चंद मलिक के परस्पर सहयोग से कलकत्ता से हुआ था। विपिनचंद्र पाल इसके प्रधान संपादक थे, जबकि अख़बार के साप्ताहिक संस्करण का संपादन अरविंद घोष करते थे। अहिंसात्मक प्रतिकार को लेकर चलाए गए मुकदमे में अरविंद घोष के संपादक होने का साक्ष्य देने के लिए विपिनचंद्र पाल को अदालत में बुलाया गया, लेकिन वे नहीं गए। इस पर विपिनचंद्र पाल को छह मास कारावास की सज़ा सुनाई गई। 'वंदेमातरम्' का प्रकाशन बंद होने पर अरविंद घोष ने अंग्रेज़ी साप्ताहिक 'कर्मयोगी' और बंग्ला साप्ताहिक 'धर्म' का प्रकाशन शुरू किया। बाद में उन्हें अलीपुर बम षड्यंत्र केस में गिरफ्तार कर जेल भेज दिया गया।

जन-जन की आवाज़ 'युगांतर'

ब्रिटिश शासकों ने खुदीराम बोस को फांसी देने की ख़बर को समाचार पत्रों में प्रमुखता से प्रकाशित कराया, ताकि आम जन में अंग्रेज़ी सरकार का ख़ौफ़ बैठ जाए। इस पर 'युगांतर' जैसे क्रांतिकारी समाचार पत्रों ने खुदीराम के देशप्रेम और बलिदान की सराहना करते हुए हिंसा और क्रांति के सिद्धांतों का खुलकर समर्थन किया। जून 1907 से जून 1908 तक एक वर्ष के भीतर इस पत्र के मुद्रक-प्रकाशक को पांच बार सज़ाएं हुईं। महान क्रांतिकारी अरविंद घोष के भाई वारींद्र कुमार घोष 'युगांतर' का संपादन कर रहे थे। उन्हें अपने लेखों के कारण जब लंबी सज़ा सुनाई गई तो उन्होंने कहा कि ''देश में 30 करोड़ देशवासी 'युगांतर' का संपादन करने को तैयार हैं।'' 1906 में कोलकाता से शुरू हुए इस बंग्ला साप्ताहिक का 1908 के अंतिम दिनों में प्रकाशन बंद हो गया। पत्र का प्रकाशन बंद करने का आदेश पारित करते हुए चीफ जस्टिस लारेन्स जेन्किन्स ने लिखा था-'' इसकी हर पंक्ति से अंग्रेज़ों के विरुद्ध द्वेष टपकता है, प्रत्येक शब्द से क्रांति के लिए उत्तेजना झलकती है।'' (श्रीधर, 2008, पृ. 588)।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के संस्थापक स्वामी श्रद्धानंद (वास्तविक नाम लाला मुंशीराम) द्वारा 19 फरवरी, 1889 को 'सद्धर्म प्रचारक' का प्रकाशन किया गया। यह अख़बार पहले उर्दू साप्ताहिक के रूप में निकलता था, लेकिन इसका हिंदी संस्करण 1907 में निकाला गया। इस पत्र में समाचार पत्रों के संपादकों पर राजद्रोह के मुकदमे कायम करने के लिए अख़बार ने अंग्रेज़ सरकार को बार-बार लताड़ा। जलियांवाला कांड के बाद भी जब पंजाब के लोगों में आज़ादी पाने की ललक नहीं दिखी तो स्वामी श्रद्धानंद ने 'सद्धर्म प्रचारक' के माध्यम से पंजाब के लोगों को 'पंजाब की मोहनिद्रा' शीर्षक से प्रकाशित लेख में कुछ इस तरह फटकार लगाई-'' पंजाब की मोहनिद्रा अभी तक नहीं टूटी है। वीरों की भूमि में अभी तक कायरता और नपुंसकता के भाव काम कर रहे हैं। यह कैसी विचित्र बात है कि जिस पंजाब हत्याकांड के लिए न केवल भारत अपितु सारे संसार में हाहाकार मच गया, जिस पंजाब के विद्यार्थियों को सिर पर बिस्तरे रखवाकर 18 मील तक कड़ी धूप में चलाया गया, वही पंजाब अभी तक नौकरशाही के साथ सहयोग दे रहा है। पंजाब, जागो! अपना कर्तव्य समझो। इस हालत पर जरा शर्म करो कि जलियांवाला बाग में जिस अत्याचारी ने तुम्हारे साथ खून की होली खेली, तुम अभी तक उसी के आंचल में मुंह छिपाए बैठे हो।''[5]

श्रद्धा और स्वामी श्रद्धानंद

23 अप्रैल, 1920 को हरिद्वार से ही स्वामी श्रद्धानंद ने 'श्रद्धा' हिंदी साप्ताहिक का पहला अंक प्रकाशित किया। स्वाधीनता आंदोलन को गति देने के उद्देश्य से आंदोलन संबंधित गतिविधियों की ख़बरें 'श्रद्धा' में प्रमुखता से प्रकाशित की जाती थीं। वर्ष 1921 में हरिद्वार में आयोजित अर्धकुंभ पर एक महत्त्वपूर्ण समाचार 'साधुओं में स्वराज्य की लहर' शीर्षक से प्रकाशित किया गया-''हरिद्वारपुरी आजकल धन्य हो रही है। कुंभ के मेले पर हज़ारों नर नारी आए हुए हैं। उद्देश्य कुंभ का स्नान, परंतु चर्चा एक ही है, वह है भारत के लिए स्वराज्य की। नर-नारी, सन्यासी, गृहस्थ, वृद्ध, युवा का हृदय इस बात पर खुला हुआ प्रतीत होता है कि भारत को स्वराज्य प्राप्त हो। शाम को हर की पौड़ी पर जाकर देखिए,

जगह-जगह पर स्वराज्य का झंडा और स्वराज्य का प्रचार दृष्टिगोचर होगा। देशभक्त साधुओं ने मिलकर एक 'साधु स्वराज्य सभा' की स्थापना की है और उसकी ओर से व्याख्यान आदि का प्रबंध किया गया है। उस सभा के सभी सभासदों ने प्रतिज्ञा की है कि अपना जीवन भारत के लिए स्वराज्य प्राप्त करने के लिए अर्पण करेंगे। बिना संकोच के यह कहा जा सकता है कि इस आड़े समय में साधुओं का स्वराज्य और धर्म सेवा के कार्य से जुदा रहना जितना निराशाजनक था, इस प्रकार देश सेवा के लिए कटिबद्ध होना उतना ही आशाजनक है, यदि साधु लोग तुल जाएं तो घर-घर, ग्राम-ग्राम में स्वराज्यनाद अनायास ही बजा सकते हैं। 13-14 अप्रैल को हरिद्वार में साधु कांग्रेस सभा का अधिवेशन होगा। घोषणा की गई है कि जगदगुरु शंकराचार्य उसके सभापति होंगे। भारत को यह समारोह शुभ हो। स्वराज्य आंदोलन की सेना की इस नई भर्ती को बधाई।''[6] स्वामी श्रद्धानंद ने बाल गंगाधर तिलक के निधन पर भी 'श्रद्धा' का 'तिलक अंक' प्रकाशित किया था।

स्वाधीनता संग्राम और स्वराज

बंग भंग आंदोलन ने भारतीय स्वाधीनता संग्राम में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया था। बंगाल ही नहीं संपूर्ण देश में राष्ट्रीयता, स्वतंत्रता और बलिदान का सागर हिलोरे लगा रहा था। इन्हीं दिनों हिंदी के अनेक समाचार पत्रों ने देश के जनमानस की सुप्त भावनाओं को राजनैतिक रूप से जाग्रत किया और स्वतंत्रता आंदोलन में भागीदारी के लिए प्रेरित किया। ऐसा ही एक अख़बार था 'स्वराज'। इलाहाबाद से सन् 1907 में भारतमाता सोसाइटी द्वारा 'स्वराज' उर्दू साप्ताहिक का प्रकाशन शुरू किया गया। ''मुजफ़्फ़रनगर के कस्बा खतौली के मूल निवासी शांति नारायण भटनागर इसके संपादक थे। संपादक के वेतन में था, दो सूखी रोटी, एक प्याला पानी और जेल की कड़ी सज़ा। इस अख़बार के कई संपादक काले पानी भेजे गए।'' (वर्मा तथा गुप्त, 1997, पृ. 22)। 'स्वराज' ने आज़ादी के आंदोलन में संघर्ष और कुर्बानियों का जो इतिहास लिखा है वह स्वतंत्रता आंदोलन का स्वर्णिम अध्याय है। सन् 1907 से 1910 तक लगभग ढाई वर्ष तक चलने वाले इस अंक के कुल 75 अंक प्रकाशित हुए। विश्व पत्रकारिता के इतिहास में ऐसा कोई दूसरा समाचार पत्र नहीं होगा, जिसके आठ संपादकों को कुल मिलाकर 125 वर्ष की सज़ाएं और देश निकाला दिया गया हो। जून 1908 से 'स्वराज' के संपादकों को जेल और जुर्माने की सज़ा का जो सिलसिला शुरू हुआ उसने 'स्वराज' का दम घोंट दिया।

'स्वराज' का ध्येय वाक्य था- ''हिंदुस्तान के हम हैं, हिंदुस्तान हमारा है।'' जून 1908 में शांति नारायण भटनागर को दो साल की सख़्त क़ैद और पांच सौ रुपये जुर्माने की सज़ा सुनाई गई। जुर्माना अदा न करने पर 9 महीने की अतिरिक्त क़ैद भुगतनी थी। शांतिनारायण के बाद रामदास स्वराज के संपादक बने, लेकिन वे ठीक से कार्य प्रारंभ भी नहीं कर पाए थे कि भटनागर पर हुए जुर्माने की वसूली के लिए स्वराज प्रेस को नीलाम कर दिया गया। इसके बाद नया प्रेस लगाया गया। पुनः 'स्वराज' का प्रकाशन शुरू किया गया। होतीलाल वर्मा ने संपादन का दायित्व संभाला। कुछ ही अंक प्रकाशित हुए थे कि उन्हें भी दस वर्ष क़ैद की सज़ा सुना दी गई। वर्मा को सज़ा होने पर तब 'स्वराज' ने अपने नए संपादक की तलाश में जो विज्ञापन प्रकाशित किया था उससे अख़बार के तेवर और उसके आज़ादी के प्रति आंदोलन के जज़्बे का सहज ही अंदाज़ा लगाया जा सकता है। इस विज्ञापन को 'जू उल करनीन' ने इस तरह उद्धृत किया था-'' एक जौ की रोटी और एक प्याला पानी यह शरहे-तनख्वाह (वेतन) है, जिस पर स्वराज इलाहाबाद के वास्ते एक एडीटर मतलूब (आवश्यकता) है। यह वह अख़बार है, जिसके दो एडिटर बगावत आमेज़ मज़मीन (विद्रोहात्मक) लेखों की मुहब्बत में गिरफ्तार हो चुके हैं। अब तीसरा एडिटर मुहैया करने के लिए जो इश्तिहार दिया जाता है उसमें जो शरहे तनख्वाह जाहिर की गई है, के ऐसा एडिटर दरकार है जो अपने ऐशो आराम पर जेलखाने में रहकर जौ की रोटी और एक प्याला पानी को तरजीह दे।'' (श्रीधर, 2008, पृ. 599-600)।

आज़ादी पाने के लिए सीने में धधकती ज्वाला और राष्ट्रप्रेम का अनूठा उदाहरण देखिए कि गोरी सरकार के दमनचक्र से पत्रकारों का न तो हौसला कम हुआ और न उनकी क़लम रुकी। इस विज्ञापन के बाद भी अनेक पत्रकार सिर पर कफ़न बांध कर स्वराज का संपादन करने को आगे आ खड़े हुए। एक संपादक जेल जाता तो दूसरा तुरंत तैयार हो जाता। तीसरे संपादक के रूप में हरिदास आगे आए। वे केवल स्वराज के 11 अंकों का ही संपादन कर पाए थे कि उन्हें 21 साल के देश निकाले की सज़ा दे दी गई। 'स्वराज' का संपादन अब तक कांटों का बिछौना बन चुका था, लेकिन मां भारती के लाडले न घबराए और न लड़खड़ाए। लाहौर से प्रकाशित 'भारतमाता' के संपादक मुंशी रामसेवक इलाहाबाद आए। वे 'स्वराज' के प्रकाशन का घोषणापत्र भरने के लिए जिला दंडाधिकारी के समक्ष जब जा रहे थे तो उन्हें पहले ही गिरफ्तार कर लिया गया। इसके बाद देहरादून के नंदगोपाल चोपड़ा आगे आए और घोषणा पत्र दाखिल कर 'स्वराज' का प्रकाशन प्रारंभ किया। इस बार भी 12 अंक ही प्रकाशित हुए थे कि नंदगोपाल चोपड़ा को 30 वर्ष के देश निकाले की सज़ा दे दी गई। चोपड़ा के बाद लद्धाराम कपूर 'स्वराज' के संपादक बने। उन्हें भी गोरी सरकार ने 30 साल की सज़ा सुनाते हुए सज़ा काटने के लिए अंडमान की काल कोठरी भेज दिया। आखिर अंग्रेज़ी दमन को अंगूठा दिखाते हुए पं. अमीरचंद बंबवाल सामने आए तो उनसे 2000 रुपये की ज़मानत मांगी गई और नया घोषणा पत्र भरने के लिए कहा गया। सन् 1910 में पुनः 'स्वराज' का प्रकाशन शुरू हुआ, लेकिन केवल चार अंक ही निकल पाए थे कि अख़बार की ज़मानत ज़ब्त कर ली गई। ज़मानत के लिए धनराशि एकत्रित करते हुए बंबवाल को गिरफ्तार कर लिया गया। उन्हें एक साल की सज़ा हुई। इसके साथ ही आज़ादी के इस सेनापति 'स्वराज' का प्रकाशन बंद हो गया।

उसी वर्ष प्रकाशित साप्ताहिक पत्रों में 'अभ्युदय' और 'हिंदी केसरी' समाचार पत्रों का उल्लेख करना भी आवश्यक होगा। महामना मदन मोहन मालवीय ने सन् 1907 में प्रयाग से साप्ताहिक 'अभ्युदय' का प्रकाशन, संपादन प्रारंभ किया। पुरुषोत्तम दास टंडन, गणेश शंकर विद्यार्थी और वेंकटेश नारायण तिवारी का सहयोग भी 'अभ्युदय' को मिलता रहा। भारत के लिए स्वराज्य की प्राप्ति अभ्युदय का ध्येय था। संपादक मालवीय जी ने प्रवेशांक में घोषणा की-''हमारी अभिलाषा मंद नहीं है। पृथ्वी मंडल पर जितने पर्वत हैं उनमें सबसे ऊंचा पर्वत नगाधिराज हिमालय है। हमारी अभिलाषा है कि हमारे देश का अभ्युदय भी उतना ही ऊंचा हो।'' (श्रीधर, 2008, पृ. 602)। 8 मई, 1931 को पच्चीसवें वर्ष का तेरहवां अंक

'भगतसिंह अंक' के रूप में प्रकाशित हुआ था। यह अंक ज़ब्त कर लिया गया था। अभ्युदय के पांच अंक आज़ाद हिंद फौज़ पर केंद्रित विशेषांक के रूप में भी निकाले गए।

नागपुर से हिंदी केसरी

पं. माधवराव सप्रे ने सन् 1907 में लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक जी से संपर्क कर नागपुर से 'हिंदी केसरी' साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन शुरू किया। इसके संपादक के रूप में सप्रे जी का नाम छपता था और पं. जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल, गंगाप्रसाद गुप्त और पं. लक्ष्मीधर वाजपेयी प्रमुख संपादकीय सहयोगी थे। यह अख़बार गरम दल की विचारधारा का पोषक था। 'हिंदी केसरी' में पूरे देश के स्वतंत्रता आंदोलन से संबद्ध समाचार प्रकाशित होते थे, ताकि लोगों को आंदोलन की गतिविधियों की जानकारी मिलने के साथ ही उनमें भी आज़ादी पाने की ललक जाग्रत हो। ''सेना और पुलिस में हिंदी केसरी को पढ़ना अपराध माना जाता था। यह बात रौलट-राजद्रोह जांच कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में भी अंकित की है।'' (श्रीधर, 2008, पृ. 606)। 'हिंदी केसरी' में प्रकाशित कुछ लेखों को आधार बनाकर 1908 में संपादक माधवराव सप्रे के घर और प्रेस की तलाशी ली गई और उन्हें आईपीसी की धारा 124 (अ) के अंतर्गत गिरफ्तार कर लिया गया। सन् 1908 में 'हिंदी केसरी' में प्रकाशित दो लेखों के कारण तिलक और सप्रे पर राजद्रोह का मुकदमा चला, जिसके फलस्वरूप सन् 1909 में 'हिंदी केसरी' का प्रकाशन बंद हो गया।

लाहौर से 'आज़ाद'

बिशन सहाय आज़ाद ने लाहौर से 5 जनवरी, 1907 को उर्दू मासिक 'आज़ाद' का प्रकाशन शुरू किया। उस समय के उर्दू के सभी बड़े साहित्यकार 'आज़ाद' में लिखते थे। 'आज़ाद' नाम से ही नहीं विचारों से भी आज़ाद था। 'आज़ाद' ने गोरी सरकार की दमन नीति पर कई बार क़लम की चाबुक चलाई। 'आज़ाद' के 'पंजाबी विशेषांक' में निर्भीक होकर लिखी गई टिप्पणियां पूरे देश में चर्चा का विषय रहीं।

वर्ष 1908 में सहारनपुर जिले के देवबंद से बाबू ज्योति प्रसाद जैन ने उर्दू मासिक 'जैन प्रचारक', वर्ष 1910 में 'जैन हितकारी' हिंदी मासिक और वर्ष 1912 में 'जैन प्रदीप' उर्दू पाक्षिक तथा 'पारस' उर्दू साप्ताहिक का प्रकाशन शुरू किया। इन पत्रों का उद्देश्य समाज में सुधार कर स्वस्थ समाज का निर्माण और राष्ट्रीयता की भावना का पोषण व स्वतंत्रता का जनजागरण करना था। ''वर्ष 1930 में जैन प्रदीप में 'भगवान महावीर और महात्मा गांधी' शीर्षक से लेख प्रकाशित करने पर अंग्रेज़ी सरकार ने पत्र के प्रकाशन पर रोक लगा दी और पुनः प्रकाशन के लिए सरकार की ओर से कुछ शर्तें रखी गईं लेकिन ज्योति प्रसाद जैन ने शर्तों के साथ पत्र को ज़िंदा रखने के बजाय उसके शहीद हो जाने को ही बेहतर समझा।''[7]

वर्ष 1909 में पं. सुंदरलाल ने इलाहाबाद से 'कर्मयोगी' हिंदी पाक्षिक का प्रकाशन प्रारंभ किया। 1910 में बसंत पंचमी पर इसे साप्ताहिक कर दिया गया। 'कर्मयोगी' उग्र विचारों का समाचार पत्र था। राष्ट्रवाद, स्वदेशी, स्वराज्य और बहिष्कार आंदोलन की ख़बरों और लेखों को 'कर्मयोगी' प्रमुखता से प्रकाशित करता था। अपनी निर्भीक अभिव्यक्ति और राष्ट्रीय चेतना के कारण ये अख़बार अंग्रेज़ सरकार की आंखों में चुभने लगा। गोरी सरकार ने अख़बार से तीन हज़ार रुपये की ज़मानत मांग ली और बाद में पं. सुंदरलाल की गिरफ्तारी के वारंट निकाल दिए। परिणामतः सन् 1910 में ही 'कर्मयोगी' को बंद करना पड़ा।

कुली बेगार और 'अल्मोड़ा अख़बार'

बुद्धि बल्लभ पंत ने 1871 में अल्मोड़ा से उत्तर प्रदेश के प्रथम हिंदी साप्ताहिक 'अल्मोड़ा अख़बार' का प्रकाशन-संपादन शुरू किया। कुछ दिन बाद सदानंद सनवाल इसके संपादक हो गए और वर्ष 1913 में पं. बद्रीदत्त पांडे इसके संपादक बने। 'कुली बेगार' विरोधी जन चेतना पर 'अल्मोड़ा अख़बार' का 28 जुलाई, 1913 का अंक अपने आप में स्वतंत्रता आंदोलन का महत्वपूर्ण दस्तावेज़ है। पांडे जी की निर्भीक लेखनी और राष्ट्रीय पत्रकारिता का कोप भाजन 'अल्मोड़ा अखबार' को बनना पड़ा। फलस्वरूप सन् 1917 में 'अल्मोड़ा अख़बार' पूरी तरह बंद हो गया। पं. बद्रीदत्त पांडे ने 'अल्मोड़ा अख़बार' बंद हो जाने के बाद भी हिम्मत नहीं हारी और 1918 में एक बार फिर अल्मोड़ा से 'शक्ति' का प्रकाशन शुरू किया। शक्ति ने भी स्वतंत्रता आंदोलन में पूर्ण हिस्सेदारी निभाते हुए अंग्रेज़ सरकार के अत्याचारों को उजागर किया। उस समय अंग्रेज़ शासक अपने चापलूसों को रायबहादुर की उपाधियां बांटते थे। इस पर बद्रीदत्त पांडे ने अपनी बेबाक क़लम चलाई तो सरकार ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया। ''दिसंबर 1921 में संपादक बद्रीदत्त पांडे को एक साल क़ैद की सज़ा सुनाई गई। 23 जून, 1923 को फिर 18 महीने सश्रम कारावास की सज़ा दी गई।'' (श्रीधर, 2008, पृ. 696)

सन् 1913 में ही कानपुर से गणेश शंकर विद्यार्थी ने हिंदी साप्ताहिक 'प्रताप' का प्रकाशन शुरू किया। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की लिखी निम्न पंक्तियां साप्ताहिक प्रताप का ध्येय वाक्य थीं:

'जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है।
वह नर नहीं, नर पशु निरा है और मृतक समान है।''

'प्रताप' ने अंग्रेज़ सरकार को क़दम-क़दम पर चुनौती दी और गोरे शासकों को बार-बार देशभक्ति की चपत लगाई। 24 अप्रैल, 1915 को प्रताप प्रेस, गणेश शंकर विद्यार्थी तथा 'प्रताप' के भागीदार शिवनारायण मिश्र के मकान और प्रताप कार्यालय जहां स्थानांतरित किया जाने वाला था, उस भवन की तलाशी ली गई और सारा सामान ज़ब्त कर लिया गया, लेकिन इसके बाद भी 'प्रताप' का मनोबल डिगा नहीं। 'प्रताप' अंग्रेज़ों की आंखों में इस कदर खटकता था कि विद्यार्थी जी को कई बार जेल जाना पड़ा। इससे बार-बार 'प्रताप' का प्रकाशन बाधित होता रहा। विद्यार्थी जी के जेल जाने के कारण कृष्णदत्त पालीवाल ने 'प्रताप' के संपादन का दायित्व संभाला। 10 सितंबर, 1923 को उनके इस्तीफा देने पर 3 मार्च, 1924 तक माखनलाल चतुर्वेदी ने 'प्रताप' का संपादन किया।

इसके अतिरिक्त 1 अप्रैल, 1919 को लाहौर से महाशय कृष्ण ने उर्दू दैनिक 'प्रताप' का प्रकाशन शुरू किया। 'प्रताप' में गोरी सरकार के विरुद्ध उग्र लेख लिखे गए तो सरकार ने एक सप्ताह बाद ही 'प्रताप' के प्रकाशन पर रोक लगा दी। महाशय कृष्ण को एक साल की सज़ा हुई। जेल से रिहा होने के बाद दैनिक 'प्रताप' का पुनः प्रकाशन शुरू किया गया। ''प्रताप पर बार-बार सेंसर लगाया गया। कुल मिलाकर 40 हज़ार की ज़मानत ज़ब्त

की गई। महाशय कृष्ण और उनके पुत्र के. नरेंद्र को चार बार और बड़े पुत्र वीरेंद्र को आठ बार गिरफ्तार किया गया।'' (श्रीधर, 2008, पृ. 711)

गांधीजी के अख़बार

महात्मा गांधी ने आज़ादी पाने के लिए जहां देशभर में अनेक आंदोलनों के जरिये लोगों को जाग्रत और प्रेरित किया वहीं लोगों से संवाद करने और उन तक अपनी भावनाएं पहुंचाने के लिए उन्होंने समाचार पत्रों का भी सहारा लिया। गांधीजी ने अपने जीवन में पांच अख़बारों का प्रकाशन किया। इनमें 'इंडियन ऑपिनियन', 'यंग इंडिया', 'नवजीवन', 'सत्याग्रही' और 'हरिजन' शामिल हैं। हिंदी और अंग्रेज़ी में साप्ताहिक 'सत्याग्रही' का प्रकाशन सन् 1919 में रोलट एक्ट का विरोध करने के लिए शुरू किया गया था। 'सत्याग्रही' का पंजीकरण नहीं कराया गया था, अतः उनके द्वारा चार समाचार पत्रों के संपादन की बात ही अक्सर कही जाती है।

'यंग इंडिया' अंग्रेज़ी साप्ताहिक था जो 1919 में बापू के संपादन में अर्ध साप्ताहिक होकर प्रकाशित हुआ। 'यंग इंडिया' के माध्यम से बापू अपनी विचारधारा को न केवल लोगों तक पहुंचाते थे, बल्कि सत्याग्रह के पक्ष में माहौल तैयार करने में भी उन्हें इससे मदद मिलती थी। सन् 1919 में ही अहमदाबाद से महात्मा गांधी के संपादन में गुजराती साप्ताहिक 'नवजीवन' का प्रकाशन शुरू हुआ। 'नवजीवन' भारतीय जनमानस के लिए नई राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक चेतना का माध्यम बना। 'नवजीवन' ने फिरंगियों की दुर्नीतियों का जमकर विरोध किया, इसलिए उसे बार-बार प्रताड़ित किया गया। नवजीवन प्रेस से ज़मानत भी मांगी गई और ज़मानत जमा न करने पर प्रेस को ज़ब्त कर लिया गया। बाद में 5 अगस्त, 1931 को वापिस कर दिया गया। देश आज़ाद होने के बाद 1948 में गुजराती 'नवजीवन' बंद हो गया, जबकि हिंदी नवजीवन का 1931 में 'हरिजन' में विलय हो गया।

महात्मा गांधी ने 'हरिजन' नाम से तीन समाचार पत्रों का संपादन किया। इससे भारतीयों को अंग्रेज़ों के खिलाफ़ एकजुट करने में मदद मिली। हरिजन सेवक संघ के तत्त्वावधान में अंग्रेज़ी साप्ताहिक 'हरिजन' का सन् 1933 में पुणे से प्रकाशन शुरू हुआ। ''हरिजन में गांधी जी का हस्ताक्षरयुक्त संपादकीय पृष्ठ चार पर छपता था।'' (श्रीधर, 2008, पृ. 946)। इस दौरान महात्मा गांधी ने गुजराती में 'हरिजन बंधु' और हिंदी में 'हरिजन सेवक' का प्रकाशन किया। ये तीनों अख़बार स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान भारत तथा विश्व की सामाजिक–आर्थिक समस्याओं पर केंद्रित थे।

गणेश शंकर विद्यार्थी से पत्रकारिता की दीक्षा लेने वाले दशरथ प्रसाद द्विवेदी ने 6 अप्रैल, 1919 से गोरखपुर से 'स्वदेश' का प्रकाशन शुरू किया। स्वदेश राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत समाचार पत्र था। नवजागरण में इस पत्र की विशेष भूमिका रही। इस पत्र के प्रथम पृष्ठ पर ही स्वदेश शीर्षक के नीचे यह पंक्तियां लिखी रहती थीं, जो स्वदेश की विचारधारा का परिचायक हैं-

''जो भरा नहीं है भावों से, जिसमें बहती रसधार नहीं,
वह हृदय नहीं है, पत्थर है, जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं।''

जबलपुर से 'कर्मवीर'

'राष्ट्र सेवा लिमिटेड' द्वारा 17 जनवरी, 1920 को जबलपुर से 'कर्मवीर' का प्रकाशन शुरू किया गया। 'कर्मवीर' के संपादक पं. माखनलाल चतुर्वेदी बनाए गए। 'कर्मवीर' ने एक तरफ लोगों को स्वतंत्रता के प्रति जागरूक किया, वहीं समाज सुधार के लिए सामाजिक विद्रूपताओं पर भी क़लम चलाई। इसके अलावा 'कर्मवीर' अंग्रेज़ अफ़सरों की काली करतूतों को भी उजागर करता था और अंग्रेज़ी सरकार की समाचार पत्रों और छापेखानों पर ताला डालने की नीतियों का भी जमकर विरोध करता था। 'कर्मवीर' में प्रकाशित एक अग्रलेख का ये अंश 'कर्मवीर' के तेवर से परिचय कराने के लिए पर्याप्त है-''हमारी आंखों में भारतीय जीवन गुलामी की जंजीरों में कसा दिखता है। हृदय की पवित्रता से हम प्रयत्न करेंगे कि वे जंजीरें फिसल जाएं.....। हम स्वतंत्रता के हामी हैं, राजनीति या समाज में, साहित्य में, धर्म में, जहां भी स्वतंत्रता का पथ रोका जाएगा, ठोकर मारने वाले का पहला प्रहार, घातक शस्त्र का पहला वार आदर से लेकर मुक्त होने के लिए हम प्रस्तुत रहेंगे, दासता से हमारा मतभेद रहेगा फिर चाहे वह शरीर की हो या मन की, व्यक्तियों की हो या परिस्थितियों की''... (श्रीधर, 2008, पृ. 735)। पत्र के अग्रलेख को उकसाने वाला माना गया और राजद्रोह का आरोप लगाते हुए माखनलाल चतुर्वेदी को 12 मई, 1921 को गिरफ्तार कर लिया गया।

गोरी सरकार द्वारा अनेक कानून बनाकर जिन समाचार पत्रों पर प्रतिबंध लगाए गए, ऐसे समाचार पत्रों में बनारस से प्रकाशित दैनिक 'आज' का नाम भी उल्लेखनीय है। 5 सितंबर, 1920 को बनारस से हिंदी दैनिक आज का प्रकाशन ज्ञान मंडल द्वारा शुरू किया गया। श्रीप्रकाश जी पर संपादन का दायित्व था। प्रवेशांक में संपादक की ओर से अपना जो पहला अग्रलेख लिखा गया वह न केवल समाचार पत्र प्रकाशित करने का उद्देश्य बताने के लिए पर्याप्त है, बल्कि उससे यह भी सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि अख़बार के तेवर कैसे रहे होंगे। अग्रलेख का एक अंश देखिए - ''.......हमारा उद्देश्य अपने देश के लिए हर प्रकार से स्वतंत्रता पाने का है। हम हर बात में स्वतंत्र होना चाहते हैं। हमारा लक्ष्य यह है कि हम अपने देश का गौरव बढ़ाए। हम अपने देशवासियों में स्वाभिमान का संचार करें। उनको ऐसा बनाएं कि भारतीय होने का उन्हें अभिमान हो, संकोच नहीं। यह स्वाभिमान स्वतंत्रता देवी की उपासना करने से मिलता है। जब हममें आत्मगौरव होगा तो अन्य लोग भी हमको आदर और सम्मान की दृष्टि से देखेंगे'' (श्रीधर, 2008, पृ. 725)।

'आज' कार्यालय की 1930 और 1932 में तीन बार तलाशी ली गई। गोरी सरकार की दमन नीति के चलते 1942 में यह कुछ समय के लिए बंद हो गया था। 1943 में 13 अप्रैल को भी अंग्रेज़ सरकार ने चौथी बार 'आज' कार्यालय पर छापेमारी करते हुए तत्कालीन संपादक विद्याभास्कर को गिरफ्तार कर जेल भेज दिया। भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव की फांसी पर 25 मार्च, 1931 को आज में बाबूराव विष्णु पराड़कर ने एक बड़ी मार्मिक टिप्पणी लिखी थी जिसे हिंदी पत्रकारिता का स्वर्णिम पृष्ठ माना जाता है। उन्होंने लिखा था-''सरदार भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव सोमवार को संध्या समय फांसी पर लटका दिए गए। साधारणतः फांसी सवेरे दी जाती है। इस अवसर पर किसी कारण से शाम को दी गई। सारे देश

ने दया के लिए प्रार्थना की। लाहौर के कानून पेशा लोगों ने अंत तक उन्हें बचाने का यत्न किया, पर सब व्यर्थ हुआ, इस पर अधिक कहना सुनना व्यर्थ है। हृदय का रक्त मुंह तक लाकर इतना अवश्य कहेंगे कि यह प्रश्न तीन आदमियों के प्राणों का ही नहीं था, प्रश्न था राष्ट्र की प्रार्थना का, वह प्रार्थना अस्वीकृत हो गई। भारतीय आकाश में प्रेम का जो सूर्योदय हुआ था, वह फिर से मेघाछन्न हो गया। हम तो इतना ही कहेंगे कि ब्रिटिश शासकों का हृदय बदलने का जो प्रमाण हम ढूंढ़ रहे थे, वह हमें नहीं मिला। अब भी देश में नौकरशाही प्रथा प्रबल है।'' (श्रीधर, 2008, पृ. 731)।

'चांद' का फांसी अंक

सन् 1922 में रामरख सिंह सहगल ने प्रयाग से 'चांद' साप्ताहिक का प्रकाशन शुरू किया, जिसे बाद में मासिक कर दिया गया। नवंबर 1928 में प्रकाशित 'चांद' का फांसी अंक आज़ादी के आंदोलन का एक ऐतिहासिक दस्तावेज़ है। इस अंक ने पूरे देश में क्रांति का ऐसा शंखनाद किया कि अंग्रेज़ सरकार को पसीने आ गए। परिणामतः इस अंक को ज़ब्त कर लिया गया। चांद के सभी अंक स्वतंत्रता आंदोलन के शक्ति स्रोत रहे हैं।

लाहौर से 21 मई, 1921 को गुरुमुखी हिंदी दैनिक 'अकाली पत्रिका' का सरदार मंगलसिंह के संपादन में प्रकाशन शुरू हुआ। अकाली पत्रिका ने आज़ादी के आंदोलन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस अख़बार की लोकप्रियता और महत्त्व का अंदाज़ा इससे लगाया जा सकता है कि ''अकाली पत्रिका' पढ़ने के लिए बड़ी संख्या में हिंदू और मुसलमानों ने गुरुमुखी सीखी। सरदार मंगलसिंह के उग्र आलेखों के कारण उन्हें तीन साल के कारावास की सज़ा दी गई। दूसरे संपादक ज्ञानी हीरा सिंह और मास्टर प्रतापसिंह को भी गिरफ्तार कर लिया गया।'' (श्रीधर, 2008, पृ. 741)। पंजाब में असहयोग आंदोलन को घर-घर पहुंचाने में 'अकाली पत्रिका' का विशेष योगदान माना जाता है।

26 नवंबर, 1924 को शोलापुर से प्रकाशित मराठी साप्ताहिक 'कर्मयोगी' प्रखर राष्ट्रवादी और अन्याय के खिलाफ़ आवाज़ उठाने वाला समाचार पत्र था। ''5 मई, 1930 को सविनय अवज्ञा आंदोलन के सिलसिले में महात्मा गांधी गिरफ्तार हुए तो उसकी प्रतिक्रिया शोलापुर में भी हुई। शोलापुर के लोगों ने विरोध में प्रदर्शन किया। पुलिस की गोली से शंकर शिवदारे सहित अनेक लोग शहीद हो गए। कर्मयोगी ने विशेष परिशिष्ट निकालकर इस कांड की जानकारी आम जनता को दी। इस पर संपादक रामचंद्र शंकर राजवाडे पर राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया। उन्हें सात वर्ष का सश्रम कारावास और दस हज़ार रुपये जुर्माने की सज़ा दी गई।''(श्रीधर, 2008, पृ. 825)। इसके बाद कर्मयोगी पर कई बार उत्पीड़नात्मक कार्रवाई की गई। 1932 में फिरंगी सरकार ने 'कर्मयोगी' पत्र और छापाखाना ज़ब्त कर लिया।

आगरा से 'सैनिक'

गणेश शंकर विद्यार्थी के 'प्रताप' से पत्रकारिता की दीक्षा और यश अर्जित कर चुके श्रीकृष्णदत्त पालीवाल ने 1 जून, 1925 को आगरा से 'सैनिक' हिंदी साप्ताहिक का प्रकाशन प्रारंभ किया। स्वतंत्रता का प्रबल समर्थक 'सैनिक' अपने समाचारों और लेखों के कारण गोरी सरकार की आंखों की किरकिरी बन गया था। ''संयुक्त प्रांत सरकार की प्रशासनिक रपटों में 'सैनिक' का संदर्भ आने लगा था। 1926 की रपट में दर्ज है- 'आगरा का सैनिक परिणामों की परवाह न कर सरकार पर हमला करता है।''(श्रीधर, 2008, पृ. 827)। एक तरफ 'सैनिक' की लोकप्रियता बढ़ती जा रही थी दूसरी ओर सरकार का कोप भी बढ़ता जा रहा था। 1927 में 'सैनिक' के दो अंक सरकार द्वारा ज़ब्त कर लिए गए और अनेक रियासतों में 'सैनिक' के प्रवेश पर प्रतिबंध लगा दिया गया। इसके बाद के अंकों में लगातार देश को आज़ाद कराने का आह्वान किया गया, जिसके कारण 'सैनिक' के कई संपादकों को जेल जाना पड़ा और प्रेस पर ताला डाले जाने की कार्रवाई अंग्रेज़ सरकार द्वारा की गई।

सहारनपुर के गांधी कहे जाने वाले ललता प्रसाद अख़्तर ने 23 मार्च, 1926 को सहारनपुर से 'परिवर्तन' नामक अख़बार का प्रकाशन शुरू किया। 'परिवर्तन' राजनीतिक व सामाजिक परिवर्तन का पक्षधर था। संपादक अख़्तर, नौजवान भारत सभा के प्रचार सचिव भी थे। इसलिए वह न केवल क़लम बल्कि अपने भाषणों के जरिये भी लोगों में स्वतंत्रता की अलख जगाते थे। 24 अप्रैल, 1930 को उन्हें गिरफ्तार कर जेल भेज दिया गया। 5 मई, 1930 को अख़्तर ने ज़िला कारागर स्थित न्यायालय में अपना लिखित बयान पढ़ा। उनका यह बयान आज़ादी के आंदोलन की एक यादगार इबारत है, जिसे 'परिवर्तन' में भी प्रकाशित किया गया था। बयान का एक अंश-''.....मैंने पहले भी कहा था और अब भी कहता हूं कि मौजूदा निजामे हकूमत हिंदुस्तान के लिए नाकाबिले बर्दाश्त बन चुका है। चूंकि अंग्रेज़ी जहनियत तमाम दुनिया में और हर मरहले पर अपने जाती मफाद को ही मद्देनज़र रखती है, ख्वा उसकी वजह से इन्साफ व इनसानियत का खून ही क्यों न हो जाए।.......मैं खुश हूं कि एक मुकद्दस जुर्म का मुजरिम हूं और उस जुर्म का मुजरिम हूं जिस जुर्म के मुजरिमों की अंग्रेज़ खुद अपने वतन इंग्लैण्ड में परस्तिश (पूजा) करते हैं और उनके नाम लेकर ज़िंदगी ताज़ा पाते हैं। हम आज़ादी ए वतन की जंग लड़ेंगे। झंडे को कायम रखने के लिए फना होकर सच्ची यादगार कायम करेंगे और हम नौजवानों का सुर्ख झंडा जो अब तक तिरंगे झंडे के अकब में चल रहा है अब बतौर हरावल आगे चलेगा और इस ज़िंदगी के निशान से शहीदाने वतन के खून की सुर्खी टपक-टपक कर मुर्दा दिलों को जिंदा करेगी। हर नौजवान इसे अपनी कुर्बानी के खून से सींचेगा। हां-हां वतन आबाद, पासबाने वतन जिंदाबाद! इंकलाब जिंदाबाद! अब मैं बखमदा पेशानी हुक्म सज़ा सुनने का मुंतजिर हूं। वंदे मातरम् !''[8] वर्ष 1929 में गांधी जी के सहारनपुर आगमन पर 'परिवर्तन' का एक विशेषांक भी निकाला गया था।

विकास प्रेस की 97 बार नीलामी

वर्ष 1933 में सहारनपुर से विशंभर प्रसाद शर्मा और कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर के संपादन में 'विकास' का प्रकाशन शुरू हुआ। 'विकास' आज़ादी का अकेला ऐसा सिपाही था, जिसे बंद करने के लिए गोरी सरकार ने 97 वीं बार प्रेस को नीलाम करने की कोशिश की और जब इसमें सफलता नहीं मिली तो कुछ दिन बाद प्रेस के भवन को सरकारी गोदाम घोषित कर सामान बाहर फिंकवा दिया गया। प्रभाकर जी के शब्दों में-''हर नीलाम एक आग थी जो सब कुछ भस्म कर सकती थी, पर आग की लपटें उठती और बुझ जाती। यह क्रम लगभग पांच वर्ष चला और इन वर्षो में 97 बार नीलाम की तारीख रखी गई और मुल्तवी हुई।''[9]

'विकास' का प्रकाशन बंद होने के बाद कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर खामोश नहीं बैठे और 'विश्वास' के नए दीपक से लोगों को आज़ादी की तरफ जाने वाला मार्ग पर प्रशस्त करने का निश्चय किया। प्रभाकर जी के संपादन में 12 जनवरी, 1936 के 'विश्वास' साप्ताहिक में हिंदू और मुसलमानों के बीच अफवाहों की दीवार गिराकर और कांग्रेस के साथ जुड़कर आज़ादी पाने के लिए सीमांत गांधी खान अब्दुल गफ्फार खां की एक अपील प्रथम पृष्ठ पर छापी गई। सीमांत गांधी की अपील का एक अंश- ''........मैं हिंदुओं और मुसलमानों से कहता हूं कि आज़ादी की ये जद्दोजहद दोनों ही की निजात के लिए चल रही है। हिंदू इसमें हिस्सा लेकर किसी दूसरे पर अहसान नहीं कर रहे हैं और न मुसलमान ही इसमें हिस्सा लेकर हिंदुओं पर कोई मेहरबानी कर रहे हैं। यहां कुछ ऐसी ताक़तें भी हैं जो हमारे बीच बैर का बीज बो रही हैं।....''[10]

इसके अलावा ''मुजफ्फरनगर निवासी मास्टर विशंभर दयाल द्वारा 1929 में दिल्ली से 'रोटी' हिंदी दैनिक अख़बार का प्रकाशन संपादन किया गया।''(वर्मा तथा गुप्त, 1997, पृ. 22)। रोटी ने भी लोगों में आज़ादी के प्रति जनजागरण में अहम भूमिका अदा की। सहारनपुर के दारुल उलूम देवबंद से 'दारुल उलूम', 'अलकासिम', 'मुहाजिर', 'अलअंसार' व 'अलरशीद' आदि पत्र भी निकाले गए। इनमें से भी कुछ पत्रों ने आज़ादी की अलख जगाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। शाह अब्दुल रहीम रायपुरी की मृत्यु पर हजरत शेखुल हिंद ने माल्टा जेल से एक मरसिया लिखकर भारत भेजा था, जिसे 'अलकासिम' देवबंद के जून 1920 अंक में प्रकाशित किया गया था।

समाचार पत्रों पर प्रतिबंध होने के कारण जब पत्रों का प्रकाशन नहीं हो सका तो अनेक पत्रकारों द्वारा गोपनीय रूप से साइक्लोस्टाइल मशीन से समाचार पत्रों का प्रकाशन किया गया। ऐसे समाचार पत्र यों तो पूरे देश में निकाले गए, लेकिन बनारस में इनकी संख्या काफ़ी रही। ऐसे समाचार पत्रों में चिंगारी, शंखनाद, रणचंडी, चंडिका, रणडंका, प्रलय, ज्वालामुखी व तूफान आदि प्रमुख हैं। ये पत्र भारत की पूर्ण स्वतंत्रता के न केवल पक्षधर थे, बल्कि स्वतंत्रता के साथ-साथ सामाजिक व्यवस्था में क्रांतिकारी परिवर्तन की भी अपेक्षा रखते थे।

निष्कर्ष

स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान प्रकाशित समाचार पत्रों के अध्ययन से स्पष्ट है कि समाचार पत्रों ने न केवल जन जागरण कर आज़ादी के प्रति नागरिकों के सुशुप्त मानस को झकझोरा, बल्कि स्वतंत्रता आंदोलन जहां भी भटका अथवा लड़खड़ाया, उसे सही दिशा देकर संभाला भी। चांद, स्वराज, केसरी, आज, प्रताप, कर्मवीर, परिवर्तन व जैन प्रदीप आदि अनेक समाचार पत्रों में प्रकाशित सामग्री साक्षी है कि आम जन से संवाद और अंग्रेज सरकार पर प्रहार करने के लिए आंदोलनकारी नेताओं ने अख़बारों को संवाद का हथियार बनाया और स्वदेशी, स्वाधीनता व स्वराज के प्रति लोगों में जनजागरण किया। भारतीय समाचार पत्रों का आज़ादी के आंदोलन में यह योगदान पत्रकारिता के इतिहास की एक ऐसी स्वर्णगाथा है, जिस पर पूरा देश सदैव गौरवान्वित होता रहेगा। भारतीय भाषाई पत्रकारिता का इतिहास वास्तव में भारतीय जनमानस में 'स्व' के जागरण का इतिहास है। जब देशवासियों में 'स्व' का जागरण हुआ तो वे स्वधीनता प्राप्त करने के लिए उठ खड़े हुए। स्वतंत्रता संग्राम सभी देशवासियों का सामूहिक संघर्ष था और असंख्य लोगों ने अपना बलिदान देश की आजादी के लिए दिया था न कि विभाजन के लिए। इसलिए देश का विभाजन वास्तव में स्वतंत्रता सेनानियों का अपमान था। खैर, स्वतंत्रता संग्राम में मीडिया की भूमिका का बार-बार स्मरण होता रहना चाहिए ताकि नई पीढ़ियों को बलिदानी पत्रकारों का स्मरण होता रहे। यह स्मरण आम नागरिकों ही नहीं बल्कि नई पीढ़ी के पत्रकारों के लिए भी उतना ही आवश्यक है।

संदर्भ

वर्मा, आर. एवं गुप्त, ए. (सं) (1997). *भारतीय स्वतंत्रता संग्राम-मुजफ़्फ़रनगर का योगदान*, पृ. 22

श्रीधर, वी. (स.) (2008). भारतीय पत्रकारिता कोष, खंड-दो. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, पृष्ठ 571

श्रीधर, वी. (स.) (2008). भारतीय पत्रकारिता कोष, खंड-दो. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, पृ. 578

श्रीधर, वी. (स.) (2008). भारतीय पत्रकारिता कोष, खंड-दो. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, पृ. 577

श्रीधर, वी. (स.) (2008). भारतीय पत्रकारिता कोष, खंड-दो. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, पृ. 588

श्रीधर, वी. (स.) (2008). भारतीय पत्रकारिता कोष, खंड-दो. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, पृ. 599-600

श्रीधर, वी. (स.) (2008). भारतीय पत्रकारिता कोष, खंड-दो. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, पृ. 696

श्रीधर, वी. (स.) (2008). भारतीय पत्रकारिता कोष, खंड-दो. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, पृ. 711

श्रीधर, वी. (स.) (2008). भारतीय पत्रकारिता कोष, खंड-दो. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, पृ. 946

श्रीधर, वी. (स.) (2008). भारतीय पत्रकारिता कोष, खंड-दो. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, पृ. 735

श्रीधर, वी. (स.) (2008). भारतीय पत्रकारिता कोष, खंड-दो. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, पृ. 725

श्रीधर, वी. (स.) (2008). भारतीय पत्रकारिता कोष, खंड-दो. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, पृ. 731

श्रीधर, वी. (स.) (2008). भारतीय पत्रकारिता कोष, खंड-दो. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, पृ. 741

श्रीधर, वी. (स.) (2008). भारतीय पत्रकारिता कोष, खंड-दो. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, पृ. 825

श्रीधर, वी. (स.) (2008). भारतीय पत्रकारिता कोष, खंड-दो. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, पृ. 827

नोट

1. bharatdiscovery.org /india/ पयामे_आज़ादी
2. tirchhii-nazar.blogspot.com/2019/05/गोपेश मोहन जैसवाल
3. hi.wikipedia.org/wiki/बाल-गंगाधर-तिलक
4. hi.wikipedia.org/wiki/हिन्दुस्तान-(समाचार-पत्र)
5. श्रद्धा, संपादक स्वामी श्रद्धानंद, गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार, 10 अप्रैल, 1921
6. श्रद्धा, संपादक स्वामी श्रद्धानंद, गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार, 10 अप्रैल, 1921
7. सहारनपुर संदर्भ भाग-दो, संपादक डॉ.के.के शर्मा व डॉ. शिप्रा बैनर्जी पृष्ठ 77
8. परिवर्तन उर्दू साप्ताहिक, संपादक हकीम पन्नालाल, 5 मई, 1930
9. सहारनपुर संदर्भ भाग-दो, संपादक डॉ. के. के. शर्मा व डॉ. शिप्रा बैनर्जी, विकास की विकास यात्रा, पृष्ठ 327
10. विश्वास हिंदी साप्ताहिक, संपादक कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, 12 जनवरी, 1936, पृष्ठ एक

संचार माध्यम | खंड 32(2): 31-37, जुलाई-दिसंबर 2020
आईएसएसएन: 2321-2608

शांति-निर्माण और संघर्ष-समाधान में लोक संचार की भूमिका
(जम्मू-कश्मीर की लोक-नाट्य परम्परा भाण्ड-पाथेर के विशेष संदर्भ में)

डॉ. जयप्रकाश सिंह[1]

सारांश

शांति-निर्माण और संघर्ष-समाधान की प्रक्रिया में संचार-परंपराओं और संचार-माध्यमों की केंद्रीय भूमिका होती है। संचारीय-प्रक्रिया ही वह एकमात्र विधि है, जो व्यक्ति को मनो-संज्ञानात्मक स्तर से लेकर सामाजिक-व्यवस्थागत स्तर तक प्रभावित करती है। इसलिए संचारीय-प्रक्रिया द्वारा अशांत क्षेत्र में संप्रेषित कोई भी संदेश मनो-संज्ञानात्मक हस्तक्षेप भी बन जाता है और सामाजिक-व्यवस्थागत पहल के रूप में भी स्वीकार किया जाता है। लोक संचार मौखिक रूप से संप्रेषित वह संदेश है, जो विशेष रूप से भूतकाल के घटनाक्रम को संबोधित करता है।[1] परिवेश की भाषा, मुहावरे और रूपक, ऐतिहासिक-भौगोलिक यथार्थ का स्पर्श, संदेशों के सांस्कृतिक-अनुकूलन की क्षमता और सर्वस्पर्शी संप्रेषण क्षमता के कारण लोक संचार माध्यम जनसामान्य से सीधे जुड़ते हैं और उन्हें गहराई तक प्रभावित करते हैं। इसके अतिरिक्त समस्याओं के उनके वास्तविक स्वरूप में भी लोक संचार परंपराएं बहुत सहयोगी साबित होती हैं, क्योंकि क्षेत्र-विशेष की समस्याओं को लोक संचार परंपराओं में अभिव्यक्ति मिल ही जाती है। लोक संचार माध्यमों के कारण ऐतिहासिक और भौगोलिक वस्तुस्थिति से समाज के लोग पूर्व-परिचित रहते हैं, इसलिए किसी प्रकार का दुष्प्रचार अभियान लोगों को प्रभावित नहीं कर पाता। लोक संचार दुष्प्रचार अभियानों को निष्प्रभावी बनाकर भी कृत्रिम-संघर्षों की संभावनाओं को कम कर देते हैं। विकास-योजनाओं के सफल-क्रियान्वयन और उन्हें दूर-दराज के लक्षित लाभार्थियों तक पहुंचाने में लोक संचार प्रभावी साबित होता रहा है। लड़कियों की शिक्षा, सही उम्र में विवाह जैसे अभियान हों, पल्स-पोलियो अभियान को लेकर फैले भ्रम को दूर करने का अभियान, लोकसंचार का पुट देने के बाद ही इन्हें सफलता मिली। विकास की प्रक्रिया को सभी तक पहुंचाने में सहयोग करके भी लोक संचार माध्यम शांति-निर्माण और संघर्ष-समाधान की प्रक्रिया को आगे बढ़ाते हैं। लोक संचार माध्यम किसी भी समूह को उसके मूल से जोड़ते हैं, और उन्हें पहचान के संकट से उबारते हैं। जम्मू-कश्मीर में पांथिक-कट्टरता तथा अन्य कारणों से लंबे समय से अशांति का वातावरण बना हुआ है। यहां समय-समय पर शांति स्थापित करने के प्रयास होते रहे, लेकिन उन्हें अपेक्षित सफलता नहीं मिल पाई। जम्मू-कश्मीर की कुछ लोक-संचार परंपराएं विदेशी-आक्रमणों, प्रतिबंधों और निषेधों के बावजूद अक्षुण्ण बनी हुई हैं। इनमें सबसे प्रमुख और जीवंत लोक-नाट्य परंपरा भाण्ड-पाथेर के नाम से प्रसिद्ध है। प्रस्तुत शोध-आलेख भाण्ड-पाथेर की प्रकृति में निहित शांति-निर्माण और संघर्ष-समाधान की संभावनाओं को समझने का प्रयास है।

संकेत शब्द : शांति-निर्माण, संघर्ष-समाधान, लोक-संचार, दुष्प्रचार-अभियान, पहचान का संकट, भाण्ड-पाथेर

प्रस्तावना

मानवीय स्वभाव की विशेष संरचना के कारण समाज में शांति एक अभीष्ट परिवेश और संघर्ष एक अवश्यंभावी परिघटना का रूप ले लेते हैं। शांति-निर्माण के लिए संघर्षों का सटीक समाधान आवश्यक हो जाता है। शांति-निर्माण और संघर्ष-समाधान के लिए उपकरण के रूप में संवाद, मध्यस्थता, पंचाट, बातचीत और मोल-भाव का उपयोग किया जाता है। संचार-प्रक्रिया और संचार माध्यमों का उपयोग भी संघर्ष-समाधान के उपकरण के रूप में होता रहा है। संचार प्रक्रिया के एक हिस्से के रूप में लोक संचार ने भी संघर्ष-समाधान के उपकरण के रूप में अपनी उपस्थिति दर्ज कराई है।

संघर्ष भौगोलिक-विशिष्टता, ऐतिहासिक-जटिलता और सांस्कृतिक-विविधता संचार की प्रक्रिया और पद्धति को सबसे अधिक प्रभावित करते हैं। तकनीक केन्द्रित आधुनिक संचार माध्यमों ने भौगोलिक बाधाओं को दूर करने में एक हद तक सफलता पाई है, लेकिन संचार-प्रक्रिया में ऐतिहासिक और सांस्कृतिक पक्षों की महत्ता यथावत बनी हुई है। लोक-संचार परम्पराओं के उद्भव और विकास में तो भौगोलिक विशिष्टताओं का केन्द्रीय महत्व होता है। इसी कारण, लोक-संचार में स्थानीयता का तत्व आ जाता है। यह स्थानीयता का तत्व ही लोक संचार की सबसे बड़ी विशेषता है। स्थानीयता का तत्व लोक संचार को बहुत सहज, सरस, समावेशी और सामर्थ्यपूर्ण बना देता है। स्थानीयता के तत्व के कारण ही लोक संचार को एक ऐसा श्रोता वर्ग उपलब्ध होता है, जो संदेश को ग्रहण करने के लिए तत्पर होता है। इस कारण आधुनिक संचार माध्यमों की तरह लोक संचार को निष्क्रिय श्रोता नहीं मिलता, बल्कि एक ऐसा सक्रिय श्रोता मिलता है, जो स्वयं तो संदेशों को गहराई से ग्रहण करता ही है, संदेशों को दूसरों तक सहज ही पहुंचाता है। इसलिए लोक संचार का श्रोता, जाने-अनजाने ओपिनियन लीडर की भूमिका का निर्वहन भी करता है।

आधुनिक संचार माध्यमों के संदेश तक पहुंचने की कुछ पूर्व शर्तें होती हैं। व्यक्ति की साक्षरता, तकनीकी दक्षता और उपकरणीय उपलब्धता होने पर ही आधुनिक संचार माध्यमों के संदेश श्रोता तक पहुंचते हैं, लेकिन लोक संचार के संदेश सहज प्राप्त होते हैं, और कई बार तो श्रोता स्वयं ही संदेश-संप्रेषण की प्रक्रिया में सहभागी होते हैं। लोक संचार माध्यमों की

[1]सहायक आचार्य, कश्मीर अध्ययन केन्द्र, हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय, सप्त-सिंधु परिसर, देहरा, कांगड़ा-177101, हि. प्र.। ईमेल : jpsh.pol@gmail.com

शब्दावली और विषयों में स्थानीयता के कारण ये श्रोता से सीधे जुड़ते हैं और उसके मन में स्थायी प्रभाव डालते हैं।

शोध-प्रविधि

इस शोध-आलेख में केस स्टडी और थीमेटिक एनलिसिस शोध-पद्धतियों का उपयोग किया गया है। लोक संचार का अध्ययन अभी तक शांति-निर्माण और संघर्ष-समाधान के माध्यम के रूप में नगण्य है। इसलिए लोक संचार माध्यमों में उपलब्ध विविध संदर्भों का शांति-निर्माण और संघर्ष-समाधान की थीम के अनुरूप चयन और विश्लेषण इस शोध-आलेख में किया गया है। जम्मू-कश्मीर में कई लोक संचार परम्पराएं हैं। लोक-नाट्य परम्परा भाण्ड पाथेर को उनका प्रतिनिधि मानकर इस आलेख में अध्ययन किया गया है और भाण्ड पाथेर में निहित शांति-निर्माण और संघर्ष-समाधान की संभावनाओं के विस्तारपूर्वक विश्लेषण के लिए केस-स्टडी शोध-प्रविधि का उपयोग किया गया है।

शांति और समाधान का लोक संचारीय-मार्ग

शांति-निर्माण की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने और संघर्षों का समाधान खोजने में लोक संचार बहुस्तरीय भूमिका निभाता है। लोक संचार की प्रक्रिया उन कई कारणों को सम्बोधित करने में सक्षम है, जिनसे शांति-स्थापना में या संघर्षों का समाधान खोजने में बाधा पहुंचती है। पहचान का बढ़ता संकट, दुष्प्रचार अभियान, भाषाई मानवाधिकार का प्रश्न, विकास-प्रक्रिया से अछूतापन और उसके सांस्कृतिक-दुष्प्रभाव, समस्याओं की सही समझ का अभाव, संचारीय-अक्षमता इत्यादि शांति-निर्माण और संघर्ष-समाधान के मार्ग में सबसे बड़ी बाधाएं हैं। आश्चर्यजनक रूप से लोक संचार इन सभी बाधाओं को दूर करने में किसी-न-किसी प्रकार सहायक साबित होता है।

पहचान और दुष्प्रचार का प्रश्न: लोक संचार में समाधान

यह एक स्थापित तथ्य है कि दुनिया भर में चल रहे संघर्षों का एक बहुत बड़ा कारण पहचान का संकट है। राजनीतिक प्रतिष्ठान दुनिया भर में अपने लाभ के लिए कृत्रिम और संकीर्ण पहचानों को लोगों पर थोपते हैं, पहचान के नए प्रतीक गढ़ते हैं और एक-दूसरे के विरुद्ध श्रेष्ठता का भाव भरते हैं। श्रेष्ठता बोध से ग्रस्त पहचान के ये कृत्रिम और संकीर्ण दायरे संघर्षों को जन्म देते हैं। राजनीतिक प्रतिष्ठान इन संघर्षों का लाभ अपने निहित स्वार्थों के लिए उठाने का प्रयास करते हैं। लोक संचार में ऐतिहासिक और भौगोलिक यथार्थ की अभिव्यक्ति मिलती है। कोई भी व्यक्ति अपनी पहचान की जड़ों को लोक-संचार की परम्पराओं में खोज सकता है। इसीलिए लोक संचार की उपस्थिति में पहचान कृत्रिम और संकीर्ण दायरे में काम नहीं कर पाती। लोक संचार व्यक्ति को उसकी पहचान का परिचय देकर संघर्ष की संभावनाओं को बहुत सीमित कर देता है। लोक संचार पहचान के संकट को खत्म करने में सहायक है, लोगों को उसकी जड़ों से जोड़ने में मदद करता है और इस तरह संघर्ष-समाधान के उपकरण के रूप में कार्य करता है।

इसी तरह संघर्षों का एक बड़ा कारण दुष्प्रचार और उससे गढ़ी जाने वाली काल्पनिक कहानियां हैं। दुष्प्रचार की मुख्य रणनीति अन्यकरण की प्रक्रिया होती है। सारी बुराइयों के लिए एक दुश्मन ढूंढ़ लिया जाता है और किसी भी प्रकार उसके अस्तित्व को समाप्त करना अपना अधिकार मान लिया जाता है। कुछ मानवीय और पांथिक प्रवृत्तियां अन्यकरण की प्रक्रिया को बल देती हैं। अकर्मण्य और असृजनात्मक मानसिकता और खंडित विश्व-दृष्टि की उपस्थिति में दुष्प्रचार का प्रभाव बढ़ जाता है। अकर्मण्य व्यक्ति या विचारधारा में दूसरों को दोषी मानने की सहज प्रवृत्ति होती है। इसलिए ऐसे लोगों के बीच ऐसा कोई भी दुष्प्रचार बहुत जल्दी सफल होता है, जिसमें असफलता और बुराई के लिए किसी अन्य को उत्तरदायी ठहरा दिया गया होता है। अब्राहमिक पंथ प्रायः दुनिया को दो हिस्सों में विभाजित करके देखने के अभ्यस्त रहे हैं। इस विभाजित विश्व-दृष्टि में सारी अच्छाइयां और अधिकार एक पक्ष के पास होते हैं और दूसरे पक्ष को शैतान का प्रतीक मान लिया जाता है। इसलिए इन पंथों से प्रभावित समाज में दूसरे पक्ष के खिलाफ चलाए जा रहे किसी भी दुष्प्रचार को सहज ही स्वीकार कर लिया जाता है। दूसरे शब्दों में कहें तो अब्राहमिक पंथ मानने वाले समाज किसी भी प्रोपेगेंडा अभियान के लिए अधिक सुभेद्य होते हैं।

लोक संचार में सहजता और उत्साह होता है, सम्पूर्ण परिवेश और समाज को अपना मानने की मानसिकता होती है। लोक संचार अपने भीतर व्यक्ति और समाज का ऐतिहासिक-भौगोलिक यथार्थ भी समेटे रहता है। इसलिए यह वाह्य-दुष्प्रचार अभियानों के खिलाफ प्रति-आख्यान के रूप में काम करता है। आरोपित और गढ़े गए झूठ लोक संचार में निहित ऐतिहासिक और पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्राप्त सच के सामने टिक नहीं सकते। लोक संचार अन्यकरण की प्रक्रिया का स्वाभाविक प्रतिकार है। इसलिए किसी भी प्रायोजित दुष्प्रचार अभियान को निष्प्रभावी या अप्रभावी बनाने का एक असरदार तरीका लोक संचार और उससे जुड़ी परम्पराएं हैं। चूंकि सेमेटिक-पंथों से प्रभावित समाज दुष्प्रचार अभियानों के लिए सबसे अधिक सुभेद्य होते हैं, इसलिए ऐसे समाजों में संघर्ष-समाधान के उपकरण के रूप में लोक संचार की महत्ता भी बढ़ जाती है।

भाषाई-मानवाधिकार और लोक-संचार : संघर्ष-समाधान का सम्पूर्ण पैकेज

भाषा किसी भी व्यक्ति के हृदय की कुंजी होती है। भाषा वह शक्ति है, जो किसी व्यक्ति के विश्व-बोध को निर्धारित करती है। भाषा की सीमा, सामर्थ्य और संरचना उसके उपयोगकर्ता के विचार और चिंतन को निर्धारित करते हैं[2]। भाषा विश्व-बोध को ही नहीं, बल्कि व्यक्ति के समय और स्थान-बोध को निर्धारित करने की क्षमता रखती है[3]। इस संकल्पना को भाषाई-नियतिवाद के नाम से भी जाना जाता है। यह भाषा की ही क्षमता है, जिसके कारण अंग्रेजी-भाषी समय को क्षैतिज रूप में लेते हैं और मंदारिन-भाषी चीनी लोग इसे उर्ध्वाधर रूप में लेते हैं (बोरोडिट्स्की, 2001)। इसी कारण समय की पश्चिमी अवधारणा निरंतर एकपक्षीय ढंग से आगे बढ़ने पर विश्वास करती है और चीन ऊपर से नीचे के क्रम में घटनाओं का विश्लेषण करता है। किसी समूह विशेष को उसके भाषाई-मानवाधिकार से वंचित करना संघर्षों और अशांति को जन्म देता है। परिवेश की भाषा में सम्प्रेषित संदेश लोगों को सहज ही समझ में आता है, यह एक पक्ष है। इसके साथ महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि परिवेश की भाषा जुड़ाव भी पैदा करती है। बचपन में परिवेश की भाषा का महत्व, जहां विषय को समझने

के लिहाज से अधिक होता है, वहीं बढ़ती उम्र में इसका महत्व व्यक्ति में पैदा होने वाली अतीत के प्रति ललक के कारण बढ़ जाता है।

लोक संचार की भाषा परिवेश की भाषा होती है। इसलिए यह व्यक्ति को सहज ही भाषाई मानवाधिकार प्रदान करती है। उसके व्यक्तित्व को गरिमा प्रदान करती है और चिंतन को अभिव्यक्ति और पहचान देती है। लोक संचार के कारण व्यक्ति अपनी समस्याओं को सटीक तरीके से दूसरों तक पहुंचा पाने में सक्षम होता है और समस्या का समाधान खोजने में भी अपनी भूमिका तय करने की स्थिति हासिल करता है। लोक संचार और परिवेश की भाषा का सम्बन्ध उसे शांति-निर्माण और संघर्ष-समाधान का एक महत्वपूर्ण उपकरण बना देता है।

भाषा-संरक्षक के रूप में लोक संचार-माध्यम और संघर्ष-समाधान में उनकी भूमिका

लोक संचार की प्रक्रिया और माध्यमों का परिवेश की भाषाओं से गर्भ-नाल का संबंध होता है। लोक-संचार माध्यम किसी समाज या समुदाय की परिवेश की भाषा के जरिये उसकी भावनाओं, विचारों, मुद्दों, दृष्टिकोणों को केवल अभिव्यक्ति ही नहीं देते, बल्कि उस भाषा को संरक्षित रखने का काम भी करते हैं। स्थानीय भाषाओं का संरक्षण स्वयं में संघर्ष-समाधान के एक नैसर्गिक उपकरण को बचाए रखने जैसा है। यूनेस्को ने वर्ष 2019 को देशज-भाषाओं के अंतरराष्ट्रीय वर्ष के रूप में मनाया। देशज भाषाओं के संरक्षण के लिए यूनेस्को ने जो तीन लक्ष्य तय किए थे, उनमें से दो लक्ष्य शांति-निर्माण और मतभेदों को दूर करना था[4]। इस वैश्विक संगठन की मान्यता है कि देशज भाषाओं का संरक्षण सांस्कृतिक दृष्टि से तो महत्वपूर्ण है ही, विकास, शांति-निर्माण और मतभेदों को दूर करने के लिए भी यह कार्य आवश्यक है। लोक संचार माध्यम स्थानीय भाषाओं का संरक्षण बहुत सहज तरीके से करते हैं और इन्हें एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को सौंपते रहते हैं। लोक संचार माध्यम इस पृष्ठभूमि में परिवेश की भाषाओं के संरक्षण के संस्थान के रूप में कार्य करते हैं। लोक संचार माध्यमों की भाषा-संरक्षक की भूमिका भी उनके शांति-निर्माण और संघर्ष-समाधान की व्यापक भूमिका को और अधिक पुष्ट करती है।

संचारीय-अक्षमता का लोक उपचार

संघर्ष के कई कारण होते हैं, लेकिन उनमें से एक प्रमुख कारण संचारीय-अक्षमता या संचारीय-संलग्नता का अभाव है। लोक संचार के उपलक्ष्य में जन-संलग्नता की जबरदस्त क्षमता होती है। लोक संचार का सहारा लेने पर वांछित संदेशों को पूरी सटीकता के साथ लक्षित लोगों तक पहुंचाया जा सकता है। लोक-संचार के कारण संचार-अंतराल की स्थिति पैदा नहीं होती। इसके कारण समस्याओं के समाधान के दौरान अनावश्यक मनमुटाव की स्थिति यहां पैदा नहीं होती।

संघर्ष-समाधान की प्रक्रिया में अहंकार का टकराव और षड्यंत्र का शक दो बहुत बड़ी बाधाएं हैं। यदि संघर्ष-समाधान की प्रक्रिया में किसी एक पक्ष की तरफ ध्यान नहीं दिया जाता, उसके विचारों और अभिमतों को उचित स्थान नहीं दिया जाता तो उसे लगता है कि उसकी उपेक्षा हो रही है और वह अपने रुख को अड़ियल बना लेता है। यहीं से अहं के टकराव की स्थिति पैदा होती है। इसी तरह संघर्ष-समाधान की प्रक्रिया के शुरुआती दौर में सभी पक्ष एक दूसरे को अविश्वास की दृष्टि से देखते हैं। ऐसी स्थिति को यदि सतत-संवाद के जरिये दूर न किया जाए तो सभी पक्ष स्वाभाविक रूप से इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि दूसरा पक्ष उनके साथ षड्यंत्र रच रहा है। लोक संचार षड्यंत्र-सिद्धांत की मानसिकता या अहंकार टकराव की स्थिति पैदा नहीं होने देता। इसी कारण लोक संचार विश्वास बहाली का प्रभावी उपकरण है।

समस्या की बेहतर समझ : लोकसंचार का सटीक उपकरण

लोक संचार समस्या की बेहतर समझ पैदा करने में हमारी मदद करता है। समस्या की बेहतर समझ समाधान तक पहुंचने की प्रथम और सबसे महत्वपूर्ण सीढ़ी है। संचारीय-अक्षमता की स्थिति को दूर कर लोक संचार सहमति के एक बिंदु पर लाने और एक समझ बनाने में सहयोग करता है। लोक संचार के कारण एक तरफ जहां नीति-नियंताओं को समुदाय विशेष की सांस्कृतिक-सामाजिक-स्थिति का आकलन करने में मदद मिलती है, वहीं दूसरी तरफ स्थानीय लोगों को सरकार की सद्भावना को समझने में मदद मिलती है। संचारीय-सामर्थ्य के इसी गुण के कारण लोक संचार संघर्ष-समाधान का एक प्रभावी उपकरण बन जाता है।

सतत विकास और लोक संचार

वर्तमान समय में जम्मू-कश्मीर सहित पूरी दुनिया में विकास के बहुत सारे प्रयास इसलिए विफल हो जाते हैं, क्योंकि विकास योजनाओं में समाज के स्थानीय मूल्यों, मान्यताओं और परम्पराओं का ध्यान नहीं रखा जाता। यदि विकास की परियोजनाएं सफलतापूर्वक और संघर्ष रहित तरीके से धरातल पर उतारनी हैं तो उसके लिए उस परिवेश का ज्ञान आवश्यक है, जहां पर उनका क्रियान्वयन किया जाना है। यूनेस्को भी यह मानता है कि लोक संचार और सामुदायिक माध्यमों का स्थानीय मुद्दों और चिंताओं पर अधिक फोकस होता है और वे लोगों को चर्चा और विमर्श के लिए मंच उपलब्ध कराते हैं[5]। यह भी एक स्थापित सत्य है कि परिवेश को जीवंत तरीके से समझने का सबसे सरल माध्यम लोक संचार ही है। कोई एक शब्द स्थानीय लोगों को योजना और उसके उद्देश्यों से जोड़ सकता है। वर्तमान समय में आधुनिक संचार माध्यमों के साथ लोक संचार माध्यमों का उपयोग करके विकास योजनाओं का क्रियान्वयन सटीक तरीके से किया जा सकता है। लोक संचार माध्यमों का महत्व केवल सांस्कृतिक विरासत और पूर्वजों के ज्ञान को संरक्षित करने के लिए नहीं है, बल्कि सतत विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए भी यह महत्वपूर्ण है। केवल क्रियान्वयन के लिहाज से ही नहीं, बल्कि योजनाओं को लेकर फैलाए जा रहे भ्रमों को दूर करने में भी लोक संचार माध्यम बहुत प्रभावी साबित हो सकते हैं।

उपभोक्तावादी दृष्टिकोण का संयमन और लोक संचार

इसके साथ ही लोक संचार माध्यम व्यक्तियों को दूसरे व्यक्तियों और समुदायों के प्रति एक सरस दृष्टिकोण देते हैं। उन्हें उपयोगितावादी दृष्टिकोण की सीमाओं के प्रति जागरूक करते हैं। यहां यह स्पष्ट करना आवश्यक हो जाता है कि संघर्षों का एक बहुत बड़ा कारण उपयोगिता-दर्शन से उपजा उपभोक्तावादी दृष्टिकोण है। संसाधनों के अधिकाधिक दोहन के कारण भी संघर्ष की स्थितियां पैदा होती हैं। लोक संचार में प्रकृति

और उसके संसाधनों के प्रति एक विशेष ममत्व का दृष्टिकोण परिलक्षित है। इसके साथ ही व्यापक सभ्यतागत अनुभवों का संचय होने के कारण लोक संचार उपभोक्तावाद की अतियों के दुष्प्रभाव को सहज तरीके से अभिव्यक्त करता है। इसके कारण लोक संचार आधुनिक उपभोक्तवाद का विकल्प लोगों के सामने रखता है और उन्हें संतुलित तरीके से जीवन जीने के लिए प्रेरित करता है। लोक-संचार उपभोक्तावाद का प्रभावी प्रतिकार है और इसलिए वह शांति को बनाए रखने मे सहयोग करता है। इसके अतिरिक्त लोक संचार माध्यम हास्य-व्यंग्य की उपस्थिति के कारण व्यवस्था के लिए सेफ्टी-वॉल्व का भी काम करते हैं। यह व्यवस्था को वैधता प्रदान करते हैं, जिससे संघर्ष की संभावनाएं कम होती हैं। उपरोक्त विश्लेषण यह साबित करता है कि लोक संचार माध्यम शांति-निर्माण और संघर्ष-समाधान की प्रक्रिया के साथ गहराई के साथ सम्बंध रखता है। इससे स्पष्ट होता है कि सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं का समाधान परम्परागत सांस्कृतिक और संचारीय माध्यमों से किया जा सकता है[6]।

जम्मू-कश्मीर की लोक संचार परम्परा: भाण्ड-पाथेर और संघर्ष-समाधान

जम्मू-कश्मीर में लड़ी शाह, रऊफ, भाण्ड-पाथेर और जागरण जैसी अनेक लोक संचार परम्पराएं हैं। इनमें से भाण्ड-पाथेर अपनी प्राचीनता, जीवंतता, सम्पूर्णता के कारण सर्वाधिक स्वीकृत है। जम्मू-कश्मीर के संदर्भ में भाण्ड-पाथेर की महत्ता इसलिए भी बढ़ जाती है, क्योंकि यह एक लोक नाट्य विधा है। यह एक स्थापित तथ्य है कि समस्त लोक संचार परम्पराओं में लोक-नाट्य विधा सबसे प्रभावी होती है। लोक नाट्य में लोककथा, लोकगीत, लोकनृत्य और लोकवाद्य जैसी लोक संचार की सभी धाराएं एक मंच पर आ जाती हैं। लोक नाट्य सभी लोक विधाओं का एक सम्पूर्ण पैकेज होता है, इसलिए जनमानस पर इसका प्रभाव भी दूरगामी और अमिट होता है। लोक नाट्य का कोई एक संवाद, कोई एक दृश्य व्यक्ति के व्यक्तित्व में इस तरह रच-बस जाता है कि वह जीवन भर उसकी निर्णयन प्रक्रिया को प्रभावित कर सकता है।

यह कार्य इसलिए भी और अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है, क्योंकि कश्मीर में लोक संचार परम्पराओं के विश्लेषणात्मक अध्ययन करने का कोई गंभीर प्रयास नहीं हुआ है और न ही शोधार्थियों द्वारा इसे अध्ययन के क्षेत्र के रूप में स्वीकार किया गया है। संघर्ष-समाधान और शांति-निर्माण में जम्मू-कश्मीर की लोक संचार परम्पराएं किस तरह सहायक हो सकती हैं, इसको लेकर अभी तक संभवतः कोई भी अकादमिक शोध कार्य नहीं हुआ है। जम्मू-कश्मीर में भाण्ड-पाथेर की भूमिका कैसे संघर्ष-समाधान और शांति-निर्माण में महत्वपूर्ण हो सकती है, इसका आकलन करने से पहले भाण्ड-पाथेर का परिचय आवश्यक है।

भाण्ड-पाथेरः एक परिचय

भाण्ड-पाथेर कश्मीर की एक प्राचीनतम और समृद्धतम लोक नाट्य परम्परा है। यह कश्मीर के इतिहास, परम्परा और मूल्यों का नाट्य रुपांतरण है। आज भी इसमें इतिहास और परम्पराओं को नाट्य रूप में परिवर्तित करने का सामर्थ्य बचा हुआ है। भाण्ड-पाथेर का पहला उल्लेख भरत मुनि के नाट्य शास्त्र में मिलता है (जीशा, 2013)। ऐसी मान्यता है कि भाण्ड-पाथेर शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत शब्द भाण और पात्र से हुई है। विद्वानों के एक अन्य समूह की मान्यता है कि भाण्ड शब्द भक्त शब्द से बना है, क्योंकि इसका मंचन भक्तों द्वारा मंदिरों में किया जाता था। इन विद्वानों के तर्क को इस तथ्य से मजबूती मिलती है कि आज भी भाण्ड-पाथेर के अभिनेताओं को भक्त या भगत कहा जाता है। कुछ अन्य विद्वानों की मान्यता है कि भाण्ड-पाथेर की उत्पत्ति भाण्ड-नाट्यम् से हुई है। भाण्ड-नाट्यम् का उल्लेख अभिनवगुप्त ने 'अभिनव भारती' में किया है। भाण्ड-पाथेर कहानी का नाट्य-रूप है। यह प्राचीन और समकालीन आख्यानों पर आधारित ऐसी नाट्य परम्परा है, जिसमें मुस्लिम कलाकार भी बढ़-चढ़कर हिस्सा लेते हैं। विसंगतियों और विडम्बनाओं पर चुटीले व्यंग्य इस लोक नाट्य की पहचान हैं। सबसे बड़ी बात यह कि सुखांत और बुराई पर अच्छाई की जीत की भारतीय परम्परा इस नाट्य के कथानकों में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है।

भाण्ड-पाथेर का मंचन खुले आसमान में किया जाता है। प्रायः चिनार वृक्षों के झुण्ड के बीच या मंदिर-प्रांगण या अन्य धार्मिक स्थलों के प्रांगणों में इसका मंचन होता रहा है। इसकी शुरुआत कारीदार नामक पात्र और नगाड़ा बजाने के साथ होती है। लोग कारीदार के चारों तरफ इकट्ठे होते हैं। इसके बाद सुरनई-वादक और ढोल-वादक का प्रवेश होता है। सबसे पहले मागुण नाम पात्र का प्रवेश होता है। मागुण बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न कलाकार होता है, गीत, संगीत और नृत्य में उसका अधिकार होता है। भाण्ड-पाथेर के निर्देशन का काम भी मागुण ही करता है। लकड़ी और एक छोटी कुल्हाड़ी उसकी पहचान होती है। इसके बाद विदूषकों का प्रवेश होता है, जिन्हें भाण्ड-पाथेर में मश्कारा कहा जाता है। भाण्ड-पाथेर गुरु-शिष्य परम्परा से संचालित होने वाला लोक नाट्य है। इसकी पहचान व्यवस्थागत-विकृतियों पर उसका सहज लेकिन तीक्ष्ण व्यंग्य है। प्रायः इसका मंचन कश्मीरी भाषा में होता है, लेकिन इसके साथ ही पहाड़ी, डोगरी, पंजाबी, हिन्दी भाषाओं में भी इसका अनुवाद होता है। सामान्य शब्दावली के बावजूद भाण्ड-पाथेर के शब्दों और मुहावरों में लल्लदे और नुंद ऋषि के उच्च आध्यात्मिक अनुभवों का आसानी से अनुभव किया जा सकता है।

भाण्ड-पाथेर के कलाकार अपनी कहानियों में समसामयिक यथार्थ को रोचक तरह से गुंथते हुए प्रभावी संदेश देने की कोशिश करते हैं। नाट्यशास्त्र में उल्लिखित भरत वाक्य की तरह ही भाण्ड-पाथेर के समापन के समय दुआ-ए-खैर के जरिये सबकी सुख-समृद्धि की कामना की जाती है। यह सुखान्त भारतीय चिंतन का अंतिम पड़ाव होता है। कश्मीर में यह मुख्यतः सामाजिक-सांस्कृतिक कार्यक्रमों और अनुष्ठानों से जुड़ा रहा है। पुरातात्विक और साहित्यिक साक्ष्य यही बताते हैं कि भगवान कृष्ण, भगवान-बुद्ध और अन्य देवताओं के अवतरण-दिवसों पर इन लोक नाट्यों का मंचन किया जाता था (जत्तो एवं लाल, 2016)।

12वीं शताब्दी के बाद कश्मीर को समय-समय पर विदेशी आक्रमण, बाढ़, अकाल, आगजनी, महामारी आदि उपद्रवों का सामना करना पड़ा, जिससे पुस्तकों, पाण्डुलिपियों और पटकथाओं का लोप हुआ। विदेशी आक्रमण और शासन के कारण कश्मीर में कला और

साहित्य को दुर्भाग्य के दिन देखने पड़े। इसके बावजूद लोकमन दूर-दराज के क्षेत्रों में भाण्ड-पाथेर के रूप में अपने अस्तित्व को बचाए रखने में सफल हुआ[7]। 14वीं शताब्दी में कश्मीर में मुस्लिम शासन के उभार के बाद शहरी क्षेत्रों में लोक कलाओं को गहरा आघात पहुंचाया गया। बदले सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश में शासकीय सहायता और जन-समर्थन के अभाव के कारण इन लोक-कलाओं की उपस्थिति ग्रामीण क्षेत्रों तक सिमटकर रह गई। भाण्ड-जशन जैसे लोक कला त्योहारों के कारण इनका अस्तित्व बचा रहा और ये लोगों का मनोरंजन करते रहे[8]। मध्य-एशियाई रुझान के कारण मुगल-शासकों ने लोक-कलाओं के संवर्द्धन के लिए कुछ खास नहीं किया। इसके बजाय उन्होंने सुलेख, शायरी और बगीचा निर्माण जैसी फारसी कला रूपों को आगे बढ़ाया। ग्रामीण क्षेत्रों में लोक-नाट्य परम्पराओं ने अपनी जड़ें गहरी कीं और इस तरह कश्मीरी लोक नाट्य भाण्ड-पाथेर अपने सबसे सशक्त स्वरूप में बचा रहा[9]।

कश्मीर के विगत समाज-शास्त्र और राज्यतंत्र-शास्त्र की दिशा और दशा में कश्मीर के भाण्ड-पाथेर, भाण्ड-पात्रता ने एक अमोघ शस्त्र और अभेद्य कवच का अनोखा ऐतिहासिक दायित्व निभाया है। कश्मीरी भाण्ड-पात्रता, भाण्ड-पाथेर के फलस्वरूप कश्मीरी भाषा में एक कटाक्ष पर मुहावरे का सशक्त प्रचलन रहा है- बाण्डवनोच् राज् मोच अर्थात, भाण्डों ने अपने स्वांगों की वेशभूषा पहनकर राजा के कुकृत्यों का परदा धीरे-धीरे और एक-एक करके उठाना शुरू किया और राजा ने अपने कुकृत्यों को देखकर वहीं दम तोड़ दिया (जत्तो एवं लाल, 2016)। भाण्ड किस तरह से राजनीतिक-व्यवस्था के मनोबल को प्रभावित करते थे, इसका सबसे बड़ा उदाहरण कश्मीर नरेश हर्षदेव के सदर्भ में देखने को मिलता है। कश्मीर नरेश हर्षदेव (1100 ईस्वी) की राजनीतिक पराजय से पहले ही भाण्डों ने उसके दुराचार के कारण उसकी नैतिकता के कपड़े उतार दिए थे- भाण्डैर्निवसनः कृतः (जत्तो एवं लाल, 2016)। इस उक्ति से यह स्पष्ट होता है कि राजनीतिक-व्यवस्था को वैधता प्रदान करने की दृष्टि से भाण्ड-पाथेर की महत्वपूर्ण भूमिका थी। छवि को जमीनी स्तर तक ले जाने में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका थी। मनोविश्लेषणात्मक मूल्यांकन से यह स्पष्ट होता है कि कश्मीर में भाण्ड-पाथेर के मंचीकरण की विधा एक मनो-सामाजिकता एवं राज्यतंत्रीय विषमता और विसंगति के सुधार, उद्धार और परित्राण में एक सशक्त शल्यकर्म के दस्तावेज जैसा रही है, जो आधुनिक प्रेस या मीडिया के अनुरूप अपने सामाजिक दायित्व का निर्वाह करने में जुटा था (जत्तो एवं लाल, 2016)।

भाण्ड-पाथेर के विविध-रूप

यद्यपि भाण्ड-पाथेर एक प्राचीन लोक नाट्य है, लेकिन समसामयिकता भी इसकी महत्वपूर्ण विशेषता है। यह ऐतिहासिक प्रवाह के विभिन्न पड़ावों को खुद में समाहित करता गया, इसलिए तथ्य और विषय-वस्तु के आधार पर इसके विविध-रूप सामने आते रहे। भाण्ड-पाथेर के विभिन्न रूपों में ऐतिहासिक कालक्रम को आसानी से महसूस किया जा सकता है। इसके कुछ प्रमुख रूप निम्नवत हैं।

दर्द-पाथेर

दर्द-पाथेर में अफगान और दर्द शासकों के समय को चित्रित किया जाता है। इसमें दर्द शासकों द्वारा उत्पीड़न, अय्याशी और कर-संग्रह में बरती जाने वाली क्रूरता मुख्य विषय होते हैं। इस पाथेर की एक मुख्य विशेषता स्थानीय लोगों द्वारा अपनी भाषा और भूमि के प्रति आकर्षण को दर्शाती है। प्रजा अपनी भाषा में बात करना चाहती है, लेकिन दर्द-शासक को उनकी भाषा समझ में नहीं आती, इस कारण कैसी स्थितियां उत्पन्न होती हैं और स्थानीय लोगों का अपनी भाषा के प्रति कैसा आग्रह होता है, इसका बड़े रोचक तरीके से चित्रांकन किया जाता है।

गोसाईं पाथेर

गोसाईं पाथेर कश्मीर की ऐतिहासिक यथार्थ को बहुत सक्षम तरीके से अभिव्यक्त करता है। गोसाई पाथेर में प्रत्यरिभिज्ञा दर्शन और त्रिक दर्शन का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। यह नाटक एक गोसाईं (साधु) और गोपाली की प्रसिद्ध कश्मीरी लोक कहानी पर आधारित होता है। इसमें त्याग की प्रतिष्ठा और चारित्रक श्रेष्ठता की तरफ लोगों का ध्यान आकर्षित किया जाता है।

शिकारगाह पाथेर

शिकारगाह पाथेर में प्रकृति-प्रेम को रेखांकित किया जाता है। इसमें जानवरों के मुखौटों का प्रयोग किया जाता है। यह शिकार के अभियान पर केन्द्रित होता है, जिसमें जानवरों के शिकार और जानवरों द्वारा उसकी प्रतिक्रिया को नाट्य प्रस्तुति की जाती है। शिकारगाह पाथेर मुगलकाल में शिकार की बढ़ती प्रवृत्ति के कारण उपजी करुणा की मार्मिक अभिव्यक्ति है। इसमें इस तथ्य का स्पष्ट रेखांकन किया गया है कि मनुष्य प्रकृति के साथ सामंजस्य बैठाकर ही संतुष्ट और सुखी जीवन जी सकता है।

राज-पाथेर

राज पाथेर भी कश्मीर में अफगान शासकों के कुशासन और शोषण की विषयवस्तु पर आधारित होते हैं। इसमें शासकों की लम्पट जीवनशैली, भ्रष्टाचार और पाखंड को उकेरा जाता है। इसमें शासक के दरबार में होने वाली न्याय प्रक्रिया को केन्द्र में रखकर कहानी आगे बढ़ती है। दरबारी शासक के सामने अपने मन-मुताबिक तरीके से मुकदमों को रखते हैं और शासक उनके जाल में फंसकर या अपनी सनक के अनुसार न्याय देता है। इस पाथेर में विदेशी शासन ने किस तरह से कश्मीरी संस्कृति को प्रभावित किया है, इसका रेखांकन किया गया है।

आरेम पाथेर

यह पाथेर खेती-किसानी की दुश्वारियों, अन्यायपूर्ण शासन-प्रणाली के कारण सम्बंधों में पैदा होने वाली जटिलता और शोषण के खिलाफ उठ खड़े होने की जरूरत पर केन्द्रित है। सब्जी उत्पादन करने वाले किसानों को आरेम कहा जाता है। इसमें दामाद अपनी ससुराल जाता है और वहां पर शासक के कहने पर उसके सास-ससुर उसे जबरन मजदूरी करने के लिए भेज देते हैं। यह बलात श्रम के अलावा लोगों द्वारा अन्याय के खिलाफ एकजुट होकर प्रतिकार न करने की मानसिकता पर भी प्रहार करता है।

वाताल पाथेर

वाताल पाथेर वचन भंग, अविश्वास और सामाजिक-सांस्कृतिक

प्रभावों को रेखांकित करता है। इसमें दो वाताल परिवारों की शादी का कथानक लिया जाता है। दोनों परिवार एक निश्चित दिन शादी के लिए तैयार होते हैं, लेकिन निर्धारित तिथि को जब बारात दुल्हन के घर पहुंचती है तो वधु पक्ष शादी से इनकार कर देता है। कश्मीरी मुहावरे वाताल बात वार का मतलब एक ऐसे व्यक्ति से होता है, जो अपनी बात का कोई मान नहीं रखता है।

बकरवाल पाथेर

यह पाथेर बकरवाल समुदाय की समस्याओं पर केन्द्रित होता है। दर्द पाथेर की तरह बकरवाल पाथेर में भी परिवेश की भाषा को बहुत संवेदनशीलता के साथ अभिव्यक्त किया जाता है। दर्द पाथेर की तरह इसमें भी व्यापारी लूटने के लिए स्थानीय भाषा को न जानने का बहाना करता है। इसमें इस बात को भी रेखांकित किया जाता है कि शब्दों का प्रयोग बहुत सजग होकर करना चाहिए, क्योंकि मिलते-जुलते शब्दों के कारण अनेक बाधाएं खड़ी हो जाती हैं।

अंग्रेज-पाथेर

यह अंग्रेजों के अत्याचार और शोषण के कथानक पर केन्द्रित होता है। यह पाथेर भी कश्मीरियों के अपनी भाषा के प्रति लगाव को दिखाता है। इसमें अंग्रेज अधिकारी विदूषक से अंग्रेजी में कुछ प्रश्न करता है, लेकिन विदूषक जानबूझकर अंग्रेजी न जानने का बहाना बनाकर उल्टे सीधे जवाब देता है। थक-हारकर अंग्रेज अधिकारी को कश्मीरी भाषा का सहारा लेना पड़ता है।

यह दुर्भाग्य है कि वर्तमान समय में लोग भाण्ड-पाथेर को लेकर उदासीनता बरत रहे हैं और कश्मीर के सामाजिक जीवन में इसकी प्रासंगिकता को लेकर कोई चिंता नहीं दिखाई पड़ती। लोक कलाओं के प्रति ऐसी उदासीनता है कि लोग अपनी जड़ों और परम्परा के स्रोतों के प्रति बेपरवाह हैं। भाण्ड-पाथेर के प्रति ऐसे दृष्टिकोण का एक प्रमुख कारण वर्तमान समय में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होने वाली अकादमिक हीनता है। वर्तमान समय में भाण्ड-पाथेर के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती आधुनिक संरचनाओं और संकल्पनाओं का समावेश है और यह काम अकादमिक, थियेटर जगत् से जुड़े लोग ही कर सकते हैं। बुद्धिजीवियों और अकादमिक जगत के लोगों द्वारा किए गए प्रयास भाण्ड-पाथेर को सांस्कृतिक और अकादमिक सीमांतता से बाहर निकालकर सामाजिक, पांथिक और राजनीतिक टिप्पणी करने वाले बौद्धिक माध्यम के रूप में स्थापित कर सकते हैं (निसार, 2018)।

भाण्ड-पाथेर की शांति-मणि तथा संघर्ष-समाधान में भूमिका

भाण्ड-पाथेर की संरचना और स्वरूपों को देखते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि इसमें जम्मू-कश्मीर के ऐतिहासिक और भौगोलिक यथार्थ का हर पड़ाव समाहित है। इस कारण, पहचान से संबंधित प्रश्न हों, या दुष्प्रचार अभियानों को कुंद करने का मामला, विकास-प्रक्रिया को आम जनता तक पहुंचाने की बात हो या भाषाओं के संरक्षण का प्रश्न, भाण्ड-पाथेर हर जगह सहयोगी साबित हो सकता है। इन मुद्दों को हल करने में भाण्ड-पाथेर का उपयोग करके जम्मू-कश्मीर में शांति-निर्माण और संघर्ष-समाधान की प्रक्रिया को गति दी जा सकती है। यह सचमुच कश्मीर का वास्तविक चेहरा है। इसलिए भाण्ड-पाथेर जम्मू-कश्मीर की एकमात्र लोक संचार परम्परा है, जो वहां पर रहने वाले सभी समुदायों को कमोबेश सम्बोधित करने में सक्षम है। लोक नाट्य होना भाण्ड पाथेर की एक अन्य बड़ी विशेषता है क्योंकि नाट्य के पास सार्वभौमिक भाषा और अपील होती है। इसीलिए यह बाधाओं और सीमाओं का अतिक्रमण कर जाती है। भाण्ड-पाथेर का सांस्कृतिक कार्यक्रम समुदायों को एकता का पाठ पढ़ा सकता है (कौल, 2012)। भाण्ड-पाथेर की एक प्रमुख विशेषता इसकी भाषाई विविधता है। हालांकि कश्मीरी भाषा भाण्ड-पाथेर में नाट्य अभिव्यक्ति का प्रमुख माध्यम है, लेकिन इसके विविध रूपकथ्य, विषय-वस्तु, पात्र के अनुसार पंजाबी, डोगरी, उर्दू, पहाड़ी भाषाओं का भी उपयोग होता है (जत्तो एवं लाल, 2016)।

लोक माध्यम एक सामाजिक अंतःक्रिया का ऐसा मंच और माध्यम उपलब्ध कराते हैं, जिससे एकजुटता बनी रहती है, सर्वसम्मति पर पहुंचा जाता है और सांस्कृतिक-मूल्यों को मजबूती मिलती है[10]। अंतरवैयक्तिक, अंतरसामूहिक, बहुपक्षीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर तक के संघर्षों में संचार की भूमिका केन्द्रीय होती है[11]। किसी विषय के संदर्भ में हमारे सोचने और बातचीत करने के तरीके का प्रभाव उस विषय के सदर्भ में हमारे कार्यों को प्रभावित करते हैं[12]। इसलिए जम्मू-कश्मीर की सम्पूर्ण विरासत को स्वयं में समेटने वाले भाण्ड-पाथेर का उपयोग शांति-स्थापना के एक प्रभावी उपकरण के रूप में किया जाना चाहिए।

अभी तक भाण्ड-पाथेर का उपयोग सीमित मनोरंजन के लिए किया जाता रहा है। कुछ शासकों ने इसका उपयोग अपने निहित स्वार्थों को पूरा करने और अपनी लोकप्रियता बढ़ाने के लिए किया है[13]। अब समय इसका उपयोग शांति-निर्माण और संघर्ष-समाधान के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए किया जाना चाहिए।

निष्कर्ष

दुनिया के प्रत्येक हिस्से में लोक माध्यम मानवीय अनुभवों का ऐसा कर्मकाण्डीय रूप हैं, जहां पर एक समूह के सभी लोगों में अनुभवों और कार्यों को लेकर सहमति का एक न्यूनतम कार्यक्रम बन जाता है[14]। इसलिए लोक माध्यमों के स्वरूप और संरचना में ही शांति-निर्माण और संघर्ष-समाधान की प्रक्रिया समाहित होती है। एक विशाल सभ्यतागत अनुभव का सरस भण्डार होने के कारण भाण्ड-पाथेर में भी जम्मू-कश्मीर में शांति-निर्माण और संघर्ष-समाधान की प्रक्रिया को गति देने का पूरा सामर्थ्य है। निम्नलिखित सुझावों का समावेश कर भाण्ड-पाथेर की शांति-निर्माण और संघर्ष-समाधान की भूमिका को और मजबूती दी जा सकती है:

1. राजकीय आयोजनों में होने वाली सांस्कृतिक-संध्याओं में भाण्ड-पाथेर के मंचन को स्थान देने का प्रयास होना चाहिए। इससे भाण्ड-पाथेर के कलाकारों की आजीविका का स्रोत उपलब्ध हो सकेगा और उनका जीवन गरिमामय हो सकेगा।

2. त्योहारों, मेलों, सांस्कृतिक उत्सवों में भी भाण्ड-पाथेर के मंचन को शामिल करने के लिए पहल की जानी चाहिए।

3. भाण्ड-पाथेर के मंचन को आधुनिक-संचार माध्यमों से जोड़कर भी इसे एक बड़ा श्रोता वर्ग उपलब्ध कराया जा सकता है।

4. हायब्रिड-कम्यूनिकेशन (लोक और आधुनिक संचार माध्यमों के समन्वय) के जरिये नई पीढ़ी को भी इस लोकनाट्य परम्परा से जोड़ा जा सकता है।

5. राजकीय स्तर पर वार्षिक भाण्ड-पाथेर की विभिन्न मण्डलियों के लिए प्रतियोगिता का आयोजन किया जाना चाहिए।

6. भाण्ड-पाथेर के कलाकारों को वार्षिक स्तर पर पुरस्कार देने की व्यवस्था होनी चाहिए।

संदर्भ

कौल, ए. (2012, April 17). आर्ट एंड ट्रेडिशन फॉर पीस इन कश्मीर. *पीस इनसाइट*

जत्तो, एस. एवं, लाल, एस. (संपादक) (2016). *भांड पाथेर-द फॉल्क थियेटर ऑफ कश्मीर*. नई दिल्ली: आईजीएनसीए/बी.आर. पब्लिशिंग कॉरपोरेशन

जीशा, एम. (2013). *द परफोर्मेंस ऑफ नेशनलिज्म: इंडिया, पाकिस्तान एंड मेमोरी ऑफ पार्टिशन*. न्यूयॉर्क: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस

निसार, ए. (2018). कोशुर पाथेर: द फॉरगोटन फोल्क थियरेटर. जम्मू एवं कश्मीर सरकार

बोरोडिट्स्की, एल. (2001). डज लैंग्वेज शेप थोट्स? मैंडरिन एंड इंग्लिश स्पीकर्स कंसेप्शन ऑफ टाइम. *कॉगनिटिव साइकोलॉजी*, *43*(1), 1-22

नोट

1. Vansina, Jan. Oral tradition as History, James Currey, London, P.13.
2. Sapir-Whorf Hypothesis : A famous linguistic Hypothesis developed by Edward Sapir and Benjamin Whorf.
3. Professor Lera Boroditsky Of MIT in his famous Paper Linguistic Relativity.
4. IYIL2019-Idegenous Languages matter for Development, Peace-building and Reconciliation.
5. IYIL2019-Idegenous Languages matter for Development, Peace-building and Reconciliation.
6. UNESCO view on Community Media and Sustainability Retrieved from Community Media Sustainability (unesco.org) on 20 December 2020.
7. Mashesha, N., Folk Media as A Platform for Conflict Resolution : The case for Gedeo, Ethiopia, P.96.
8. Yashir, Bhavani. B., Contemporary Theatre of of Kashmir: Its evolution. Fellowship Thesis Summary, Retrieved from Theatre Kashmir: Fellowship Thesis - Summary (bbyasir.blogspot.com) on 4 January 2021.
9. Hassan, Kashmir under the Sultans, P.289.
10. Tadesse, Jaleta. A Contextual Study of Gujji Oromo Proverbs: Functions in focus, MA Thesis. Addis Ababa University.
11. Fisher, Caroline. J. Like it or Not……Culture Matter, Linking Culture to Bottom Line Business Performance, Employee Relation Today, 2000.
12. Karlberg, Michael. The Power of discourse and Discourse of Power: Pursuing Peace through Discourse Intervention. International Journal of Peace Studies.
13. Ibid, P.25.
14. Wedekind, Klaus. Gedeo work songs in context of Ethiopian Revolution, Addis Ababa, SIL International, 1977

संचार माध्यम | खंड 32(2): 38-42, जुलाई-दिसंबर 2020
आईएसएसएन: 2321-2608

महामारी, साफ-सफाई, स्वास्थ्य जागरूकता और महात्मा गांधी

आशाराम खटीक[1] और डॉ. सुबोध कुमार[2]

सारांश

महात्मा गांधी जीवन के हर क्षेत्र में आज भी प्रासंगिक हैं। उनके विचार, अनुशासन और आदर्शों का अनुसरण करने वाला व्यक्ति सभी चुनौतियों पर आसानी से विजय पा सकता है। आज कोरोना महामारी ने एक बार फिर गांधीजी के आदर्शों पर चलने के लिए रास्ता दिखाया है। स्वच्छता और स्वास्थ्य जागरूकता को लेकर वर्षों पहले बापू के सिखाए रास्ते पर चलने के लिए आज हर इंसान संघर्ष करता नजर आ रहा है। प्रस्तुत शोध पत्र में इस तथ्य को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है कि किन-किन अवसरों पर गांधीजी ने सभी को स्वास्थ्य और स्वच्छता को साथ लेकर आगे बढ़ने का आह्वान किया है।

संकेत शब्द : स्वास्थ्य जागरूकता, महामारी, जीवन दर्शन, महात्मा गांधी

प्रस्तावना

महात्मा गांधी की 151वीं जयंती हाल ही में मनाई गई। गांधी जी का जीवन ही उनका संदेश है। यह संभव है कि मार्शल मैक्लूहान ने ''मीडियम इज द मैसेज'' की प्रेरणा भी गांधीजी से ही प्राप्त की हो। संप्रेषणीयता के स्तर पर गांधी ने स्वयं आचरण कर फिर सीख देने की सलाह दी और कोशिश भी यही की। उन्होंने कहा कि ''खुद वह बदलाव बनिए जो आप दुनिया में देखना चाहते हैं।'' सत्य के प्रयोग अथवा अपनी आत्मकथा में उन्होंने जो कुछ लिखा वह बिना सत्य को परमेश्वर माने लिख पाना असंभव होता। गांधी के व्यक्तित्व के विविध पहलुओं से भारतीय जनमानस आप्लावित रहा है। नवजीवन, यंग इंडिया, हरिजन जैसे पत्रों के वे संपादक-प्रकाशक रहे। उनके द्वारा हिन्द स्वराज, सत्य के प्रयोग आदि प्रख्यात पुस्तकों का अमर लेखन अविस्मरणीय है। दक्षिण अफ्रीका में उन्होंने 'द इंडियन ओपीनियन' अखबार का संपादन किया। गोयनका (2016) के अनुसार महात्मा गांधी की पत्रकारिता का मूलाधार राष्ट्रीयता थी। विज्ञापन के बहिष्कार के साथ वे प्रेस की स्वतंत्रता के समर्थक थे। उनमें संवाद और संप्रेषण की अद्भुत कला थी (गोयनका, (2016), पृष्ठ-13)।

गांधी ने स्वास्थ्य को लेकर जो काम किए थे, आज कोविड-19 महामारी के फैलते संक्रमण और इसके बढ़ते खतरे के परिप्रेक्ष्य में उनके जागरूकता संदेश सर्वथा प्रासंगिक नजर आ रहे हैं। उन्होंने अपने जीवन दर्शन में स्वच्छता, साफ-सफाई, आरोग्य अथवा स्वस्थ जीवन के विभिन्न बिन्दुओं पर आधारित व्यापक जन-जागरण के लिए जो संदेश दिए, आज वे महती आवश्यकता बन गए हैं। महात्मा गांधी न सिर्फ स्वतंत्रता सेनानी और सत्याग्रह आंदोलन के ही प्रणेता थे, बल्कि स्वास्थ्य और फिटनेस के भी वे बड़े सूत्रधार थे। स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क निवास कर सकता है, इसके वे पुरजोर समर्थक थे।

गांधीजी के लिए स्वच्छता

गांधीजी ने कहा था - ''जहां स्वच्छता, वहां प्रभुता।'' भारत से अस्पृश्यता का धब्बा हटाने की गांधीजी की इच्छा ने ही उन्हें शौचालयों और स्वच्छता पर काम करने के प्रति प्रेरित किया। उन्हें समाज की यह परंपरा कतई स्वीकार्य नहीं थी कि कुछ लोग साफ-सफाई करें और यही काम करने तथा करते रहने के लिए अभिशप्त हों। दक्षिण अफ्रीका में सत्य, अहिंसा की ही तरह उन्होंने स्वच्छता को तरजीह देते हुए स्वावलंबन, ग्राम-स्वराज, अपनी रसोई, अपने बर्तन व कपड़े आप धोना, चूल्हा-चौका, शारीरिक श्रम के लिए चरखा कताई आदि पर जोर दिया एवं यहां तक कि खुद अपना शौचालय भी वे स्वयं ही साफ करते थे। अपना काम अपने हाथ करना, स्वदेशी अपनाना, महिला और बच्चों के प्रति साफ-सफाई इत्यादि की व्यवस्था के गांधीजी सदैव पक्षधर रहे।

उन्होंने कहा था -''मैं किसी को भी अपने गंदे पैरों के साथ अपने मन से नहीं गुजरने दूंगा।'' स्वास्थ्य और सफाई पर ध्यान आकृष्ट करते हुए उन्होंने अच्छी आदतों पर जोर दिया। अच्छी आदतों और बेहतर स्वास्थ्य या आरोग्य के गहरे सह-संबंध को समझाया। स्वच्छता एवं साफ-सफाई युक्त स्वास्थ्यप्रद जीवन जीने के लिए आवश्यक नैसर्गिक तत्व यथा प्रकाश, शुद्ध वायु, जल, पृथ्वी, पर्यावरण आदि हमारे मानवाधिकार भी हैं। जगह-जगह पीक थूकने वालों पर प्रतिक्रिया देते हुए उन्होंने इस ओर भी इशारा किया कि किसी को भी आम रास्ते अथवा सड़क या सार्वजनिक स्थान पर न थूकना चाहिए, न ही अपनी नाक भी साफ करनी चाहिए। वे कहते थे कि आचरण यदि शुद्ध हो तो कोई भी समस्या लम्बे समय तक नहीं टिक सकती। स्वयं जिए जीवन से उन्होंने संदेश दिया कि अधिकारों का सच्चा स्रोत कर्तव्य ही हैं। उन्होंने कहा था कि कर्तव्यों के हिमालय से ही अधिकारों की गंगा बहती है। अधिकारों के प्रति हम प्रायः सजग होते हैं, पर कर्तव्यों के प्रति उदासीन। संविधान प्रदत्त अधिकार और कर्तव्य आजादी की मर्यादा हैं। अगर हम सभी अपने कर्तव्यों का ईमानदारी से निर्वहण करें तो हमें अधिकारों को खोजने बहुत दूर नहीं जाना पड़ेगा।

कुछ भारतीयों के पास मोबाइल फोन तो हैं, पर घर में शौचालय आज भी नहीं। यह लोगों की स्वच्छता के प्रति उदासीनता और जागरूकता की कमी को दर्शाता है। गांधीजी ने बचपन में ही भारतीयों में स्वच्छता के प्रति शिथिलता को महसूस कर लिया था। उन्होंने किसी भी सभ्य और

[1]शोध छात्र, पत्रकारिता विभाग, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान।
[2]सह-आचार्य, पत्रकारिता विभाग, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान। ईमेल : skumar@vmou.ac.in

विकसित समाज हेतु आदर्श एवं उच्च मानदंडों की आवश्यकता को अपरिहार्य समझा, जो कि पश्चिमी समाज में उनके पारंपरिक मेल-जोल व अनुभव से विकसित हुई। अपने दक्षिण अफ्रीका प्रवास के दिनों से लेकर भारत तक पूरे जीवनकाल में वे निरन्तर बिना थके स्वच्छता के प्रति लोगों को जागरूक करते रहे। उनके लिए स्वच्छता महत्वपूर्ण सामाजिक मुद्दा थी। 1895 में जब ब्रिटिश सरकार ने दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों और एशियाई व्यापारियों से उनके स्थानों को गंदा रखने के आधार पर भेदभाव किया था, तब से लेकर अपनी हत्या के एक दिन पहले 29 जनवरी, 1948 तक गांधीजी लगातार सफाई रखने पर जोर देते रहे।

लोक सेवक संघ के संविधान मसौदे में उन्होंने कार्यकर्ताओं के संबंध में जो लिखा था वह इस प्रकार है-''कार्यकर्ता को गांव की स्वच्छता और सफाई के बारे में जागरूक करना चाहिए और गांव में फैलने वाली बीमारियों को रोकने के लिए सभी जरूरी कदम उठाने चाहिए'' (गांधी वाङ्मय, पृ. 528)।

यह दिलचस्प है कि पहली बार गांधीजी ने स्वच्छता के मसले को दक्षिण अफ्रीका में भारतीय व्यापारियों को अपने-अपने व्यापार के स्थानों को साफ रखने के संबंध में उठाया था। भारतीय और एशियाई समुदाय की ओर से एक याचिकाकर्ता के रूप में दक्षिण अफ्रीका में दी गई एक याचिका में गांधीजी ने भारतीय व्यापारियों की स्वच्छता के प्रति उनके रवैये और व्यवहार का बचाव किया और उन्होंने सभी समुदायों से सफाई रखने के लिए लगातार अपील भी की। लार्ड रिपन द्वारा एक बार स्वच्छता के मामले में एक मुद्दे को एक याचिका में उठाया गया था। वर्ष 1881 के सम्मेलन का 14वां खंड जो मूल निवासियों के साथ-साथ सभी व्यक्तियों के हितों की समान रक्षा करता है, उसमें कहा गया था कि ट्रांसवाल में भारतीय स्वच्छता का पालन नहीं करते हैं और यह कुछ लोगों द्वारा गलत धारणा के आधार पर बनाया गया था (गांधी वाङ्मय, पृ. 204)।

गांधीजी यह स्थापित करना चाहते थे कि भारतीयों को व्यापार का लाइसेंस इसलिए नहीं दिया जा रहा था, क्योंकि वह अंग्रेज व्यापारियों को कड़ी टक्कर दे रहे थे। दूसरे, उन्होंने यह तर्क भी दिया कि भारतीय व्यापारी और अन्य लोग सफाई रखने के आदी होते हैं। उन्होंने म्यूनिसिपल डॉक्टर वियेले का उदाहरण दिया, जिन्होंने भारतीयों को सफाई के प्रति सचेत और जागरूक बताया था। डॉक्टर वियेले ने भारतीयों को धूल और लापरवाही से होने वाली बीमारियों से मुक्त बताया था (गांधी वाङ्मय, पृ. 215)।

भारत में स्वच्छता परिदृश्य अब भी निराशाजनक है। आज हमने गांधी को एक बार फिर विफल कर दिया है। गांधीजी ने समाज शास्त्र को समझा और स्वच्छता एवं इसके स्वास्थ्य के दृष्टिकोण व महत्व को भी समझा। पारंपरिक तौर पर सदियों से सफाई के काम में लगे लोगों को गरिमा प्रदान करने की कोशिश की। आजादी के बाद से हमने उनके अभियान को योजनाओं में बदल दिया। योजना को लक्ष्यों, ढांचों और संख्याओं तक सीमित कर दिया गया। हमने मौलिक ढांचे और प्रणाली से 'तंत्र' पर तो ध्यान दिया और उसे मजबूत भी किया लेकिन हम 'तत्व' को भूल गए जो व्यक्ति में मूल्य स्थापित करता है।

गांधीजी भारतीय लोगों की कम साफ-सफाई रखने की आदतों से भी परिचित थे। इसलिए उन्होंने वर्ष 1914 तक अपने 20 वर्षों के प्रवास के दौरान साफ-सफाई रखने पर विशेष बल दिया। गांधीजी इस बात को समझते थे कि किसी भी इलाके में बहुत अधिक भीड़भाड़ गंदगी की एक मुख्य वजह होती है। दक्षिण अफ्रीका के कुछ शहरों में विशेष इलाकों में भारतीय समुदाय के लोगों को पर्याप्त जगह और ढांचागत सुविधाएं मुहैया नहीं कराई गई थीं। गांधीजी मानते थे कि उचित स्थान, मूलभूत और ढांचागत सुविधाएं और स्वच्छ वातावरण उपलब्ध कराने की जिम्मेदारी नगरपालिका की है। गांधीजी ने इस संबंध में जोहांसबर्ग के चिकित्सा अधिकारी को एक पत्र भी लिखा था। उन्होंने पत्र में लिखा था-''मैं आपको भारतीयों के रहने वाले इलाकों की स्तब्ध कर देने वाली स्थिति के बारे में लिख रहा हूं। एक कमरे में कई लोग एक साथ इस तरह ठूंस कर रहते हैं कि उनके बारे में बताना भी मुश्किल है। इन इलाकों में सफाई सेवाएं अनियमित हैं और सफाई न रखने के संबंध में बहुत से निवासियों ने मेरे कार्यालय में शिकायत करके बताया है कि अब स्थिति पहले से भी बदतर हो गई है'' (गांधी वाङ्मय, पृ. 129)।

गांधीजी ने अपनी आत्मकथा *'सत्य के साथ मेरे प्रयोग'* में लिखा है, ''नगरपालिका की आपराधिक लापरवाही और सफाई के प्रति भारतीय निवासियों की अज्ञानता की वजह से कई इलाकों को पूरी तरह गंदा रखने की साजिश रची गई थी'' (आत्मकथा, पृ. 265)।

एक बार दक्षिण अफ्रीका में काले प्लेग का प्रकोप फैला। सौभाग्य से उसके लिए भारतीय जिम्मेदार नहीं थे। यह जोहांसबर्ग के आसपास के क्षेत्र में सोने की खदानों वाले इलाके में फैला था। गांधीजी ने अपनी पूरी शक्ति के साथ, स्वेच्छा से और स्वयं के जीवन को खतरे में डालकर रोगियों की सेवा की। नगर चिकित्सक और अधिकारियों ने गांधीजी की सेवाओं की बहुत तारीफ की। गांधीजी चाहते थे कि लोग उस घटना से सबक लें। उन्होंने एक जगह लिखा था- ''इस तरह के कठोर नियमों पर निस्संदेह हमें गुस्सा आता है, परंतु हमें इन नियमों को मानना चाहिए क्योंकि इससे हम गलती दोहराएंगे नहीं। हमें स्वच्छता और सफाई का मूल्य पता होना चाहिए...गंदगी को हमें अपने बीच से हटाना होगा...क्या स्वच्छता स्वयं ईनाम नहीं है?'' (गांधी वाङ्मय, पृ. 146)।

वास्तविकता यही है कि स्वच्छता के बारे में दक्षिण अफ्रीका और भारत दोनों ही जगह दी गई उनकी सलाह के 100 वर्षों बाद भी हमने एक समुदाय के रूप में प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की है। देश की राजधानी सहित कई भारतीय शहरों में मलेरिया, चिकनगुनिया, डेंगू और अन्य खतरनाक बीमारियां गंदगी की वजह से ही फैलती हैं। महानगरों और छोटे-बड़े शहरों की मलिन बस्तियां भी गंदगी की वजह से सुर्खियों में छाई रहती हैं। ऐसे में बापू याद आते हैं।

भारत में स्वच्छता: गांधीजी के प्रयास

भारत में गांधीजी ने गांव स्तर की स्वच्छता के संदर्भ में सार्वजनिक रूप से पहला भाषण 14 फरवरी, 1916 में मिशनरी सम्मेलन के दौरान दिया था। जहां उन्होंने कहा था ''देशी भाषाओं के माध्यम से शिक्षा की सभी शाखाओं में जो निर्देश दिए गए हैं, मैं स्पष्ट कहूंगा कि उन्हें आश्चर्यजनक रूप से समूह कहा जा सकता है,...गांव की स्वच्छता के सवाल को बहुत

पहले हल कर लिया जाना चाहिए था'' (गांधी वाङ्मय, पृ. 222)।

गांधीजी ने स्कूली और उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रमों में स्वच्छता को तुरंत शामिल करने की आवश्यकता पर जोर दिया था। 20 मार्च, 1916 को गुरुकुल कांगड़ी में दिए गए भाषण में उन्होंने कहा था- ''गुरुकुल के बच्चों के लिए स्वच्छता और सफाई के नियमों के ज्ञान के साथ ही उनका पालन करना भी प्रशिक्षण का एक अभिन्न हिस्सा होना चाहिए,... इन अदम्य स्वच्छता निरीक्षकों ने हमें लगातार चेतावनी दी कि स्वच्छता के संबंध में सब-कुछ ठीक नहीं है... मुझे लग रहा है कि स्वच्छता पर आगन्तुकों के लिए वार्षिक व्यावहारिक सबक देने के सुनहरे मौके को हमने खो दिया'' (गांधी वाङ्मय, पृ. 264)।

गांधीजी नील की खेती करने वाले किसानों की समस्याओं को सुलझाने के लिए चंपारण गए थे। जांच दल के रूप में तैनात एक गोपनीय पत्र में उन्होंने उस स्थिति में स्वच्छता की महत्ता को बताया। गांधीजी चाहते थे कि अंग्रेज प्रशासन उनके कार्यकताओं को स्वीकारें, ताकि वे समाज में शिक्षा और सफाई के कार्यों को भी शुरू कर सकें। इस बारे में उन्होंने कहा, ''क्योंकि वे गांवों में ही रहते हैं, इसलिए वे गांव के लड़के और लड़कियों को सिखा सकते हैं और वे स्वच्छता के बारे उन्हें जानकारी भी दे सकते हैं'' (गांधी वाङ्मय, पृ. 393)।

वर्ष 1920 में गांधीजी ने गुजरात विद्यापीठ की स्थापना की। यह विद्यापीठ आश्रम की जीवन पद्धति पर आधारित था, इसलिए वहां शिक्षकों, छात्रों और अन्य स्वयंसेवकों और कार्यकर्ताओं को प्रारंभ से ही स्वच्छता-कार्य में लगाया जाता था। यहां के रिहायशी क्वॉर्टरों, गलियों, कार्यालयों, कार्यस्थलों और परिसरों की सफाई दिनचर्या का हिस्सा था। गांधीजी यहां आने वाले हर नए व्यक्ति को इस संबंध में विशेष रूप से पढ़ाते थे। यह प्रथा आज भी कायम है।

लोग गांधीजी के साथ रहने की इच्छा जाहिर करते तो इस बारे में उनकी पहली शर्त होती थी कि आश्रम में रहने वालों को आश्रम की सफाई का काम करना होगा, जिसमें शौच का वैज्ञानिक निस्तारण करना भी शामिल है। गांधीजी ने रेलवे के तीसरी श्रेणी के डिब्बे में बैठकर देशभर में व्यापक दौरे किए थे। वे भारतीय रेलवे के तीसरे श्रेणी के डिब्बे की गंदगी से स्तब्ध और भयभीत थे। उन्होंने समाचार पत्रों को लिखे पत्र के माध्यम से इस ओर सबका ध्यान आकृष्ट किया था। 25 सितंबर, 1917 को लिखे अपने पत्र में उन्होंने लिखा, ''इस तरह की संकट की स्थिति में तो यात्री परिवहन को बंद कर देना चाहिए, लेकिन जिस तरह की गंदगी और स्थिति इन डिब्बों में है, उसे जारी नहीं रहने दिया जा सकता, क्योंकि वह हमारे स्वास्थ्य और नैतिकता को प्रभावित करती है। निश्चित तौर पर तीसरी श्रेणी के यात्री को जीवन की बुनियादी जरूरतें हासिल करने का अधिकार तो है ही। तीसरे दर्जे के यात्री की उपेक्षा कर हम लाखों लोगों को व्यवस्था, स्वच्छता, शालीन जीवन की शिक्षा देने, सादगी और स्वच्छता की आदतें विकसित करने का बेहतरीन मौका गवां रहे हैं'' (गांधी वाङ्मय, पृ. 264/550)।

गांधीजी ने धार्मिक स्थलों में फैली गंदगी की ओर भी ध्यान दिलाया था। 3 नवंबर, 1917 को गुजरात राजनीतिक सम्मेलन में उन्होंने कहा था, ''पवित्र तीर्थ स्थान डाकोर यहां से बहुत दूर नहीं है। मैं वहां गया था। वहां की पवित्रता की कोई सीमा नहीं है। मैं स्वयं को वैष्णव भक्त मानता हूं, इसलिए मैं डाकोर जी की स्थिति की विशेष रूप से आलोचना कर सकता हूं। उस स्थान पर गंदगी की ऐसी स्थिति है कि स्वच्छ वातावरण में रहने वाला कोई व्यक्ति वहां 24 घंटे तक भी नहीं ठहर सकता। तीर्थ यात्रियों ने वहां के टैंकरों और गलियों को प्रदूषित कर दिया है'' (गांधी वाङ्मय, पृ. 57)।

इसी तरह 'यंग इंडिया' में 3 फरवरी, 1927 को उन्होंने बिहार के पवित्र शहर गया की गंदगी के बारे में भी लिखा और यह इंगित किया कि उनकी हिन्दू आत्मा गया के गंदे नालों में फैली गंदगी और बदबू के खिलाफ बगावत करती है। पंचायतों की भूमिका के बारे में गांधीजी ने कहा था कि गांव में रहने वाले प्रत्येक बच्चे, पुरुष या स्त्री की प्राथमिक शिक्षा के लिए, घर-घर में चरखा पहुंचाने के लिए, संगठित रूप से सफाई और स्वच्छता के लिए पंचायत जिम्मेदार होनी चाहिए। 19 नवंबर, 1925 के 'यंग इंडिया' के एक अंक में गांधीजी ने भारत में स्वच्छता के बारे में अपने विचारों को लिखा। ''देश के अपने भ्रमण के दौरान मुझे सबसे ज्यादा तकलीफ गंदगी को देखकर हुई...इस संबंध में अपने आप से समझौता करना मेरी मजबूरी है'' (गांधी वाङ्मय, पृ. 461)। प्रांतीय कांग्रेस कमेटी के लिए मसौदा मॉडल नियमों में उन्होंने पंचायत की भूमिका को रेखांकित किया और लिखा, ''गांव में रहने वाले प्रत्येक बच्चे, पुरुष या स्त्री की प्राथमिक शिक्षा के लिए, घर-घर में चरखा पहुंचाने के लिए, संगठित रूप से सफाई और स्वच्छता के लिए पंचायत जिम्मेदार होनी चाहिए'' (गांधी वाङ्मय, पृ. 217)। यह दुःखद है कि हमने हार मान ली है। हमारे शिक्षा संस्थानों में सफाई कर्मचारी हैं। 'अधिकार' के प्रति सचेत कार्यकर्ता मानते हैं कि बचपन से ही स्वच्छता की आदतें सीखना बालश्रम है। अभी देर नहीं हुई है। नई तालीम को नए सिरे से शुरू करना होगा। ऐसी शिक्षा जिसे करके सीखा जाए वही उपयोगी होती है।

गांधी, स्वच्छता और सफाई कर्मी

गांधीजी को अस्पृश्यता से घृणा थी। बचपन से ही बालक मोहन के मन में अपनी मां के प्रति स्नेह सम्मान होने के बावजूद उस छोटी आयु में भी अपनी मां की उस बात का विरोध किया जब उनकी मां ने सफाई करने वाले कर्मचारी के न छूने और उससे दूर रहने के लिए कहा था। उन्हें दृढ़ विश्वास था कि स्वच्छता और सफाई प्रत्येक व्यक्ति का काम है। वह हाथ से मैला ढोने और किसी एक जाति के लोगों द्वारा ही सफाई करने की प्रथा को समाप्त करना चाहते थे (सुदर्शन, 2014)।

उन्होंने भारतीय समाज में सदियों से मौजूद अस्पृश्यता की कुरीति और जातीय प्रथा का विरोध किया। सफाई करने वाली जाति के लोगों को गांवों से बाहर रखा जाता था। उनकी बस्तियां बहुत ही खराब, मलिन और गंदगी से भरी हुई थीं। समाज में हेय समझे जाने, गरीबी और शिक्षा की कमी की वजह से वह ऐसी बुरी स्थिति में रहते थे। गांधीजी उन मलिन बस्तियों में गए और उन्होंने अस्पृश्य समझे जाने वाले लोगों को गले लगाया और अपने साथ गए अन्य नेताओं और कार्यकर्ताओं को भी वैसा करने के लिए कहा। गांधीजी चाहते थे कि इन लोगों की स्थिति सुधरे और वह भी समाज की मुख्यधारा में शामिल हों। उन्होंने पूरे भारत में छात्रों सहित सभी से ऐसी मलिन बस्तियों के लोगों की मदद करने के लिए कहा।

गांधीजी ने भारतीय समाज में सफाई करने और मैला ढोने वालों द्वारा किए जाने वाले अमानवीय कार्य पर तीखी टिप्पणी की और कहा, ''सफाई करने वाला समाज में सबसे नीचे खड़ा है, जबकि वह सबसे महत्वपूर्ण है। अपरिहार्य होने के नाते समाज में उसका सम्मान होना चाहिए। जो समाज की गंदगी साफ करता है उसका स्थान मां की तरह होता है'' (गांधी वाङ्मय, पृ. 109)।

स्वच्छता और सफाई के काम के विस्तार और स्वीकारने में सांस्कृतिक बाधाएं भी आड़े आती हैं। इस संबंध में दो विशेष बातें हैं। पहली धार्मिकता और धर्मपरायणता स्वच्छता और सफाई से ज्यादा महत्वपूर्ण है। जैसा कि पहले भी विदित है कि ऐसा भारत में ज्यादातर धार्मिक स्थलों पर देखा जाता है। गांवों, कस्बों और मंदिरों के आसपास अक्सर बहुत गंदगी दिखाई देती है। इन जगहों पर कूड़े के ढेर, खुले में शौच, प्रदूषण और दूषित पीने का पानी आम बात है। ग्रामीण इलाकों और छोटे शहरों में जाति से संबंधित भावनाएं अब भी प्रबल और प्रचलित हैं। बड़े शहरों में यह कम हैं। प्रदूषण की अवधारणा की सामाजिक स्वीकृति अभी जारी है, जिसमें स्वच्छता और सफाई की उपेक्षा होती रही है।

दूसरी बात, फैक्ट्रियां और वायरस के रूप में जीवों का अस्तित्व बहुत बढ़ गया है। ज्यादातर लोग जिन्होंने स्कूली शिक्षा हासिल की है और बुनियादी विज्ञान में पढ़ाई की है, उन्हें भी सूक्ष्म जीवों द्वारा संदूषण और प्रदूषण की अवधारणा की समझ नहीं है। शहरी पढ़े-लिखे लोगों में पीने के पानी का रख-रखाव अभी दोषपूर्ण और खतरनाक ढंग से किया जाता है। शहरों में जब आर.ओ. और जल शुद्धीकरण वाले यंत्र (वाटर प्यूरीफायर) नहीं थे तब लोग मटकों का पानी पीते थे, तब भी वह मटके से पानी निकालने के लिए करछुल या डोई का इस्तेमाल करते थे, जिससे पानी गंदा नहीं हो सके। पारंपरिक तौर पर सदियों से सफाई के काम में लगे लोगों को गरिमा प्रदान करने की कोशिश की। जो हमारी बाह्य स्वच्छता के लिए सत्य है, वही हमारी आंतरिक स्वच्छता के लिए भी सत्य है, अगर हमारा पड़ोसी आंतरिक रूप से अस्वच्छ है तो वह हमें भी प्रभावित करेगा।

हमें स्वच्छता के लिए ढांचागत सुविधाओं की जरूरत तो है, लेकिन हममें स्वच्छता के लिए बुनियादी मूल्यों आरोग्य तत्व (गांधीजी 'सैनिटेशन' शब्द के लिए 'आरोग्य' इस्तेमाल करते थे, क्योंकि भारतीय भाषाओं में सैनिटेशन के लिए कोई सटीक शब्द नहीं है) को भी स्थापित करने की जरूरत है। यह शिक्षा के माध्यम से ही लाया जा सकता है। गांधीजी ने स्वच्छता के प्रति शिक्षा और जागरूकता पर बल दिया था। भारत में आज हममें से अधिकतर को 'शौचालय प्रशिक्षण' और स्वच्छता और साफ-सफाई की शिक्षा की जरूरत है। गांधीजी इस मामले में हमारे पथ प्रदर्शक साबित हो सकते हैं।

पाश्चात्यानुकरण एवं आधुनिक जीवन शैली से जिन खाद्य सामग्रियों का वर्तमान में इस्तेमाल किया जा रहा है, उनसे मोटापे की बीमारी दिन-प्रतिदिन बढ़ रही है। विकसित देशों में भी यह एक संगीन समस्या बनकर उभर रही है। अमेरिका में 65 फीसदी से अधिक वयस्क मोटापे के मर्ज का शिकार हैं। भारत में स्वास्थ्य सेवाओं के संकट पर दृष्टिपात करें तो हम पाते हैं कि जीवन की सबसे महत्वपूर्ण चीज स्वास्थ्य सार्वजनिक विमर्श एवं लोकतांत्रिक राजनीति से लगभग गायब है। यद्यपि कोरोना जैसी भीषण महामारी ने विश्वस्तर पर स्वच्छता एवं स्वास्थ्य के प्रति लोगों को न केवल जागरूक किया, अपितु झकझोर कर रख छोड़ा है। ''यह खामोशी काबिले-बर्दाश्त होती यदि भारत की जनता स्वास्थ्य सेवाओं का भरपूर लाभ उठा रही होती। लेकिन सच कुछ और ही है। जीवन प्रत्याशा हो या बाल मृत्युदर, हैप्पीनेस इंडेक्स हो या प्रति व्यक्ति पोषण और आमदनी, भारत के स्वास्थ्य एवं पोषण संबंधी संकेतक काफी खराब हैं। वे गरीब हों या अमीर, तमाम देशों की तुलना में कतई बेहतर नहीं हैं। भारत में स्वास्थ्य संबंधी मामलों में जनता की भागीदारी की कमी ने भारत की स्वास्थ्य संबंधी समस्या में कम बड़ी भूमिका नहीं निभाई है'' (सेन और द्रेज, 2018)।

पिछले बीस वर्षों में भारत की जीडीपी में से स्वास्थ्य पर सार्वजनिक खर्च का अनुपात करीब एक प्रतिशत रहा है। भारत की स्वास्थ्य सेवाओं के प्रति सरकार की प्रतिबद्धता में कमी इस बात से भी नजर आती है कि देश में स्वास्थ्य पर कुल खर्च में से सार्वजनिक खर्च का अनुपात एक तिहाई से भी कम है, जबकि भारतीय स्वास्थ्य सेवा दुनिया की सबसे व्यावसायिक स्वास्थ्य सेवाओं में से एक है। साथ ही निजी स्वास्थ्य सेवाओं पर असामान्य निर्भरता की वजह देश में सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा सुविधाओं का सीमित होना है'' (सेन और द्रेज, 2018)।

यद्यपि यह सुखद है कि कोरोना महामारी के बाद अब मुख्यधारा की मीडिया में स्वास्थ्य सेवा के पहलुओं की अब तक होने वाली सीमित कवरेज वास्तव में व्यापक स्तर पर गंभीरता से होने लगी है। गांधीजी ने खान-पान के प्रति संयम, कम खाना-गर्म खाना, शारीरिक श्रम अर्थात् मेहनत करके भोजन ग्रहण करने आदि पर जोर दिया। वे स्वयं पहले चरखा कातते, फिर प्रार्थना करते और तब खाना लेते थे। स्वास्थ्यवर्धक, हल्के खान-पान में बकरी का दूध उन्हें अधिक प्रिय था। कुटीर उद्योगों के वे हमेशा हामी रहे। बकरी पालन को बढ़ावा देने के उद्देश्य से ही उन्होंने बकरी को गरीब की गाय की संज्ञा दी। सादा खाना, व्रत एवं साप्ताहिक उपवास पर उन्होंने बल दिया। सादगी की परिचायक खादी को वस्त्र नहीं विचारधारा मानकर उन्होंने विदेशी पॉलिस्टर कपड़ों का विरोध कर स्वदेशी आंदोलन का सूत्रपात किया। सप्ताह में एक दिन प्रायः सोमवार को मौन-दिवस एवं चिंतन मनन एवं ध्यान के साथ ही आरामदायक स्वदेशी सूती वस्त्र विन्यास धारण करने, नियमित स्नान, ब्रह्मचर्य का पालन, प्रातः जल्दी उठना तथा सायं जल्दी सोना, सूर्यास्त से पूर्व भोजन, वाणी पर संयम, क्रोध का त्याग, व्यसनों का त्यजन, स्थानीय भाषा में शिक्षण-अधिगम, छोटे बच्चों से स्नेह व प्रेम से तनाव व थकान दूर करने तथा उनके साथ खेलने आदि से प्रसन्नचित्त रहने के वे सदैव प्रबल समर्थक रहे।

गांधीजी ने जीवनपर्यन्त शाकाहारी रहने का व्रत लिया था और वे इस पर कायम रहे। उन्होंने दूसरों को भी खानपान में शाकाहार अपनाने की सलाह दी, जिससे स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े। शाकाहारी होने की धारणा उनमें उस दिन बलवती हुई, जब उन्होंने महान लेखक साल्ट की किताब 'प्ली फार वेजीटेरियनिज्म को पढ़ा (गांधी, 1927)।

मार्क लिंडले ने वर्ष 2017 में जलगांव में अपने एक व्याख्यान में कहा - बहुत कम लोगों को पता होगा कि गांधीजी जब 18 वर्ष के थे तो वे डॉक्टर बनकर समाज में जनसेवा करना चाहते थे, लेकिन अपने बड़े

भाई की सलाह के बाद वे ऐसा नहीं कर सके। 1908 में गांधीजी मेडिकल की पढ़ाई के लिए लंदन जाना चाहते थे और कानून की अपनी शिक्षा के साथ-साथ चिकित्सा सेवा का भी लाभ समाज को देना चाहते थे, पर ऐसा नहीं हो सका। लेकिन गांधीजी ने स्वास्थ्य जागरूकता को लेकर जीवनपर्यन्त समाज में एक नई लहर पैदा करने का निर्बाध कार्य किया (लिंडले, 2017)।

निष्कर्ष

महात्मा गांधी ने कहा था- ''अनुशासन ही जीवन को महान बनाता है।'' सत्य, अहिंसा के साथ ही बापू अभय, अपरिग्रह, वैराग्य, आत्मत्याग, अनुशासन, विश्वबंधुत्व, चरित्रवान आचरण, सर्वोदय, नारी सम्मान, स्वच्छता, आरोग्य, धर्मनिरपेक्षता, ग्राम-स्वराज, समानता, सहिष्णुता, सेवा-सुश्रूषा आदि नैतिक आदर्शों के पोषक रहे हैं। उनके द्वारा प्रदत्त ''सात पाप'' - सिद्धान्त विहीन राजनीति, श्रम विहीन संपत्ति, विवेकविहीन भोग-विलास, चरित्र विहीन शिक्षा, नैतिकता विहीन व्यापार, मानवीयता विहीन विज्ञान और त्याग विहीन पूजा के अनुकरणीय सूत्र सर्वत्र लोकप्रिय एवं प्रचलित हैं। महात्मा गांधी के बारे में महान वैज्ञानिक अल्बर्ट आइंस्टाइन ने यह कहा था कि आने वाली पीढ़ियां शायद ही यह विश्वास करें कि हाड़-मांस का कोई ऐसा इनसान भी धरती पर चला होगा। निश्चित रूप से यह विश्वास अवश्य किया जा सकता है। गांधी जीवन दर्शन और जीने की कला आज के परिप्रेक्ष्य में सर्वथा समीचीन है। कोरोना कालखंड के इस कठिन दौर में गांधीजी की स्वच्छता आदतों, स्वस्थ और आरोग्य जीवनशैली, स्वावलंबन, मितव्ययता, सादगी, स्वच्छता के मापदंड, अपनाए गए सिद्धान्त और उनके द्वारा प्रतिपादित प्रतिमान और उच्च आदर्शों व नैतिक मूल्यों को मद्देनजर रखते हुए यह प्रतीत होता है कि महात्मा गांधी का संपूर्ण जीवन-दर्शन वर्तमान परिस्थितियों में पूर्णतः प्रासंगिक है। कोरोना संकट के इस विकट दौर में वैश्विक परिदृश्य में आज जीवन बचाने की जद्दोजहद के बीच जिस तरह से स्वास्थ्य, सफाई और सादगी का विवेचन जीवन के हर पक्ष में किया जा रहा है, उसमें गांधी की स्वास्थ्य जागरूकता के पहलुओं का योगदान अमूल्य है, जिन्हें नजरअंदाज नहीं किया जा सकता।

संदर्भ

गांधी वाङ्मय, भाग-90, पृ. 528

गांधी वाङ्मय, भाग-01, पृ. 204

गांधी वाङ्मय, भाग-01, 1969 संस्करण, पृ. 215

गांधी वाङ्मय, भाग-4, पृ.129 स

गांधी वाङ्मय, भाग-04, पृ. 146

गांधी वाङ्मय, भाग-13, पृ. 222

गांधी वाङ्मय, भाग-13, पृ. 264

गांधी वाङ्मय, भाग-13, पृ. 393

गांधी वाङ्मय, भाग-13, पृ. 264 तथा पृ. 550

गांधी वाङ्मय, भाग-14, पृ. 57

गांधी वाङ्मय, भाग-28, पृ. 461

गांधी वाङ्मय, भाग-19, पृ. 217

गांधी वाङ्मय, भाग-54, पृ. 109 से

गांधी, एम.के. (1927). एन ऑटोबायोग्राफी ऑर द स्टोरी ऑफ माई एक्सपेरिमेंट विद ट्रूथ. अहमदाबाद: पब्लिशिंग हाउस

गोयनका, के.के. (2016). *नई दिल्ली: सस्ता साहित्य*, पृ. 13

ज्यां, द्रे. एवं सेन, ए. (2018). *भारत और उसके विरोधाभास*. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 156

ज्यां, द्रे. एवं सेन, ए. (2018). *भारत और उसके विरोधाभास*. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 157

लिंडले, एम. (2017). *गांधी ऑन हैल्थ*. जलगांव: गांधी रिसर्च फाउंडेशन

सुदर्शन, ए. (2014). गांधीजी और स्वच्छता. *योजना-अक्टूबर 2014*

संचार माध्यम | खंड 32(2): 43-49, जुलाई-दिसंबर 2020
आईएसएसएन: 2321-2608

पत्रकारों के लिए व्यावसायिक योग्यता : कितनी आवश्यक, कितनी व्यावहारिक

प्रो. (डॉ.) प्रमोद कुमार[1]

सारांश

किसी भी विधा के विस्तार के दौरान जहां अच्छाइयां विकसित होती हैं, वहीं कुछ बुराइयां भी स्वाभाविक रूप से पनपती हैं। मीडिया के साथ भी ऐसा ही हुआ है। भारत में मीडिया और मीडियाकर्मियों की साख के समक्ष एक गंभीर चुनौती पैदा हुई है और उसका कारण मीडिया में विकृत मानसिकता के लोगों का प्रवेश है। उनकी गलत करतूतों के कारण कभी-कभी तो सभी पत्रकारों को शर्मसार होना पड़ता है। इस कारण अब जनसामान्य भी सभी पत्रकारों को एक ही तराजू में तौलने लगा है। मीडिया में बढ़ती पेड न्यूज, फेक न्यूज तथा अन्य प्रकार की विसंगतियों के कारण वर्ष 2013 में भारतीय प्रेस परिषद ने एक समिति का गठन कर पत्रकारों के लिए उसी प्रकार व्यावसायिक योग्यता निर्धारित करने की कवायद प्रारंभ की थी, जिस प्रकार शिक्षकों, अधिवक्ताओं, अभियंताओं, प्राध्यापकों आदि के लिए है। हालांकि, वह समिति कुछ कारणों से अपनी रिपोर्ट नहीं दे पाई, परन्तु मीडिया में बढ़ती विसंगतियों पर पूर्व उपराष्ट्रपति मो. हामिद अंसारी और वर्तमान उपराष्ट्रपति श्री एम. वेंकैया नायडू द्वारा बार-बार चिंता व्यक्त करने के कारण मीडिया में इस मुद्दे पर बहस हुई। अध्ययन के दौरान अधिकतर मीडियाकर्मियों ने अपने लिए किसी भी प्रकार की योग्यता के निर्धारण का विरोध किया, परन्तु वरिष्ठ पत्रकारों का एक बड़ा वर्ग महसूस करता है कि मीडियाकर्मियों के लिए कुछ मापदंड अवश्य निर्धारित किए जाने चाहिए। साथ ही इस बात पर भी जोर दिया गया कि पत्रकारों की सेवा शर्तें जब तक ठीक नहीं होंगी, मीडिया में दिखाई दे रही विसंगतियां जारी रहेंगी। चूंकि अधिकतर विसंगतियों के लिए 'स्ट्रिंगर्स' को दोषी ठहराया जाता है, इसलिए उनकी सेवा शर्तों पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है। व्यावसायिक योग्यता के निर्धारण पर भले ही एकदम सहमति न बने, परन्तु पत्रकारिता में निरंतर बढ़ती विशेषज्ञता की जरूरत के मद्देनजर पत्रकारों के कौशल विकास हेतु मजबूत तंत्र विकसित करने की नितांत आवश्यकता है। यह काम मीडिया संस्थान, पत्रकार संगठन और सरकार मिलकर करें तो परिणाम असरकारी होगा।

संकेत शब्द : मीडिया में विसंगतियां, मीडिया की साख, पत्रकारों के लिए व्यावसायिक योग्यता, मीडिया मापदंड, स्ट्रिंगर, भारतीय प्रेस परिषद्

प्रस्तावना

भारतीय मीडिया में निरंतर बढ़ती विसंगतियों से चिंतित भारत के उपराष्ट्रपति श्री एम. वेंकैया नायडू ने वर्ष 2019 में दो बार इस बात को दोहराया कि अब मीडिया में पत्रकारों के लिए व्यावसायिक योग्यता व आचार संहिता निर्धारित करने का समय आ गया है। मीडिया की गिरती साख पर चिंता व्यक्त करते हुए उन्होंने 2 फरवरी, 2019 को कोल्लम प्रेस क्लब (केरल) के स्वर्ण जयंती समारोह में कहा - "मीडिया के मानकों और नैतिकता को बरकरार रखा जाना सुनिश्चित करने के लिए भावी पत्रकारों हेतु न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता और आचार संहिता बनाई जाए" (अय्यर, 2019)। श्री नायडू ने यही बात 16 नवम्बर, 2019 को भारतीय प्रेस परिषद् द्वारा नई दिल्ली में आयोजित राष्ट्रीय प्रेस दिवस के कार्यक्रम को संबोधित करते हुए भी दोहराई (पीटीआई, 2019)। इससे पहले वर्ष 2013 में पूर्व उपराष्ट्रपति मो. हामिद अंसारी और भारतीय प्रेस परिषद् के तत्कालीन अध्यक्ष न्यायमूर्ति मार्कंडेय काटजू वर्ष 2012 में इस पर चिंता व्यक्त कर चुके हैं। श्री काटजू ने कहा था कि पत्रकारिता की गुणवत्ता इसलिए गिर रही है, क्योंकि मीडिया में आज जो लोग आ रहे हैं वे या तो बहुत कम प्रशिक्षित हैं या बिना प्रशिक्षण के आ रहे हैं (पीटीआई, 2012)। उनका मानना था कि पत्रकारों के लिए उसी प्रकार का प्रशिक्षण अनिवार्य होना चाहिए जिस प्रकार वकालत करने वालों के लिए कानून की डिग्री तथा बार काउंसिल में पंजीकरण और चिकित्सा पेशे में प्रवेश हेतु एम.बी.बी.एस. की डिग्री के साथ मेडिकल काउंसिल में पंजीकरण आवश्यक है। इसे अमलीजामा पहनाने के लिए उन्होंने पत्रकारों के लिए न्यूनतम व्यावसायिक योग्यता निर्धारित करने की दृष्टि से संस्तुति करने हेतु 12 मार्च, 2013 को वरिष्ठ पत्रकार एवं भारतीय प्रेस परिषद् के तत्कालीन सदस्य श्रवण गर्ग के संयोजकत्व में एक तीन सदस्यीय समिति (प्रेस परिषद्, 2013, 12 मार्च) का गठन किया। उस समिति में दो अन्य सदस्य राजीव सबाडे और डॉ. उज्ज्वला बर्वे थे। इस संबंध में जारी प्रेस विज्ञप्ति में कहा गया कि समिति की रिपोर्ट प्राप्त होने के बाद उस रिपोर्ट को पूर्ण परिषद् के समक्ष रखा जाएगा और उसकी संस्तुति के बाद रिपोर्ट सरकार को इस अनुशंसा के साथ भेजी जाएगी कि वह इस संबंध में यथोचित कानून बनाए। प्रेस परिषद् द्वारा श्रवण गर्ग समिति के गठन के साथ ही मीडिया में इस मुद्दे पर व्यापक बहस शुरू हो हुई। मीडिया के एक वर्ग ने जहां समिति के गठन का स्वागत किया, वहीं विभिन्न पक्षों ने इसकी उपयोगिता, व्यावहारिकता और संवैधानिक पहलुओं को लेकर प्रश्न उठाये। इसके बाद अगले दिन यानी 13 मार्च, 2013 को प्रेस परिषद् ने समिति का क्षेत्राधिकार बढ़ाते हुए यह सिफारिश करने का काम भी सौंपा कि प्रेस परिषद् किस प्रकार पत्रकारिता प्रशिक्षण संस्थानों के कामकाज का नियमन कर सकती है, ताकि पत्रकारिता में उच्च मूल्यों को बनाये रखा जा सके (प्रेस परिषद्, 2013, 13 मार्च)। इसके बाद 11 अप्रैल, 2013 को प्रेस परिषद् की तरफ से एक और प्रेस विज्ञप्ति (प्रेस परिषद्, 2013, 11 अप्रैल) जारी हुई, जिसमें पत्रकारों की अर्हता हेतु जनसामान्य से सुझाव आमंत्रित किए गए। इस पृष्ठभूमि के साथ शोधकर्ता ने इस अध्ययन की शुरुआत वर्ष

[1]प्रोफेसर, अंग्रेजी पत्रकारिता विभाग, भारतीय जन संचार संस्थान, नई दिल्ली। ईमेल : drpk.iimc@gmail.com

2013 में की जो 2019 तक चली। मीडिया के विभिन्न पक्षों ने इस मुद्दे पर जो विचार व्यक्त किए उनसे निम्नलिखित मुद्दे उभरकर सामने आए:

1. पत्रकारों के लिए व्यावसायिक योग्यता की व्यावहारिकता,
2. मीडिया-संविधान-सरकार,
3. शहरी व ग्रामीण क्षेत्र की पत्रकारिता की चुनौतियां और परिस्थितियां,
4. प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की आवश्यकताओं में समानता एवं भिन्नता,
5. मीडिया में आई विसंगतियां: इनके लिए जिम्मेदार कौन?
6. पत्रकारिता शिक्षण संस्थानों की वर्तमान स्थिति,
7. मीडिया में स्वनियंत्रण,
8. मीडिया संस्थानों में पत्रकारों की सेवा शर्तें,
9. प्रतिभा को मीडिया के प्रति आकर्षित करने की आवश्यकता।

उपरोक्त सभी बिन्दुओं पर 87 पत्रकारों की राय प्राप्त कर उसका विश्लेषण किया गया।

शोध प्रविधि

सम्पूर्ण अध्ययन गुणात्मक डाटा पर आधारित है जो नई दिल्ली में दो चरणों में संग्रहित किया गया। प्रथम चरण में वर्ष 2013 में और दूसरे चरण में वर्ष 2019 में। देशभर के कुल 87 मीडियाकर्मियों से बात की गई, जिनमें सम्पादक, पूर्व सम्पादक, समाचार सम्पादक, संवादददाता, उपसम्पादक, अंशकालिक संवाददाता, स्ट्रिंगर, मीडिया घरानों के मालिक और पत्रकारिता विश्वविद्यालयों के कुलपति, पूर्व कुलपति, प्राध्यापक, विद्यार्थी, पत्रकार यूनियनों के पदाधिकारी आदि शामिल हैं। इनमें शहरी व ग्रामीण क्षेत्र के पत्रकारों के साथ महिला पत्रकार, प्रिंट, इलेक्ट्रॉनिक व वेब मीडिया के पत्रकार भी शामिल हैं। अधिसंख्य लोगों से प्रत्यक्ष मिलकर बात की गई है। जो लोग दिल्ली से बाहर के हैं उनसे ईमेल अथवा दूरभाष से सम्पर्क किया गया। इसके अलावा विभिन्न समाचार पत्रों में लेखकों, स्तम्भकारों, पत्रकारों आदि के जो बयान अथवा टिप्पणियां प्रकाशित हुईं उन्हें भी संकलित कर उनका विश्लेषण किया गया। इसके अलावा वर्ष 2019 में देश के दस वरिष्ठ पत्रकारों के साक्षात्कार किए गए। जिनमें शामिल हैं जयशंकर गुप्त, प्रो. के.जी. सुरेश, प्रो. गोविन्द सिंह, प्रो. बलदेवभाई शर्मा, विजयदत्त श्रीधर, प्रभाष झा, मनोहर सिंह, उमेश चतुर्वेदी, एम.एस. यादव और सर्जना शर्मा।

पत्रकारों के लिए व्यावसायिक योग्यता की व्यावहारिकता

इस बिन्दु पर प्रसार भारती बोर्ड के पूर्व अध्यक्ष और वरिष्ठ स्तम्भकार एम.वी. कामथ (कामथ, 2013) तथा वरिष्ठ पत्रकार वी. गंगाधर (गंगाधर, 2013) ने प्रेस परिषद् की पहल का समर्थन किया, हालांकि श्री कामथ ने माना कि पत्रकारिता के लिए उच्च शिक्षा से अधिक 'कॉमन सेंस' जरूरी है, फिर भी हल्के स्तर की रिपोर्टिंग का किसी भी प्रकार से समर्थन नहीं किया जा सकता। माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति प्रो. ब्रजकिशोर कुठियाला (कुठियाला, 2013) ने कहा कि पत्रकारिता सृजनात्मक कार्य है जो ज्ञान एवं अभ्यास पर आधारित है। इसलिए मीडिया में शैक्षिक योग्यता की अनिवार्यता कहीं नहीं है। मंगलायतन यूनिवर्सिटी (अलीगढ़) के तत्कालीन कुलपति श्री अच्युतानन्द मिश्र (मिश्र, 2013) की राय में संवेदना और नैतिकता पत्रकारिता के मूल तत्व हैं, जो वर्तमान तकनीक आधारित पत्रकारिता से धीरे-धीरे गायब होते जा रहे हैं। उन्होंने कहा कि "जिस तकनीकी ज्ञान की बात प्रेस परिषद् ने की वह ज्ञान तो पत्रकारों को होना ही चाहिए इसमें कोई समझौता नहीं हो सकता, लेकिन दुनिया की कोई शिक्षा व्यवस्था किसी पेशे की नैतिकता तय नहीं कर सकती। देश-दुनिया में इतने प्रशिक्षित चिकित्सक हैं, लेकिन बहुत से चोरी से मरीजों की किडनी व अन्य अंग निकालकर बेच रहे हैं।" 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के तत्कालीन कार्यकारी सम्पादक अरिन्दम सेनगुप्त और 'आउटलुक' के तत्कालीन सम्पादकीय निदेशक विनोद मेहता सहित कई वरिष्ठ पत्रकारों ने (झा, 2013) कहा कि पत्रकारिता 'क्लासरूम' में नहीं सिखाई जा सकती, यह काम करते हुए ही आती है। यही बात वरिष्ठ पत्रकार एच.के. दुआ (पर्कल, 2013) और 'द पायनियर' के सम्पादक चंदन मित्रा ने दोहराई। वरिष्ठ पत्रकार रामबहादुर राय (राय, 2013) ने कहा कि प्रेस परिषद् गैरजरूरी मुद्दा उठाकर एक अनावश्यक काम पर अपना ध्यान लगा रही है, जो काम उसे करना चाहिए उसकी तरफ उसका ध्यान कतई नहीं है। एनयूजे (आई) मीडिया संगठन के पूर्व राष्ट्रीय अध्यक्ष राजेन्द्र प्रभु ने इस विषय पर सम्पूर्णता में विचार करने की जरूरत बताई। उन्होंने कहा कि पत्रकारिता में ऐसे बहुत से मूर्धन्य सम्पादक हुए हैं, जिनकी स्कूली शिक्षा बहुत ज्यादा नहीं थी, लेकिन उनकी सोच, भाषा पर पकड़ अद्भुत थी। ऐसे ही एक सम्पादक थे एस. मुलगांवकर जो 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के सम्पादक बने (प्रभु, 2013)। वरिष्ठ पत्रकार डॉ. रवीन्द्र अग्रवाल (अग्रवाल, 2013) ने कहा कि पत्रकारिता ऐसी विधा है, जिसमें समाचार पर पकड़ के साथ-साथ किसी समाचार से जुडे विभिन्न पक्षों की समझ बहुत जरूरी है और यह सब नैसर्गिक देन है। 'क्लासरूम' में आप किसी विषय की जानकारी तो दे सकते हैं, परन्तु उस पर पकड़ पैदा नहीं कर सकते। पत्रकारिता की जो बारीकियां एक अखबारी संस्थान में प्रशिक्षण के दौरान प्राप्त होती हैं वे किसी शैक्षणिक संस्थान से प्राप्त नहीं होतीं। पश्चिमी उत्तर प्रदेश स्थित सहारनपुर के पत्रकार वीरेन्द्र आजम (आजम, 2013) का कहना है कि आज जिला और ग्रामीण स्तर पर ऐसे बहुत से लोग पत्रकारिता में आ गए हैं जिन्हें शब्दज्ञान भी नहीं है। 'दिल्ली आज तक' के दिल्ली में प्रतिनिधि एवं 'दिल्ली दर्पण टीवी' के प्रधान संपादक राजेन्द्र स्वामी (स्वामी, 2013) पत्रकारों के लिए 'क्वालीफिकेशन' से अधिक 'क्वालिटी' जरूरी मानते हैं।

उक्त सभी पक्षों की राय जानने के बाद कहा जा सकता है कि खबर की समझ एक नैसर्गिक देन है तथा समाचार लेखन व प्रस्तुतीकरण एक सृजनात्मक कार्य है। वरिष्ठ पत्रकारों के निर्देशन में काम करते समय इसमें निखार आता है। समाज में ऐसे सैंकड़ों प्रतिष्ठित पत्रकार हैं, जिन्होंने कभी कोई औपचारिक प्रोफेशनल डिग्री प्राप्त नहीं की, परन्तु वे आने वाली पीढ़ियों के लिए भी आदर्श बने रहेंगे। अतः पत्रकारिता के लिए किसी प्रोफेशनल डिग्री की अनिवार्यता नहीं होनी चाहिए, परन्तु आज के तकनीकी व विशेषज्ञता प्रधान युग की जटिलताओं को देखते हुए यह अवश्य कहा जा सकता है कि पत्रकारों को पत्रकारिता के कुछ विषयों जैसे

खेल, चिकित्सा व स्वास्थ्य, संसदीय रिपोर्टिंग, न्यायालय रिपोर्टिंग, विज्ञान, तकनीकी रिपोर्टिंग, आर्थिक रिपोर्टिंग आदि में विशेषज्ञता हासिल करनी चाहिए और इसके लिए विशेष प्रशिक्षण का प्रावधान होना चाहिए। इस दृष्टि से प्रोफेशनल डिग्री को अतिरिक्त योग्यता के रूप में लिया जाना चाहिए। विसंगतियों को रोकने के लिए कुछ मापदंड मीडिया स्वयं तय करे। सरकार यदि इसमें हस्तक्षेप करेगी तो वह फिर अपने हिसाब से नियमन करेगी।

मीडिया-संविधान-सरकार

प्रेस की जिस स्वतंत्रता की बात प्रायः की जाती है वह मात्र प्रेस की आजादी नहीं, बल्कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता है जो प्रत्येक भारतीय नागरिक को संविधान की धारा 19(1-ए) के तहत प्राप्त है। वरिष्ठ पत्रकार एवं प्रेस विधि के विशेषज्ञ डॉ. नन्दकिशोर त्रिखा का स्पष्ट कहना था कि "चिकित्सा व वकालत की तरह पत्रकारिता ऐसा पेशा नहीं है, जिसका नियमन किया जा सके। चिकित्सा, वकालत व अन्य पेशे संविधान की धारा 19(1-जी) के तहत आते हैं, जिन्हें सरकार अथवा किसी अन्य अधिकार प्राप्त एजेंसी 'रेगुलेट' कर सकती है। इन दोनों उपधाराओं में बहुत अंतर है। दूसरे पेशों के लिए कुछ शैक्षिक योग्यता निर्धारित की गई है, लेकिन मीडिया के लिए ऐसा कोई बंधन नहीं है। इसलिए कोई भी व्यक्ति लिख सकता है। उसके इस अधिकार को कोई छीन नहीं सकता अथवा किसी प्रकार की योग्यता का पैमाना तय कर उसे 'रेगुलेट' नहीं कर सकता। इसलिए देश में कोई भी पत्रकार हो सकता है, कोई भी लिख सकता है और कोई भी अखबार निकाल सकता है। अखबार निकालने के लिए उसका बस वयस्क और भारतीय नागरिक होना जरूरी है" (त्रिखा, 2013)। इस दृष्टि से देखें तो प्रेस परिषद् ने पत्रकारों के लिए शैक्षिक योग्यता निर्धारित करने हेतु जिस समिति का गठन किया वह असंवैधानिक कदम था।

शहरी व ग्रामीण क्षेत्र की पत्रकारिता की चुनौतियां व परिस्थितियां

तीन दशक पहले तक पत्रकारिता और पत्रकार देश-प्रदेश की राजधानियों व कुछ महानगरों तक ही सीमित थे। छोटे शहरों और गांव तक अखबार जाते तो थे, परन्तु वहां की खबरें अखबारों में बहुत कम छपती थीं, परन्तु आज स्थितियां बदल गई हैं। अब ज्यादातर अखबारों द्वारा जिला संस्करण प्रकाशित किये जा रहे हैं। इससे जहां पाठकों की संख्या बढ़ी है, वहीं बड़ी संख्या में शहरी व ग्रामीण पत्रकार भी उभरे हैं। ग्रामीण क्षेत्र के पत्रकारों को प्रायः ऐसी परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है, जिनकी कल्पना महानगर में बैठकर नहीं की जा सकती। उनसे यह अपेक्षा तो होती है कि वे अपने क्षेत्र की हर खबर देंगे, परन्तु छोटे शहरों व गांवों में सक्रिय माफिया से सुरक्षा का कोई इंतजाम उनके लिए नहीं है। विपरीत परिस्थितियों में प्रायः अखबार भी उनका साथ नहीं देते। ग्रामीण क्षेत्रों में एक समस्या यह भी है कि अखबार प्रबंधन अपने 'हॉकर' को ही समाचार भेजने की जिम्मेदारी सौंप देते हैं, जिसका दुष्परिणाम अखबार की गुणवत्ता पर तो पड़ता ही है साथ ही गांव में अयोग्य व्यक्ति भी पत्रकार माना जाने लगता है। प्रशासन भी प्रशिक्षित पत्रकार तथा 'हॉकर' से पत्रकार बने व्यक्ति में कोई अंतर न करके दोनों को एक ही तराजू पर तौलता है।

अध्ययन के दौरान शहरी व ग्रामीण क्षेत्रों के अधिकांश पत्रकारों ने वेतन विसंगति को लेकर प्रश्न खड़े किए। झारखंड के गढ़वा उपमंडल में 'सन्मार्ग' के प्रतिनिधि धीरेन्द्र चौबे का कहना है कि झारखंड के जिला व ब्लॉक स्तर पर 'हिन्दुस्तान', 'दैनिक जागरण' व 'दैनिक भास्कर' जैसे बड़े अखबार भी अपने संवाददाताओं को 1000 से 1500 रुपये प्रतिमाह वेतन देते हैं। और इससे भी शर्मनाक बात यह है कि इस वेतन का भुगतान भी छह-आठ महीने तक नहीं होता (चौबे, 2019)। अधिकांश पत्रकारों का कहना है कि ग्रामीण क्षेत्र में उनसे अपेक्षा तो 24 घंटे सतर्क रहने व काम करने की होती है, परन्तु जब बात परिवार का पेट भरने की आती है तो अखबार मालिक पैसा न होने का रोना रोने लगते हैं। यह रोना वे मीडिया घराने भी रोते हैं जो अपने शेयर होल्डरों के लिए बनाई गई 'बेलेंस शीट' में सालाना करोड़ों रुपये का मुनाफा दिखाते हैं। शहरी व ग्रामीण क्षेत्र में एक समस्या यह भी है कि सजायाफ्ता व अपराधी किस्म के लोग भी अखबार निकालते हैं और धौंस देकर वसूली करते हैं। प्रेस परिषद् को यदि पत्रकारिता के गिरते हुए स्तर और गुणवत्ता की वास्तव में चिंता है तो उसे सबसे पहले गांव-देहात के पत्रकारों की समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए, क्योंकि सबसे ज्यादा खबरें वहीं से आती हैं और 60 प्रतिशत पाठक भी इसी क्षेत्र में हैं। दूसरे, पत्रकारिता में जो विसंगतियां आजकल बताई जा रही हैं उनमें से अनेक उन क्षेत्रों में ही हैं। मीडिया ट्रेड यूनियन मूवमेंट के वरिष्ठ नेता एम.एस. यादव, 'देशबंधु' समाचार पत्र के कार्यकारी संपादक जयशंकर गुप्ता, 'हिन्दुस्तान' डिजिटल के संपादक प्रभाष झा, पीटीआई-भाषा के समाचार संपादक मनोहर सिंह, माधवराव सप्रे समाचार पत्र संग्रहालय, भोपाल के संस्थापक विजयदत्त श्रीधर, 'आकाशवाणी' में सलाहकार उमेश चतुर्वेदी सहित वरिष्ठ पत्रकारों का भी मानना है कि कस्बाई और ग्रामीण क्षेत्रों में काम करने वाले स्ट्रिंगर पूरे मीडिया की रीढ़ हैं, परन्तु वे ही सबसे अधिक शोषित हैं। इसलिए उनके लिए यदि सम्मानजनक वेतन का एक ढांचा विकसित कर उसे सख्ती से लागू किया जाता है तो मीडिया में दिखाई दे रही अनेक विसंगतियों पर लगाम लगेगी।

प्रिंट व इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की आवश्यकताओं में समानता एवं भिन्नता

कम्प्यूटर व इंटरनेट के आगमन के बाद पूरी दुनिया की जीवन शैली में एकाएक जो परिवर्तन आया, वैसा परिवर्तन मानव सभ्यता के इतिहास में कभी नहीं देखा गया। सूचना प्रौद्योगिकी तकनीक हर माह नए रूप में उभरकर सामने आ जाती है। पाठक जिन समाचारों के लिए अखबार का इंतजार हर सुबह करता था, अब वही समाचार उसके मोबाइल फोन पर हर क्षण उपलब्ध हैं। टेलीविजन मीडिया के वरिष्ठ पत्रकार उमेश चुतर्वेदी का मानना है - ''प्रिंट व इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में तकनीक एवं प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से काफी भिन्नताएं हैं, लेकिन गहराई से सोचें तो दोनों ही माध्यमों में एक बात समान है। वह है खबर की समझ और उसे प्रस्तुत करने की कला। यह वह चीज है जो सभी जनसंचार माध्यमों को एक साथ जोड़ देती है। लेकिन सभी माध्यमों में भिन्नता भी है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में जहां आपको चौबीसों घंटे काम करना पड़ता है, वहीं प्रिंट में उतनी भागमभाग नहीं है। इसलिए दोनों ही माध्यमों में काम करने की जरूरतें एवं व्यावहारिक दिक्कतें अलग-अलग हैं।'' चूंकि आजकल डिजिटल मीडिया का तेज गति से विस्तार हो रहा है इसलिए नई तकनीक से वाकिफ व्यक्ति ही वहां टिक सकते हैं। स्पष्ट है कि पत्रकारों के लिए नई तकनीक से अद्यतन रहना

बहुत आवश्यक है। यदि ऐसा न हुआ तो वे पिछड़ जाएंगे और मीडिया की गुणवत्ता भी प्रभावित होगी। इलेक्ट्रॉनिक और वेब मीडिया के लिए यह बात और भी अधिक आवश्यक है।

मीडिया में विसंगतियां : जिम्मेदार कौन?

मीडिया में दिखाई दे रही विसंगतियों के संबंध में अधिकांश पत्रकारों का मानना है कि विसंगतियों का पत्रकारों की प्रोफेशनल डिग्री से कोई लेना-देना नहीं है। इसका कारण ऐसे स्वार्थी तत्व हैं, जो निहित स्वार्थों की पूर्ति के लिए मीडिया का दुरुपयोग करते हैं। वरिष्ठ पत्रकार रामबहादुर राय (राय, 2019) का कहना है कि पत्रकारिता की वर्तमान पीढ़ी हर हिसाब से सक्षम है, लेकिन पत्रकारी घराने भ्रष्ट हो गए हैं। यदि पत्रकारी घराने ही भ्रष्ट हो गए हैं तो इसकी जानकारी एक मीडिया आयोग ही दे सकता है। वे कहते हैं, ''मैं पिछले कई सालों से मीडिया आयोग गठित करने की मांग कर रहा हूं जिससे मीडिया के 'ऑनरशिप पैटर्न' का पता चल सके और यह पता लगे कि कहां किसका पैसा लगा है? वह पैसा पत्रकारिता के लिए लगा है या फिर अन्य धंधे के लिए? इन बातों का जब अध्ययन होगा तभी पता चलेगा कि वस्तुस्थिति क्या है? जो श्री काटजू ने कहा वह आधा सच भी नहीं है। आज स्थिति यह है कि पत्रकार तो ईमानदार हैं, लेकिन मालिक ईमानदार नहीं हैं। अटल बिहारी वाजपेयी की सरकार में मीडिया में विदेशी पूंजी निवेश की अनुमति दी गई थी। इसलिए आज हमें यह जानने की भी जरूरत है कि किस घराने में कितनी विदेशी पूंजी लगी है और कौन-सा घराना चैनल भी चला रहा है, अखबार भी चला रहा है, रेडियो भी चला रहा है और वेब पोर्टल भी चला रहा है? इसके सम्बन्ध में तीन रिपोर्ट ट्राई ने भी दी हैं, जिनमें बहुत चौंकाने वाली जानकारी है।''

वरिष्ठ पत्रकार डॉ. रवीन्द्र अग्रवाल का मानना है कि पत्रकारिता में आ रही विसंगतियों के लिए स्वार्थी राजनेता और मीडिया मालिक जिम्मेदार हैं। वे कहते हैं - ''पेड न्यूज के लिए पत्रकारों को किसी भी स्तर पर जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता। इसके लिए वे लोग जवाबदेह हैं जो अपने लाभ के लिए खबरें छपवाते हैं या पैसों के लालच में खबरें छापते हैं। इस बीमारी का इलाज अनिवार्य रूप से किया जाना चाहिए। दरअसल सारी विकृतियां कुछ लोगों द्वारा अपनाई जा रही 'व्यावसायिक एप्रोच' के कारण हैं। ऐसे लोगों ने मीडिया को मोटर कार या प्रोपर्टी बेचने की तरह ही एक बिजनेस समझ लिया है।'' दिल्ली विश्वविद्यालय में मीडिया की प्राध्यापक डॉ. वर्तिका नन्दा, 'जनसत्ता' के मनोज मिश्र आदि वरिष्ठ पत्रकार भी मीडिया में विसंगतियों के लिए मालिकों व मैनेजरों को जिम्मेदार मानते हैं। इस संबंध में भास्कर मीडिया समूह के अध्यक्ष सुधीर अग्रवाल और नई दिल्ली से प्रकाशित 'पंजाब केसरी' के मालिक व सम्पादक अश्विनी कुमार से 2013 में बात करने का प्रयास किया गया, परन्तु उनकी ओर से कोई जवाब नहीं आया। नई दिल्ली से प्रकाशित 'वीर अर्जुन' के मालिक श्री अनिल नरेन्द्र (नरेन्द्र, 2013) ने मीडिया में विसंगतियों के तीन कारण बताए। एक, राजनीतिक दल जो पत्रकारों अथवा मीडिया संस्थानों से अपने राजनीतिक हितों के लिए गलत काम करवाते हैं। दो, पत्रकारिता व मीडिया संस्थानों के वे लोग जो पत्रकारिता को पैसा कमाने का माध्यम बनाकर इसे व्यवसाय की तरह चला रहे हैं। उनका मकसद शुद्ध लाभ कमाना है। उनके सामने न कोई मिशन है, न देश अथवा पत्रकारिता का कल्याण। तीन, मीडिया में आ रहे सिफारिशी लोग, जिनकी वजह से पूरी पत्रकारिता का माहौल खराब हो रहा है।

मीडिया में आई विसंगतियों पर पूर्व उपराष्ट्रपति मो. हामिद अंसारी भी काफी चिंतित दिखे। 15 जून, 2013 को अलीगढ़ में नेशनल यूनियन ऑफ जर्नलिस्ट्स (इंडिया) के द्विवार्षिक सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए उन्होंने विसंगतियों के लिए क्रॉस-मीडिया स्वामित्व, 'पेड न्यूज' को जिम्मेदार मानते हुए मीडिया आचार तथा प्रभावी एवं अर्थक्षम स्व-विनियामक तंत्र की आवश्यकता पर जोर दिया। साथ ही संपादकों तथा उनकी संपादकीय स्वतंत्रता की घटती भूमिका व मीडियाकर्मियों की कार्यदशाओं, उनकी सुरक्षा और संरक्षा में सुधार लाने की जरूरत बताई। उन्होंने कहा कि मीडिया के संबंध में भारतीय प्रशासनिक स्टाफ कालेज, ट्राई व संसदीय स्थायी समिति की रिपोर्टों से एक निराशाजनक तस्वीर सामने आई है। विज्ञापन से होने वाले राजस्व में कमी और सबसे कम मूल्य निर्धारण से छोटे और स्वतंत्र प्रकाशनों के बंद हो जाने के कारण खबरों की कवरेज की गुणवत्ता पर दबाव आया है। कहा जाता है कि भारत के लगभग सभी न्यूज चैनल नुकसान में चल रहे हैं तथा वे संदिग्ध क्रॉस होल्डिंग, काले धन के समिश्रण तथा अविश्वसनीय भारतीय और विदेशी निजी शेयर निवेशकों पर निर्भर हैं। इस परिदृश्य में मीडिया अनैतिक तौर-तरीकों को अपनाने के लिए लालायित हो जाता है। इससे पहले कि क्रॉस मीडिया स्वामित्व हमारे लोकतांत्रिक ढांचे के लिए खतरा बन जाए, इस पर ध्यान दिया जाए। श्री अंसारी ने मीडिया में आई विसंगतियों के जो कारण बताए, उनमें से किसी के लिए पत्रकारों की प्रोफेशनल डिग्री उत्तरदायी नहीं है। वरिष्ठ पत्रकार विजयदत्त श्रीधर, 'आकाशवाणी' में सलाहकार उमेश चतुर्वेदी, 'देशबंधु' के कार्यकारी संपादक जयशंकर गुप्ता भी मीडिया में आई विसंगतियों के लिए संपादकों व मीडिया मालिकों को दोषी मानते हैं।

पत्रकारिता शिक्षण संस्थानों की वर्तमान स्थिति

यह सर्वविदित तथ्य है कि पत्रकारिता प्रशिक्षण संस्थानों में आज मीडिया की मांग के अनुरूप योग्य स्नातक तैयार नहीं हो पा रहे हैं। वरिष्ठ स्तंभकार एम.वी. कामथ और वी. गंगाधर पत्रकारिता स्कूलों के स्तर में सुधार पर बहुत जोर देते हैं। 'द हूत' की सम्पादक सेवंति निनान पत्रकारिता प्रशिक्षण संस्थानों की दशा सुधारने पर जोर देती हैं। प्रेस परिषद् समिति के अध्यक्ष श्रवण गर्ग ने पत्रकारिता प्रशिक्षण प्रदान कर रहे संस्थानों के लिए कुछ चीजें तय करने की जरूरत पर जोर दिया। उन्होंने कहा कि देशभर में ऐसे संस्थानों की बाढ़ आ गई है, जो अपनी मर्जी से जो इच्छा हो वह पढ़ाते जा रहे हैं। इस पर अंकुश बहुत जरूरी है। एपीजे मीडिया इंस्टीट्यूट नई दिल्ली में प्रो. एमिरेटस श्री के.जी. सुरेश का मानना है कि सरकारी विश्वविद्यालयों सहित प्रत्येक मीडिया प्रशिक्षण संस्थान को कम-से-कम कुछ मूलभूत बातों का पालन करने के लिए बाध्य करना चाहिए। वे कहते हैं, ''मीडिया काउंसिल ऑफ इंडिया जैसी संस्था से मान्यता के बगैर कोई मीडिया संस्थान चलाने की अनुमति होनी ही नहीं चाहिए'' (सुरेश, 2019)। जम्मू केन्द्रीय विश्वविद्यालय में न्यू मीडिया विभाग के अध्यक्ष एवं डीन प्रो. गोविन्द सिंह मीडिया संस्थानों द्वारा संचालित पत्रकारिता प्रशिक्षण संस्थानों में गुणवत्ता के नितांत अभाव को लेकर बेहद चिंतित हैं और इसमें सुधार हेतु अविलंब कदम उठाने पर बल देते हैं (सिंह, 2019)।

केन्द्रीय विश्वविद्यालय हिमाचल प्रदेश में पत्रकारिता विभाग के प्रमुख प्रो. बलदेवभाई शर्मा मानते हैं कि विश्वविद्यालयों में अकादमिक पाठ्यक्रम को 'प्रेक्टिकल' बनाना बहुत जरूरी है (शर्मा, 2019)। स्पष्ट है कि देश में चल रहे पत्रकारिता प्रशिक्षण संस्थानों के नियमन की बहुत आवश्यकता है, ताकि उनकी गुणवत्ता में सुधार हो सके और मीडिया को अपनी जरूरत के अनुरूप योग्य व प्रशिक्षित पत्रकार व अन्य लोग मिल सकें।

मीडिया में स्वनियंत्रण

मीडिया किसके नियंत्रण में रहे या उसका नियमन कौन करे, यह प्रश्न अक्सर उठता है। इस प्रश्न पर न्यायालयों में भी विचार किया गया, परन्तु इसका उत्तर संविधान सभा की चर्चाओं और भारतीय संविधान में निहित है। प्रेस की जिस आजादी की बात प्रायः की जाती है मीडिया को यह ताकत भारतीय संविधान की धारा 19(1-ए) से मिली है। इस धारा के तहत अभिव्यक्ति की आजादी पर सरकार न तो किसी प्रकार का नियंत्रण कर सकती है और न ही इसका नियमन कर सकती है, परन्तु संविधान से मिली अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के इस अधिकार का यह तात्पर्य नहीं है कि किसी को स्वच्छंदता का अधिकार प्राप्त है। किसी चीज को अपनी तरह से व्यवस्थित रखने की हमें जो स्वतंत्रता प्राप्त है वह हमें स्वनियंत्रण का दायित्व सौंपती है। वरिष्ठ पत्रकार डॉ. नन्दकिशोर त्रिखा (त्रिखा, 2013) का कहना है कि सरकार जिन पेशों का नियमन कर सकती है वे संविधान की धारा 19(1-जी) के अन्तर्गत आते हैं। मीडिया स्वनियंत्रण के अन्तर्गत आता है और मीडिया स्वनियंत्रण के अपने दायित्व का निर्वाह करता भी रहा है। मीडिया की विसंगतियों को दूर करने के नाम पर प्रायः मीडिया को नियंत्रित करने के प्रयास किए जाते रहे हैं। फिर वह चाहे बिहार प्रेस बिल हो या आपातकाल। नेशनल यूनियन ऑफ जर्नलिस्ट्स (इंडिया) ने फरवरी 1981 में आगरा अधिवेशन के दौरान एक 'आगरा उद्घोषणा' स्वीकार की थी जो मीडिया में स्वनियंत्रण की दृष्टि से आज भी प्रासंगिक है। 'जनसत्ता' के वरिष्ठ पत्रकार मनोज मिश्र का कहना है कि पत्रकारिता में यदि कोई विकार है तो उसे ठीक करने का तरीका स्व-नियमन ही है। प्रो. बलदेवभाई शर्मा का मानना है - ''स्वनियमन बहुत अच्छी बात है। पर सवाल यह है कि स्वनियमन कौन करेगा? वह जो स्वयं ही राष्ट्रीय हितों के प्रति ईमानदार है या फिर वह जो अपनी सुविधा के अनुसार चीजों को परिभाषित करता है।'' कंफेडरेशन ऑफ न्यूजपेपर्स एंड न्यूज एजेंसी एम्पलाइज आर्गनाइजेशन्स के महासचिव एम.एस. यादव का मानना है कि स्वनियमन में मीडिया मालिकों की बड़ी भूमिका है। जब तक उनका सहयोग नहीं होगा तब तक स्थिति नहीं सुधरेगी। पत्रकार भी मालिकों के दबाव के कारण हिम्मत नहीं दिखा पाते (यादव, 2019)। स्पष्ट है कि भारतीय संविधान के तहत मीडिया को जो ताकत और अधिकार मिले हैं उन्हीं में स्वनियंत्रण की भावना अन्तर्निहित है और मीडिया अपने इस दायित्व को निभा रहा है, फिर भी यदि समय के साथ कोई विसंगति उत्पन्न हुई है तो उसके कारणों को खोजकर उसका समाधान किया जाना चाहिए।

मीडिया संस्थानों में पत्रकारों की सेवा शर्तें

आर्थिक उदारीकरण और सूचना प्रौद्योगिकी क्रान्ति के साथ देश में मीडिया का तेजी से विस्तार हुआ। उदारीकरण से पहले जहां समाजवाद की स्थापना और कर्मचारियों के हितों के संरक्षण की भावना महत्वपूर्ण थी, वहीं अब उद्योग हित महत्वपूर्ण हो गया है। इसी का दुष्परिणाम है कर्मचारियों को ठेके पर रखना। इसका असर मिशन समझे जाने वाली पत्रकारिता पर भी पड़ा। इससे पत्रकारों में असुरक्षा की भावना बढ़ रही है। अब अखबार मालिक अखबारों को तो एक 'टकसाल' की तरह देखते हैं, जबकि पत्रकारों से वे 'मिशन' की भावना से काम करने की अपेक्षा रखते हैं। अखबारों के प्रबंधन में एक प्रवृत्ति यह भी उभरी है कि पत्रकारों को कम से कम पैसे देकर या बिना पैसा दिए ही काम कराया जा सकता है, जबकि विज्ञापन व प्रसार विभागों के लिए उन्हें बाजार भाव पर प्रबंधक लेने में कोई गुरेज नहीं। वरिष्ठ पत्रकार श्री अच्युतानन्द मिश्र का कहना है कि पत्रकारों के लिए व्यावसायिक योग्यता की बात करते समय उन्हें शैक्षिक योग्यता के अनुसार वेतन भी मिले। कंफेडरेशन ऑफ न्यूजपेपर्स एंड न्यूज एजेंसी एम्पलाइज आर्गनाइजेशन्स के महासचिव एम.एस. यादव का मानना है कि पत्रकारों की सेवा शर्तो को सुधारने में वर्किंग जर्नलिस्ट्स एक्ट-1955 की बड़ी भूमिका रही है, परन्तु अब सरकार उसे भी समाप्त करने जा रही है। इससे स्थिति और भी बिगड़ेगी। झारखंड के गढ़वा उपमंडल में 'सन्मार्ग' के संवाददाता धीरेन्द्र चौबे, सहारनपुर के पत्रकार वीरेन्द्र आजम, 'दूरदर्शन' के समाचार वाचक अशोक श्रीवास्तव और 'दिल्ली आज तक' के राजेन्द्र स्वामी भी कहते हैं कि पत्रकार को कम-से-कम इतना पैसा तो दीजिए कि खबरों के लिए 24 घंटे चिंता करने पर उनका पेट भर जाए।

प्रतिभा को मीडिया के प्रति आकर्षित करने की आवश्यकता

किसी भी वस्तु को बेहतर व गुणवत्तापूर्ण बनाने के लिए प्रतिभाशाली लोगों की आवश्यकता होती है। फिर वह चाहे कम्प्यूटर हो, स्वास्थ्य सुधार के लिए दवाइयां हों या फिर अखबार व न्यूज चैनल। भव्य इमारत की रूपरेखा बनाने का कार्य कोई कुशल 'आर्किटेक्ट' ही कर सकता है और इस काम के लिए उसे पूरा पैसा दिया जाता है। लेकिन दुर्भाग्य की बात है कि अखबारों को बनाने के लिए कुशल पत्रकार तो सबको चाहिए, परन्तु वे कैसे मिलें और उन्हें कितना पैसा दिए जाए इस पर किसी का ध्यान नहीं। आजकल अखबारों में बिना पैसा दिये या कम पैसा देकर ज्यादा काम कराने की प्रवृत्ति दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। इसका दुष्प्रभाव यह हुआ कि मीडिया में प्रतिभावान लोग आने से कतराते हैं और जो मीडिया में हैं भी वे किसी भी प्रकार के प्रोत्साहन के अभाव में बेहतर काम नहीं कर पाते। इस सबका असर मीडिया की गुणवत्ता पर पड़ना स्वाभाविक है। यही कारण है कि आज देश के बड़े पत्रकारिता प्रशिक्षण संस्थानों में पढ़ने वाले विद्यार्थी भी मुख्यधारा की पत्रकारिता में आने के बजाय विज्ञापन अथवा जनसम्पर्क व सरकारी नौकरी में जाना अधिक पसंद करने लगे हैं। पिछले कुछ वर्षों में यह प्रवृत्ति अधिक पनपी है। मीडिया के स्तर को सुधारने की दृष्टि से वरिष्ठ पत्रकार डॉ. रवीन्द्र अग्रवाल का कहना है कि पत्रकारों को अपनी बीट से संबंधित विषयों का गहन प्रशिक्षण और आकर्षक वेतन दिया जाना जरूरी है। प्रो. के.जी. सुरेश इसके लिए दो काम करने की जरूरत महसूस करते हैं। वे कहते हैं, ''जिस प्रकार मेडिकल में प्रवेश के लिए नीट परीक्षा का प्रावधान है, उसी प्रकार मीडिया में प्रवेश के लिए भी अखिल भारतीय स्तर पर प्रवेश परीक्षा का प्रावधान करना चाहिए। साथ ही मीडिया शिक्षा को 'अफोर्डेबल' बनाना पडेगा। मीडिया की पढ़ाई करने वाले बच्चों के लिए वेतन का भी सम्मानजनक पैकेज

चाहिए। 'आकाशवाणी' में सलाहकार उमेश चतुर्वेदी कहते हैं कि जब तक मीडियाकर्मियों के लिए समान वेतन ढांचा नहीं होगा मीडिया की तरफ प्रतिभा आकर्षित नहीं होगी।

निष्कर्ष

फेक न्यूज, पेड न्यूज सहित अनेक विसंगतियों के कारण मीडिया की साख निरंतर गिर रही है। समाज में पत्रकारों के लिए अब वह सम्मान नहीं बचा है जो करीब तीन दशक पहले हुआ करता था। कभी पत्रकार सचिवालयों व मंत्रालयों में दलाली करते हुए तो कभी ब्लैकमेलिंग करते हुए पकड़े जाते हैं। कभी सेक्स रैकेट चलाते हुए तो कभी झूठे स्टिंग ऑपरेशन करते हुए पकड़े जाते हैं। कभी 'असहिष्णुता' के नाम पर पूरे देश में वबाल किया जाता है तो कभी टुकड़े-टुकड़े गैंग का साथ देकर देशविरोधी ताकतों को मजबूत किया जाता है। आजकल तो कपड़ों पर प्रेस करने वाला व्यक्ति भी अपने वाहन पर प्रेस लिखकर चलता है और जरूरत पडने पर पुलिसवालों को धौंसियाता भी है। ऐसी स्थिति में पत्रकारों के लिए न्यूनतम व्यावसायिक योग्यता निर्धारित करने हेतु भारतीय प्रेस परिषद् द्वारा 2013 में समिति गठित किए जाने के बाद मीडिया में इस मुद्दे पर जो चर्चा हुई उससे कम-से-कम यह तो स्पष्ट हुआ कि मीडिया की गिरती साख के लिए कौन जिम्मेदार है। करीब एक दशक में मीडिया के कामकाज के संदर्भ में तीन सरकारी समितियों ने अपनी रिपोर्टें दी हैं। पहली रिपोर्ट 2009 में 'भारत में क्रॉस-मीडिया स्वामित्व' पर भारतीय दूरसंचार नियामक प्राधिकरण (ट्राई) ने दी। सूचना प्रौद्योगिकी संबंधी संसदीय स्थायी समिति द्वारा 'पेड न्यूज' के संबंध में 6 मई, 2013 को एक रिपोर्ट तैयार की गई। इन रिपोर्टों में क्रॉस-मीडिया स्वामित्व, 'पेड न्यूज' की घटना, मीडिया आचार तथा प्रभावी एवं अर्थक्षम स्व-विनियामक तंत्र की आवश्यकता, संपादकों तथा उनकी संपादकीय स्वतंत्रता की घटती भूमिका व मीडियाकर्मियों की कार्य दशाओं, उनकी सुरक्षा और संरक्षा में सुधार लाने की आवश्यकता पर विस्तार से चर्चा की गई है। खबरों की गिरती गुणवत्ता और उस पर प्रबुद्ध वर्ग तथा मीडिया के विभिन्न पक्षों द्वारा व्यक्त की गई चिंताओं के संदर्भ में प्रतीत होता है कि समाज के लिए मीडिया की आवश्यकता और मीडिया व मीडियाकर्मियों की जरूरतों को देखते हुए इस महत्वपूर्ण विषय पर समग्रता में विचार किया जाए, ताकि समय रहते मीडिया में दिखाई दे रही विसंगतियों को दूर किया जा सके और मीडिया को भविष्य की चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार किया जा सके। पत्रकारों के लिए पहले से ही अनेक आचार संहिताएं बनी हुई हैं। और भी संहिताएं बना लेने से चीजें ठीक हो जाएंगी ऐसा मानना उचित नहीं है। जरूरत इस बात की है कि मीडिया में काम करने वाले पत्रकारों की कार्यदशाएं और उनके वेतनक्रम को जितना जल्दी हो सके ठीक किया जाए। जब तक मीडिया में प्रत्येक स्तर पर काम करने वाले पत्रकारों हेतु कम-से-कम इतने वेतन की गारंटी नहीं मिलेगी, जिसमें वे अपने परिवार का सम्मानजनक तरीके से पालन कर सकें, तब तक मीडिया में न तो कोई आचार संहिता कारगर साबित होगी और न ही किसी अन्य प्रकार का नियमन। मीडिया की तरफ प्रतिभाशाली लोग भी तब तक आकर्षित नहीं होंगे जब तक इस पेशे में सम्मानजनक वेतन की गारंटी नहीं होगी। मीडिया में यदि विसंगतियां बढ़ी हैं तो उसका एक प्रमुख कारण यह भी है कि यहां साफ-सुथरे और प्रतिभाशाली लोगों का आना कम हुआ है। जैसे ही अच्छे लोगों की संख्या बढ़ेगी वैसे ही बेपटरी होती चीजें फिर से पटरी पर लौटने लगेंगी।

संदर्भ

अग्रवाल, आर. (2013, जुलाई 20). पूर्व एसोसिएट एडिटर, दैनिक जागरण, नई दिल्ली में साक्षात्कार।

अय्यर, एस. (2019, फरवरी 2). ग्रेट टू प्रेस फ्रीडम इन इंडिया एज वाइस प्रेसिडेंट वांट्स ए कोड ऑफ कंडक्ट. *बिजनेस इनसाइडर*. https:/k/kwww.businessinsider.in/kvice-president-venkaiah-naidu-says-indian-media-should-havea-code-of-conduct-and-it-may-hurt-press-freedom/karticleshow/k67809275.cms से पुन:प्राप्त

अंसारी, एच. (2013, 15 जून). भारत के उपराष्ट्रपति. अलीगढ़ में एन.यू.जे. (आई.) के द्विवार्षिक सम्मेलन के उद्घाटन सत्र में दिया गया भाषण।

आजम, वी. (2013, जुलाई 24). संवाददाता, नेशनल दुनिया, सहारनपुर, उत्तर प्रदेश. दूरभाष पर हुई बातचीत।

कामथ, एम.वी. (2013, मई 26). मीडियावॉच. *आर्गेनाइज़र, 2013*

कुठियाला, बी. (2013, जुलाई 13). कुलपति, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय, भोपाल. *ईमेल से प्राप्त टिप्पणी.*

गंगाधर, वी. (2013, मार्च 20). इंडियन जर्नलिज्म एट ग्राउंड जीरो. *द हिन्दू*. https:/k/kwww.thehindu.com/kopinion/kop-ed/kindian-journalism-at-ground-zero/karticle4526477.ece से पुनर्प्राप्त

गर्ग, एस. (2018, अप्रैल 12). प्रेस परिषद सदस्य, नई दिल्ली में बातचीत.

चतुर्वेदी, उ. (2019, दिसम्बर 8). सलाहकार, आकाशवाणी, नई दिल्ली. *साक्षात्कार*.

चौबे, डी. (2019, जुलाई 26). उपमंडल संवाददाता, 'सन्मार्ग', गढवा, झारखंड, दूरभाष पर बातचीत.

झा, पी. (2019, दिसम्बर 12). संपादक, हिन्दुस्तान डिजिटल. *साक्षात्कार*.

झा, पी. (2013, मार्च 13). काटजू प्रेस्क्रिप्शन फॉर जर्नलिस्टस ड्रॉज फायर. *द हिन्दू*. https:/k/kwww.thehindu.com/knews/knational/kkatjus-prescription-forjournalists-draws-fire/karticle4501862.ece से पुन:प्राप्त

त्रिखा, एन. (2013, जून 20). 'नवभारत टाइम्स' (लखनऊ) के पूर्व सम्पादक. नई दिल्ली में *साक्षात्कार*

पर्कल, पी. (2013, मार्च 18). इंडिया डिबेट्स मिनिमम क्वालिफिकेशन

फॉर जर्नलिस्ट्स. http://commonwealthjournalists.org/indiadebates-minimum-qualification-for-journalists/ से पुन:प्राप्त

पीटीआई. (2019, नवम्बर 16). टाइम फॉर मीडिया बॉडीज टू कम अप विद ए कोड ऑफ कंडक्ट फॉर जर्नलिस्ट्स: वैंकेया नायडू. द *इंडियन एक्सप्रेस*.https:/k/kwww.newindianexpress.com/knation/k2019/knov/k16/ktime-formedia-bodies-to-come-up-with-a-code-of-conduct-for-journalistsvenkaiah-naidu-2062723.html से पुन:प्राप्त

पीटीआई. (2012, नवम्बर 19). मार्कंडेय काटजू राइट्स टू आईएनएस एक्सप्रेसिंग रिग्रेट ऑवर रिमार्क्स. https:/k/keconomictimes.indiatimes.com/knews/ kpolitics-and-nation/kmarkandey-katju-writes-to-ins-expressingregret-over remarks/karticleshow/k17280694.cms से पुन:प्राप्त

प्रभु, आर. (2013, जून 23). पूर्व अध्यक्ष, नेशनल यूनियन ऑफ जर्नलिस्ट्स (इंडिया). नई दिल्ली में *साक्षात्कार*

प्रेस परिषद्. (2013, अप्रैल 11). *प्रेस प्रकाशन*. नई दिल्ली: भारतीय प्रेस परिषद्

प्रेस परिषद्. (2013, मार्च 11). भारतीय प्रेस परिषद् प्रेस विज्ञप्ति

प्रेस परिषद्. (2013, मार्च 13). भारतीय प्रेस परिषद् प्रेस विज्ञप्ति

मिश्र, ए. (2013, जुलाई 10). कुलपति, मंगलायतन विश्वविद्यालय, अलीगढ़, दूरभाष पर बातचीत

मिश्र, एम. (2013, जुलाई 21). प्रमुख संवाददाता, जनसत्ता, नई दिल्ली में *साक्षात्कार*

यादव, एम.एस. (2019, दिसम्बर 4). महासचिव, कंफेडरेशन ऑफ न्यूजपेपर्स एंड न्यूज एजेंसी एम्पलाइज आर्गेनाइजेशन्स, नई दिल्ली में *साक्षात्कार*

राय, आर बी.. (2019, जून 17). वरिष्ठ पत्रकार. नई दिल्ली में *साक्षात्कार*

श्रीधर, वी. (2019, दिसम्बर 7). संस्थापक, माधवराव सप्रे समाचार पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल. *साक्षात्कार*

सिंह, जी. (2019, नवम्बर 12). जम्मू केन्द्रीय विश्वविद्यालय में जनसंचार एवं न्यू मीडिया विभाग के अध्यक्ष. *साक्षात्कार*

सुरेश, के.जी. (2019, दिसंबर 2). प्रो. एमेरिटस, एपीजे मीडिया इंस्टीट्यूट, नई दिल्ली में *साक्षात्कार*

स्वामी, आर. (2013, जुलाई 22). स्ट्रिंगर, दिल्ली आजतक, पश्चिमी दिल्ली. नई दिल्ली में बातचीत

संचार माध्यम | खंड 32(2): 50-55, जुलाई-दिसंबर 2020
आईएसएसएन: 2321-2608

आयातित एवं बाजार के प्रभाव से ग्रसित स्वातंत्र्योत्तर भारतीय पत्रकारिता और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के प्रश्न का विरोधाभास: एक आलोचनात्मक विवेचन

डॉ. संजय वर्मा[1]

सारांश

अखबार, पत्रकार और पत्रकारिता तीनों ही समग्र रूप से एक-दूसरे से जुड़े हैं। पत्रकारिता का आधार नैतिकता है और इसी आधार पर स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान इसे मिशन माना गया। जनसंचार के माध्यमों से जनजागरण एवं जनआंदोलन का निर्माण आदिकाल से किया जा रहा है। आजादी के आंदोलन से लेकर लोकतंत्र के निर्माण में भारतीय प्रेस की भूमिका अतुलनीय रही है। वरिष्ठ पत्रकार प्रभाष जोशी ने अपने लेख 'काले पैसे की काली खबरें' में लिखा है कि भले ही इस देश की आधी आबादी आज भी पढ़ना-लिखना नहीं जानती हो, लेकिन अक्षर को ब्रह्म मानने की परंपरा यहां पुरानी और गहरी है; किन्तु भारत में अंग्रेजी पत्रकारिता की स्थापना और स्वातंत्र्योत्तर काल में पाश्चात्य मीडिया और वैश्वीकरण के प्रभाव में आने से पत्रकारिता के मूल्यों में आमूल चूल परिवर्तन हुआ। वैश्वीकरण के दौर में बाजार के प्रभाव से भारतीय पत्रकारिता, पत्रकार, लोकतंत्र और समाज के अन्य स्तंभ भी भ्रष्टाचार से ग्रसित हो गए। वरिष्ठ पत्रकार रामबहादुर राय ने अपने लेख 'ताकि करतूतें छिपी रहें' में लिखा है कि कोई भी ऐसा फोरम नहीं बचा है जिस पर खबरें बेचने और खरीदने के धंधे पर थू-थू नहीं हुई है। साफ है कि चौतरफा निन्दा से बचने का कोई उपाय उन लोगों को नहीं दिखता जो धंधे में अपना ईमान काला कर चुके हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में इसी भूमिका के आलोक में तथ्यात्मक और आलोचनात्मक विवेचन किया गया है।

संकेत शब्द : अखबार, पत्रकार, पत्रकारिता, संपादक, लोकतंत्र, नैतिकता, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, वैश्वीकरण, मीडिया, भ्रष्टाचार।

प्रस्तावना

अखबार, पत्रकार और पत्रकारिता तीनों ही एक दूसरे से परस्पर जुड़े हैं, परन्तु आकाशवाणी, एफ. एम. और दूरदर्शन जैसे दृश्य-श्रव्य माध्यमों के विस्तार के कारण अखबार के साथ-साथ पत्रकारिता के क्षेत्र का अनेक दिशाओं में विस्तार हुआ है। सोशल मीडिया और सूचना प्रौद्योगिकी के विभिन्न आयामों के विस्फोट से पत्रकारिता के विस्तार में आमूल चूल परिवर्तन हुआ है। जहां एक ओर पत्रकारिता की प्राथमिकताएं बदली हैं, वहीं दूसरी ओर अखबार से जुड़ी हुई अवधारणाएं भी। प्रारंभ में पत्रकारिता को एक मिशन माना जाता था, जिसमें व्यवसाय का पुट नहीं होता था। अकबर इलाहाबादी ने तलवार या तोप की जगह अखबार निकालने के बारे में कहा था:

> 'खींचो न कमानों को न तलवार निकालो।
>
> जब तोप मुकाबिल हो तो अखबार निकालो।।

अखबार निकालना या सत्य बोलना एक ही बात मानी जाती थी। सत्य बोलने व अखबार निकालने में एक जैसे ही खतरे होते हैं। अखबार एक ध्येय को लेकर पूरी आस्था और निष्ठा से निकाले जाते थे और इस सत्यपरायणता से जुड़े लोग इसमें निहित खतरे उठाने को तत्पर रहते थे।

लोकतंत्र में पत्रकारिता का उत्तरदायित्व बहुत बड़ा होता है। खासकर जब राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्र अनेकानेक बुराइयों से ग्रसित होने लगता है तब उत्तरादायित्व और भी बढ़ जाता है। स्वतंत्रता के बाद भारतीय पत्रकारिता में हो रहे बदलाव और लोकतंत्र तथा लोकतान्त्रिक मूल्यों पर पड़ रहे विपरीत प्रभाव की चर्चा करते हुए वरिष्ठ पत्रकार रामबहादुर राय (2010) ने अपनी सम्पादित पुस्तक 'काली ख़बरों की कहानी... रिपोर्ट जो दबा दी गई' में लिखते हैं, ''खबरों के धन्धे से लोकतंत्र पर खतरा है। पत्रकारिता लोकतंत्र की कोख से निकली है। यह भी कह सकते हैं कि भारत में पत्रकारिता ने लोकतंत्र को संवारा और सार्थक किया। जिस पत्रकारिता ने लोकतंत्र को उसके पैरों पर खड़ा किया, चलना सिखाया और आम आदमी को उसकी गरिमा दिलाई वह इस धंधे में पड़कर बीमार हो गई है। इस तरह बीमारी दोनों को लग गई है - लोकतंत्र और पत्रकारिता को।'' विश्वभर में पत्रकारों ने अपने उत्तरदायित्व का परिचय समय-समय पर दिया है और राजनैतिक क्षेत्र को अपनी कर्त्तव्यपरायणता का अहसास कराया है। अमेरिका के कुख्यात 'वाटरगेट' कांड में पत्रकारों का योगदान सबसे बड़ा था। यदि अमेरिकी पत्रकार वहां के सत्ताधीशों के सामने झुक जाते या प्रलोभनों के शिकार बन जाते तो तत्कालीन अमेरिकी राष्ट्रपति निक्सन और उसके सहयोगियों के कारनामे दुनिया के सामने कभी नहीं आते। इंग्लैंड के 'हेलन कीलर कांड' और अन्य भष्टाचार के मामले पत्रकारों के माध्यम से ही जनता के सामने आए थे। जापान में भी 'लाकहाई' और अन्य भ्रष्टाचारों का खुलासा करने में पत्रकारों ने अहम भूमिका निभाई। भारत में भी सरोकारपरक पत्रकारिता का स्वर्णिम इतिहास रहा है जिसकी तरफ इशारा करते हुए वरिष्ठ पत्रकार अरविंद मोहन (2009) ने अपनी पुस्तक 'मीडिया, शासन और बाजार' में लिखा है, ''भारतीय पत्रकारिता के कुल इतिहास पर गौर करें तो पाएंगे कि समाज की अनेक बुराइयों को सामने लाने का श्रेय पत्रकारों और पत्रकारिता को ही जाता है। हाल के वर्षों में यह क्रम बढ़ा है। आपातकाल की ज्यादतियों के किस्सों को छोड़ भी दें तो रक्षा सौदों की दलाली वाला तहलका, पेट्रोल पंपों के आबंटन का घोटाला, बिहार का चारा काण्ड, यूनिट ट्रस्ट का घोटाला, जैन

[1]सहायक प्राध्यापक, अंग्रेजी विभाग, किरोड़ीमल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली। ईमेल : sanmani97@hotmail.com.

हवाला कांड, केतन पारिख का फरेब, सांसदों की घूसगिरि काण्ड, बोफोर्स घोटाला, पनडुब्बी सौदे में गड़बड़, हजारों करोड़ के प्रतिभूति जैसे अनेक मामले पत्रकारिता के जरिए सामने आए हैं" (मोहन, 2009, पृ. 45)। स्पष्ट है कि पत्रकारिता का मूल दृष्टिकोण सत्य के अनुसंधान और उसकी स्थापना का ही रहा है। अरविंद मोहन (2009) फिर लिखते हैं - ''सच्चाई के एकदम या अधिकतम निकट आए बगैर पत्रकारिता हो ही नहीं सकती। सच्चाई खूबसूरत हो बदसूरत पत्रकारिता के लिए उसका मतलब नहीं है।" (मोहन, 2009, पृ. 15)।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध पत्र द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है, जिसमें साहित्यकारों और पत्रकारों द्वारा लिखित पुस्तकें और शोध पत्रों का अध्ययन एवं विश्लेषण किया गया है। इस पत्र के माध्यम से मीडिया के समाज विज्ञान का अध्ययन करने का प्रयास है जो वर्तमान संदर्भों में अत्यंत प्रासंगिक है। शोध पत्र में मीडिया के विभिन्न सरोकारों का आलोचनात्मक विवेचन द्वितीयक स्रोत एवं संदर्भों के आलोक में किया गया है।

भारतीय पत्रकारिता का स्वर्णिम इतिहास

भारत में भी अंग्रेजों के जमाने में पत्रकारिता का एक ओजस्वी स्वर था और कहा जाए तो एक संपूर्ण 'पर्व' लिखा गया। केसरी, अमृतबाजार पत्रिका, वंदेमातरम्, ज्ञानप्रकाश जैसे अनेकानेक समाचारपत्रों ने परतंत्रता के विरुद्ध जनमत जागरण और आंदोलन तैयार करने का कार्य जिम्मेदारी और साहस से किया। हमारी स्वतंत्रता के नायक, लोकमान्य तिलक, विपिनचन्द्र पाल, अरविंद घोष, महात्मा गांधी, महात्मा फुले, अम्बेडकर आदि सभी महापुरुषों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से जन जागरण का कार्य पत्रकारिता के माध्यम से ही किया। बंगाल विभाजन की क्रूर योजना के विरुद्ध 'बंगभंग आंदोलन' में 'हितवादी', 'डॉन', 'न्यू इंडिया', 'अमृतबाजार पत्रिका', 'संजीवनी', बंगाली इंडियन मिरर', 'वंदेमातरम्', 'केसरी' आदि दैनिक, साप्ताहिक और मासिक पत्रों ने जनमत जागृति का अभूतपूर्ण और अलौकिक कार्य किया। गुलामी के विरुद्ध असंतोष, स्वतंत्रता की तीव्र आकांक्षा, जन जागरण, सामाजिक उत्थान आदि सभी पहलुओं का प्रतिबिंब उस दौर की पत्रकारिता में दिखता है। स्वतंत्रता आंदोलन और उसके बाद राष्ट्र निर्माण में प्रेस की भूमिका का उल्लेख करते हुए वरिष्ठ पत्रकार प्रभाष जोशी (2010) ने अपने लेख 'काले पैसे की काली खबरें' में लिखा है, "पिछले बासठ साल से लोकतन्त्र को ठीक से चलाने और इसके पहले आजादी के आन्दोलन में हमारी प्रेस की भूमिका बड़ी बलिदानी, निर्माणकारी, निष्पक्ष और स्वतन्त्र रही है। राष्ट्र की स्वतन्त्रता और राष्ट्र के निर्माण में जैसा योगदान हमारी प्रेस ने किया है वैसा तो किसी भी विकसित लोकतान्त्रिक देश की प्रेस ने नहीं किया।"(मोहन, 2009, पृ. 133)।

बंगभंग आंदोलन के बाद गुलामी के काल में सभी स्वतंत्रता सेनानियों ने अनेक विचार जनता तक पहुंचाने के लिए विविध आंदोलनों के साथ पत्रकारिता का ही सहारा लिया था। लोकमान्य तिलक ने 'केसरी' और 'मराठा' के माध्यम से और महात्मा गांधी ने 'यंग इंडिया' के माध्यम से स्वतंत्रता की लौ जलाई एवं जन सामान्य तक पहुंचाई। महाराष्ट्र में आगरकर जी ने 'सुधारक' के माध्यम से और अंबेडकर ने 'प्रबुद्ध भारत' के माध्यम से सामाजिक सुधारों का प्रवाह जारी रखा था। गांधीजी ने 'हरिजन' के माध्यम से यह कार्य किया था। पूरे भारत में अनेक पत्रकारों ने जन जागरण करने में प्रभावी भूमिका निभाई थी। लोकमान्य तिलक जैसे कई अन्य महापुरुषों को उस महान कार्य हेतु वर्षों तक सजा भी भुगतनी पड़ी।

पत्रकारों द्वारा अपनी जान जोखिम में डालकर जन जागरण का जो महान कार्य किया गया उसी कारण से पत्रकारिता को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता से जोड़ा गया और इसकी रक्षा के लिए वैधानिक उपबंधों का प्रावधान संविधान एवं प्रेस कानूनों के जरिये किया गया। इस अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए जो पत्रकार आगे आए और जिन्होंने इसके लिए कष्ट सहे, वे पत्रकार भी समाज के नायक बने। इसलिए पत्रकारिता के क्षेत्र में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को एक प्रकार से पावन क्षेत्र माना गया और इसी पवित्रता को ध्यान में रखते हुए प्रेस की जनसेवा और नागरिकों के सूचना के अधिकार के दृष्टिगत प्रेस परिषद ने कहा, ''प्रेस परिषद ने टिप्पणी की कि प्रेस की सेवा एक तरह से जनसेवा होती है - वह लोगों को सूचित करने के अपने अधिकार का इस्तेमाल करता है, क्योंकि लोगों को जानने का अधिकार है। इस तरह, प्रेस जनविश्वास के प्रतिनिधि के रूप में काम करता है। लिहाजा, हर सम्भव सच्ची और सही सूचना देना उसका दायित्व है, खासतौर पर तब जब इस तरह की सूचनाओं को खबर के रूप में पेश किया जाता है। इस तरह की खबरें विचारों से भिन्न होती हैं। लेखक अपने विचार लेखों और सम्पादकीय के माध्यम से व्यक्त करते हैं।" (राय, 2010, पृ. 20)।

लेकिन स्वातंत्र्य प्राप्ति के बाद समाचारपत्रों का स्वरूप धीरे-धीरे बदलने लगा। पुराने अनुबंधों को किनारे कर दिया गया। जन शिक्षा, जन जागरण, जनसंस्कार सत्ताधारियों की मनमानी पर केन्द्रित हो गए। बदलते समय में पत्रकारिता का सरोकार नैतिक आदर्शों, तार्किक विचारों के समानान्तर अर्थ केन्द्रित होता गया है। ''पत्र-पत्रिका का प्रकाशन एक व्यापारिक कर्म है, जिसमें वैचारिक झुकाव, सामाजिक या धार्मिक प्राथमिकताएं और राजनैतिक आग्रह तभी तक स्वीकार्य हैं जब तक विचार और वित्त में टकराव न हो" (कौल, 2000)। पत्रकारों ने पत्रकारिता का कर्त्तव्यमार्ग छोड़कर सरकारी कृपा और आर्थिक उन्नति का मार्ग अपनाया। अनेक पत्र-पत्रिकाएं नैतिकता, ध्येयनिष्ठा, भारतीय जीवन मूल्य, समाज प्रबोधन आदि की लक्ष्मणरेखा से बहुत दूर खड़े दिखाई देते हैं। लोकतंत्र और मीडिया में फैलते भ्रष्टाचार पर राम बहादुर राय लिखते हैं - ''भारत और दुनिया के अन्य देशों के जनमीडिया में फैला भ्रष्टाचार उतना ही पुराना है जितना कि खुद मीडिया। यदि समाज में भ्रष्टाचार है, तो यह उम्मीद करना बेकार है कि मीडिया उससे मुक्त होगा।" (राय, 2010, पृ. 32)। वैधानिक दृष्टिकोण से नकारात्मक दृष्टिकोण को ज्यादा बढ़ावा मिल रहा है। इलेक्ट्रॉनिक माध्यम के विस्तार विशेषकर टी.वी के विस्तार से स्थिति और भयावह होती गई। चैबीस घंटे चलने वाले चैनलों और उनके कार्यक्रमों से सारा जीवन टी.वी. का गुलाम हुआ है। दर्शकों की, विशेषकर युवाओं की अभिरुचि बहुत तेजी से गिरने लगी है। पठन-पाठन की संस्कृति तो लगभग खत्म हो गई है। सोशल मीडिया और वेब पत्रकारिता से ऐसा

डर लगने लगा है। वरिष्ठ पत्रकार प्रभाष जोशी ने अपने लेख 'काले पैसे की काली खबरें' में भारतीय प्रेस, टीवी, में नैतिक मूल्यों के पतन की ओर इशारा करते हुए लिखा है, ''लेकिन सच्चाई यह है कि हमारी - राजनीति का जो भी पतन हुआ हो प्रेस का पतन भी कम दुखदायी और खतरनाक नहीं है। यहां मैं जान-बूझकर सिर्फ प्रेस के पतन की बात कर रहा हूं। मैं जानता हूं कि टीवी ने तो और भी गजब किया है और उसके पतन की चर्चा भी कोई कम जरूरी नहीं है। लेकिन जो टीवी आप देख रहे हैं वह देश में पिछली सदी के नब्बे के दशक में आया जब भारत समाजवाद और आजादी के आन्दोलन के मूल्य छोड़कर अमेरिका की चलायी नव उदार पूंजीवादी नीतियां अपना रहा था।'' (जोशी, 2010, पृ. 133)।

औपनिवेशिक मानसिकता और अंग्रेजी पत्रकारिता

भारतीय पत्रकारिता की दयनीय दशा में अंग्रेजी पत्रकारिता का आयातित स्वरूप जो पाश्चात्य मीडिया पर आधारित है, एक प्रमुख कारण है एवं भारतीय भाषाओं की पत्रकारिता का सूचना हेतु इन पर निर्भर होना भारतीय पत्रकारिता को दिशाहीन करता रहा है। सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अमेरिका एवं अन्य पाश्चात्य देशों में जो सूचना क्रांति हुई उससे छोटे, गरीब और विकासशील देशों की निर्भरता इन विकसित देशों पर बढ़ गई, क्योंकि उनके पास सूचना प्राप्त करने के साधन नहीं थे। अविकसित देशों के पास ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में हो रही प्रगति का व्यावहारिक स्तर पर लाभ उठाने की क्षमता नहीं है। इसलिए विकसित एवं साधन संपन्न देश तृतीय विश्व के देशों को उतनी ही सूचना देते हैं जितनी सम्पन्न देशों के अपने हितों के लिए जरूरी होती है। पाश्चात्य देशों की शोषण और साम्राज्यवादी मानसिकता का सूचना क्रांति के दुरुपयोग पर राम बहादुर राय लिखते हैं, ''भारत और दूसरी जगहों पर मीडिया उद्योग को विभिन्न कारणों से विनियमित करना बहुत मुश्किल हो गया है। इन कारणों में प्रौद्योगिकी का विकास, मीडिया समूहों का वैश्वीकरण और मीडिया संगठनों के काम-काज में समाचारों के कुछेक आपूर्तिकर्ताओं तथा सर्जकों (मसलन, जनसम्पर्क अधिकारियों, विज्ञापनदाताओं और पैरोकार समूहों) के दखल देने का रुझान शामिल है।'' (राय, 2010, पृ. 31)। पाश्चात्य मीडिया द्वारा समाचारों और घटनाओं की व्याख्या एवं विश्लेषण भी उसी प्रकार से किया जाता है जिससे साधन संपन्न देशों का हित सधता हो। पश्चिमी मीडिया अपने देश के हितों की रक्षा के लिए कार्य करता है एवं सूचना क्रांति का दुरुपयोग करता है। दुनिया का ऐसा अनुभव भी रहा है कि मुख्यधारा मीडिया का उपयोग एक ही समय में शक्तिशाली राष्ट्रों और संगठित आतंकवाद द्वारा किया गया है। ''आज का मीडिया सूचना के अधिकार का कई बार दुरुपयोग करता है। दुरुपयोग के अपने निहितार्थ और लाभ हैं। वह जहां एक ओर किसी के पक्ष में सूचनाएं दबा सकता है, वही उसमें अतिरंजता का बघार लगा सकता है। उसमें एक छिपी हुई हिंसा और दबा हुआ आतंकवाद, इन दोनों तत्वों का विकास हुआ। ...मीडिया का हाइजैक कई अदृश्य कारणों से होता है जिसे जनता नहीं जानती। शक्तिशाली राष्ट्र जहां हाइजैक में अव्वल हैं; वहीं शक्तिशाली आतंकवादी संगठन भी।'' (मंडलोई, 2006, पृ. 128-129)। ऐसे अनेक उदाहरण हैं जिसमें अमेरिकी एवं पाश्चात्य मीडिया ने अपनी विश्वसनीयता पर प्रश्न चिह्न लगाया है। चाहे वह कश्मीर का मुद्दा हो, पंजाब का आतंकवाद, इराक द्वारा कुवैत पर आक्रमण या इराक द्वारा रासायनिक हथियारों के संग्रह का झूठा मामला हो। पश्चिमी मीडिया की विश्वसनीयता संदिग्ध है और मानसिकता एशिया और अफ्रीका विरोधी है।

भारत में अंग्रेजी पत्रकारिता को पाश्चात्य हितों एवं चिंतन की रक्षा के लिए ही अंग्रेजों ने योजनाबद्ध तरीके से विकसित किया था। स्वतंत्रता के बाद, व्यापक संदर्भों में, अंग्रेजी पत्रकारिता भारतीय जमीन एवं सरोकारों से कटी हुई है। अंग्रेजी भाषा के समाचार पत्र बहुत सीमित हैं एवं उनकी सीमा यह है कि वे कुछ महानगरों में ही स्थित हैं। उनका भारतीय जनमानस पर कोई विशेष असर नहीं है। लेकिन इसके विपरीत उनका प्रशासकीय क्षेत्रों में व्यापक प्रभाव है, क्योंकि भारत का प्रशासकीय ढांचा भी अंग्रेजी विरासत की देन है। भारत के अंग्रेजी समाचार पत्र दिशा, दशा और तथ्यात्मक विश्लेषणों के लिए अभी तक भी प्रायः पाश्चात्य मीडिया पर ही निर्भर हैं। अंग्रेजी मीडिया भारत में एक खास वर्ग को ही प्रभावित करता है एवं उसका प्रभाव इतना व्यापक एवं गहरा है कि वह उस वर्ग के चिंतन, व्यवहार, सांस्कृतिक परिवेश की दशा भी तय करता है। अंग्रेजी मीडिया की हद में आने वाला यह वर्ग संख्या में बहुत छोटा है, लेकिन यही वर्ग नौकरशाही, व्यापार जगत, अर्थ जगत और तो और अब साहित्य व सांस्कृतिक जगत के समस्त क्षेत्रों को नियंत्रित करता है या नीति-निर्धारण करता है। यह वर्ग राजनीतिक सत्ता व्यवस्था का अनिवार्य अंग होता है और प्रायः उनके अनुसार संचालित होता है। ''इस अवस्था में संचार माध्यमों को उस पूरी मशीनरी के अंग के रूप में देखा जाता है जिसके जरिये एक अल्पसंख्यक वर्ग समाज पर शासन करता है। संचार का पहला उद्देश्य शासक समूह के निर्देशों, विचारों और दृष्टिकोणों को प्रसारित करना होता है। नीति के तहत वैकल्पिक सुझावों, विचारों और दृष्टिकोणों को छांट दिया जाता है। संचार माध्यमों पर एकाधिकार पूरी राजनीतिक व्यवस्था का अनिवार्य तत्व होता है।'' (रेमंड, 2000, पृ. 116)। साम्राज्यवादी शक्तियों की सोच एवं साजिश यह है कि भारत का शासनतंत्र उन लोगों के हाथों में रहे जिनके मूल्य, जीवन शैली, सांस्कृतिक जड़ें पश्चिमी भूमि में हों। अंग्रेजी भाषा का मीडिया, विशेषकर इसी अभिजात्य वर्ग के लिए एवं उसका प्रभुत्व बनाए रखने के लिए मीडिया सामग्री परोसता है और यह वर्ग उसकी बड़े चाव से जुगाली करता है। उसके हितों का संवर्धन एवं संरक्षण करता है।

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, मीडिया और बाजार

स्वतंत्रता के पूर्व और पश्चात् की पत्रकारिता की दशा एवं दिशा के अवलोकन से ज्ञात होता है कि जहां स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान पत्रकारिता एक मिशन और पावन कार्य था वहीं स्वातंत्र्योत्तर काल में व्यवसाय बन गया एवं धीरे-धीरे इसका स्वरूप विकृत होता चला गया। इस अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का पावन कार्य वैश्वीकरण के युग में बाजार के हाथों की कठपुतली बन गया। अखबार और पत्रकारिता की इस यात्रा में हुए बदलाव को 1975 के आपातकाल से समझा जा सकता है। 1975 में आपातकाल के दौरान भारत सरकार ने अखबारों पर सेंसरशिप लागू कर दी थी। अनेक अखबारों और पत्रकारों ने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर हुए इस कुठाराघात का विरोध किया और यातनाएं भी सहीं। वहीं दूसरी ओर अखबारों और पत्रकारों का एक ऐसा समूह भी था, जिन्होंने नई परिस्थिति को शीघ्र ही स्वीकार कर लिया और सरकार के सुर में सुर मिलाने लगे और ऐसा करने पर उनकी आत्मा पर जरा भी बोझ नहीं पड़ा। सरकार के समक्ष घुटने टेकने या सरकारी कृपा पाने के लिए लालायित ये पत्रकार या

अखबार समूह नामी-गिरामी और स्थापित थे। आजादी के बाद पहली बार जब समाचार पत्र और पत्रकारों की अभिव्यक्ति पर संकट आया और तलवार से मुकाबले की स्थिति पैदा हुई तो उन पत्रकारों ने तलवार के साथ खड़े होकर कलम का सौदा करने में जरा भी संकोच नहीं किया।

समाचार पत्र और पत्रकारिता की स्थिति का आकलन करने के लिए एक अन्य पहलू पर भी गौर करने की आवश्यकता है, जिसने पत्रकारिता को पूर्णरूपेण बाजार के हाथों में सौंप दिया। खबरों के चयन और स्वामित्व पर समाचार पत्र के मालिक, संपादक और पत्रकार के अधिकार और टकराव स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद बढ़ने लगे। खासकर उद्योग समूहों द्वारा संचालित जनसंचार माध्यमों में विशेषकर जहां मालिक और संपादक अलग-अलग हैं। ऐसी स्थिति में अखबार प्रेस के लिए नीति-निर्धारण कौन करेगा? मालिक या संपादक? यदि नीति-निर्धारक मालिक है तो संपादक का दायित्व रचनात्मक न रहकर प्रशासनात्मक ही हो जाता है। इससे संपादक की स्वतंत्रता गौण हो जाती है, क्योंकि वह अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता अखबार की न होकर बल्कि उसके मालिक की हो जाती है। भारत में बहुत से उद्योग समूह अपना समाचार पत्र या न्यूज चैनल चलाते हैं। ऐसे समाचार माध्यम मोटे तौर पर इन उद्योग समूहों के व्यावसायिक हितों की रक्षा करते हैं। कई ऐसे अवसर आते हैं जब संपादक का टकराव अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए सरकार से न होकर समाचार माध्यमों के मालिकों से होता है और ऐसे माध्यमों में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता परोक्ष रूप से उद्योग समूह के हितों के संवर्धन के लिए वरदान बन जाती है और पत्रकारिता की पावन पृष्ठिभूमि कलुषित हो जाती है। वैश्वीकरण के दौर में मीडिया के लोकतान्त्रिक मूल्यों और आर्थिक हितों के टकराव पर राम बहादुर राय ने अपनी सम्पादित पुस्तक में लिखा है, ''मीडिया संस्थानों को खासतौर पर दुविधाओं का सामना करना पड़ता है, क्योंकि एक तरफ वे लोकतन्त्र के महत्वपूर्ण स्तम्भ के रूप में जाने जाते हैं वहीं दूसरी तरफ व्यावसायिक प्रतिष्ठान के रूप में अधिकतम लाभ के जरिये बाजार में सफलता हासिल करने की कोशिश भी करते हैं।" (राय, 2010, पृ. 31)।

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए जब पत्रकारों और मालिकों में टकराव बढ़ा तब संपादक के पद को खत्म या गौण कर दिया गया। और ऐसे संस्थानों में पत्रकारों और संपादकों ने मालिकों से समझौता कर लिया। पत्रकार शेखर ने अपने लेख 'एक मुहिम अखबारी बाजीगरी के खिलाफ' में लिखा, ''कमोबेश यही सोच उन अखबारी संस्थानों में चोटी पर बैठे पत्रकारों की भी थी। ये वैसे पत्रकार हैं जिनकी उपयोगिता एक मालिक के लिए सम्पादक से ज्यादा एक प्रबन्धक की है।" (शेखर, 2010, पृ. 159)। पिछले कुछ दशकों में वैश्वीकरण के प्रभाव से देश के सांस्कृतिक, सामाजिक शैक्षिक और धार्मिक क्षेत्र पर भी बाजार ने कब्जा कर लिया है। इस प्रभाव के चलते अखबार, पत्रकार और पत्रकारिता तीनों ही बाजार के प्रभाव से ग्रसित होकर अपनी रचनात्मकता और नैतिकता खो चुके हैं। वैश्वीकरण के युग में बाजार के बढ़ते प्रभाव के बीच समाचार पत्रों और पत्रकारों ने समझौता कर जीने की कला सीख ली और नैतिकता एवं 'पत्रकारिता एक मिशन' की यात्रा का पटाक्षेप कर दिया। बाजार की चकाचौंध एवं मालिकों से मिलने वाले कमीशन के लालच में अब समाचार माध्यम एवं पत्रकार तोप या तलवार से मुकाबला नहीं करते और न ही यह अब उनका लक्ष्य है, बल्कि वे पाठक, श्रोता या ग्राहक की सुप्त इंद्रियों को जाग्रत करके उनमें अतृप्त महत्वाकांक्षाओं का ताना-बाना बुनते हैं। पत्रकारों द्वारा उपभोक्तावादी काल में नैतिक मूल्यों के पतन, गलत और झूठ पर आधारित खबरें एवं आर्थिक हितों हेतु पेड न्यूज की संस्कृति के चलन पर रामबहादुर राय लिखते हैं, ''अखबारों में छपने वाली या टेलीविजन चैनलों पर प्रसारित होने वाली खबरें न केवल जनहित की होनी चाहिए, बल्कि सही, तथ्यात्मक, सन्तुलित, वस्तुपरक और निष्पक्ष भी होनी चाहिए। यही वे विशेषताएं हैं जो खबरों को सम्पादकीय विषय-वस्तुओं या कॉर्पोरेट घरानों, सरकार या व्यक्तियों के भुगतानशुदा विज्ञापनों से स्पष्ट रूप से अलग करती हैं। जब खबरों और विज्ञापनों के बीच की रेखा धुंधलाने लगती है, जब विज्ञापनों को भुगतानशुदा खबरों के रूप में पेश किया जाता है या किसी विशेष राजनीतिज्ञ या राजनैतिक पार्टी के पक्ष में खबरें प्रकाशित या प्रसारित करने के लिए सम्पादकीय की जगह को बेच दिया जाता है, तो पाठक या दर्शक को धोखे से यह विश्वास दिलाया जाता है कि विज्ञापन या प्रायोजित फीचर दरअसल 'न्यूज' स्टोरी है जो सही, निष्पक्ष और वस्तुपरक है।" (राय, 2010, पृ. 30)। इस पूरी प्रक्रिया में पत्रकारिता मिशन के स्थान पर शुद्ध व्यवसाय के रूप में बदल गई है। इसके पीछे पाश्चात्य प्रेरित ऐसी संस्कृति है जो अपने चरित्र में उपभोक्तावादी, उपयोगितावादी, बाजारवादी, पूंजी प्रधान एवं निर्मम है। हालांकि मुख्यधारा पत्रकारिता पर इसका प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ रहा है, किन्तु भारत की अंग्रेजी पत्रकारिता इस संस्कृति की संवाहक बनी हुई है, ''समाचार-पत्र खासकर अंग्रेजी पत्र वैश्वीकरण और बाजारवाद के संचालक बन गए हैं। चूंकि वैश्वीकरण केवल व्यापारिक तंत्र ही नहीं, एक विचारधारा है और कुछ विशेषज्ञों के अनुसार एक अलग सभ्यता है, इसलिए बड़े समाचार-पत्र अलग-अलग मालिकों के अधिकारों में होने के बावजूद इस नए आर्थिक-सांस्कृतिक वैश्वीकरण की नई सभ्यता के प्रचारक भी बन रहे हैं।" (कौल, 2000, पृ. 15)। प्रारंभ में समाचार माध्यमों को धन की आवश्यकता अपनी सुचारू गतिविधि के लिए होती थी किन्तु बदले हुए परिप्रेक्ष्य में इन माध्यमों को चलाया ही इसलिए जा रहा है, ताकि ज्यादा-से-ज्यादा धन कमाया जा सके।

उद्योग समूहों द्वारा धनोपार्जन की पूर्ति के लिए समाचार पत्रों एवं अन्य माध्यमों की पृष्ठभूमि ही बदल दी जाती है और अनेक अवसरों पर घटिया रुचियों को भड़काने का प्रयास किया जाता है जो अप्रत्यक्ष रूप से बाजार के निर्देश पर चलते हुए प्रतीत होते हैं। पिछले कुछ दशकों में मीडिया के विभिन्न क्षेत्रों में भ्रष्टाचार एक संस्थागत एवं संगठित रूप में विकसित हो चुका है। पेड न्यूज के आयाम ने इस भ्रष्टाचार में गुणात्मक वृद्धि की है। इसी ओर रामबहादुर राय इशारा करते हैं, ''भुगतानशुदा खबरों की घटना केवल कुछेक पत्रकारों और मीडिया कम्पनियों तक सीमित नहीं है। यह बेहद विकृत, संस्थागत और संगठित रूप ले चुकी है और यह कुप्रथा भारतीय लोकतन्त्र की जड़ें कमजोर कर रही है।" (राय, 2010, पृ. 19)। बाजार समाचार माध्यमों के लिए विज्ञापन उपलब्ध कराता है और समाचार माध्यम पाठक या श्रोता को बाजार की ओर उन्मुख करता है। अखबार और अन्य दृश्य-श्रव्य माध्यम लगभग अश्लीलता की सीमा तक पहुंच चुके हैं। अखबार एवं अन्य मीडिया माध्यम चित्रों और चलचित्रों के माध्यम से अश्लीलता की झलक पाठक या दर्शक को परोसता है। बाजार और पत्रकारिता का एक अनोखा रूप वैश्वीकरण के दौर में पनपा है, जिसमें

बाजार को ऐसी युवा पीढ़ी चाहिए, जो दुनिया की सब चिन्ता छोड़कर उसके उत्पादन के पीछे दीवानी हो। मीडिया के विभिन्न माध्यम बाजार की इस कल्पना को यथार्थ रूप में दर्शक या पाठक के समक्ष मनमोहक रूप में प्रस्तुत करते हैं। बाजार और अखबार का अपना अलग ही संबंध है। बाजार के लिए यह बड़ी चुनौती है कि उसका मायाजाल लाखों पाठकों तक तभी पहुंचेगा जब अखबार लाखों पाठकों के लिए उपलब्ध होगा। इसके लिए बाजार अखबार को विज्ञापन के जरिये वित्तीय आधार की नींव प्रदान करता है और अखबार का मालिक पाठकों तक मुफ्त में या कुछ रुपयों में ही अखबार उपलब्ध कराता है। ''समाचार-पत्र के असली ग्राहक वे हैं, जो पत्र की 40 से 60 प्रतिशत जगह अपने विज्ञापनों के लिए खरीदते हैं और पत्र की कुल उत्पादन लागत से अधिक मूल्य चुकाते हैं। पत्र पढ़ने वाले लाखों लोग पत्र के असली ग्राहक नहीं, ग्राहक वे सौ-दो सौ उद्योगपति तथा व्यापारी हैं, जिन्हें उस समाचार-पत्र को पढ़ने की शायद फुर्सत नहीं मिलती।'' (कौल, 2000, पृ. 14)। अखबार का मालिक जानता है कि अब अखबार मिशन के लिए नहीं, बल्कि बाजार को पाठक के दरवाजे तक पहुंचाने का माध्यम भर है। प्रेस के ऐसे स्वरूप का निर्माण हो चुका है जो यथार्थ से कोसों दूर है। व्यक्तित्व निर्माण हेतु समाज में आवश्यक जुझारूपन पैदा करने के बजाय पलायनवाद के रास्ते निर्माण किए जाते हैं। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि अखबार बाजार के हितों के संवाहक के रूप में उपस्थित हो रहा है। यहां अखबार से अभिप्राय सिर्फ प्रिन्ट मीडिया से नहीं है बल्कि इसमें इलेक्ट्रानिक मीडिया और सोशल मीडिया का भी समावेश है। सच्चाई यह है कि इलेक्ट्रानिक मीडिया ज्यादा सुहाने सपनों का बाजार पैदा कर रहा है, जिसका प्रभाव और क्षेत्र ज्यादा घातक है। इस बिन्दु पर पत्रकारिता के क्षेत्र में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का प्रश्न पैदा होता है जो बाजार के प्रभाव से ग्रसित पत्रकारिता के विरोधाभास को प्रकट करता है, क्योंकि ऐसी पत्रकारिता अपने मूलाधार को नकार रही है।

मीडिया के लक्ष्य और ध्येय बदल जाने के बाद अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता धीरे-धीरे अनैतिकता के रास्ते पर चल पड़ी है। अब यही अनैतिकता वैश्वीकरण के पूर्वाग्रहों से कलंकित होकर, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का मुखौटा लगाकर अपने लिए विशेषाधिकार की मांग कर रहा है जो पत्रकारिता के मूल सिद्धांतों के इतर विरोधाभास को व्यक्त करता है। पिछले कुछ दशकों में पत्रकारिता के क्षेत्र में हुई घटनाओं ने पत्रकारिता जगत में नई परिभाषा को जन्म दिया है। अनैतिकता की पराकाष्ठा में पहुँच चुकी पत्रकारिता के लिए कोई आदर्श शेष नहीं बचा है। पत्रकार अब खबरों का पीछा नहीं कर रहा, बल्कि वह सनसनी पैदा करने एवं रातों रात प्रसिद्धि और पैसे के लालच में जाल बिछा रहा है और उस जाल में किसी निश्चित व्यक्ति को फंसाना चाहता है और सफल होने पर वह अपनी सनसनीपूर्ण अनैतिकता की कीमत लगाता है या कहीं पर वह मालिक के लिए इस प्रकार के प्रायोजित आयोजन को गढ़ता है। ऐसे मीडिया संस्थानों के दोहरे चरित्र और मानदण्डों पर वरिष्ठ पत्रकार रामबहादुर राय कटाक्ष करते हैं, ''मीडिया संगठनों के जिन प्रतिनिधियों के खिलाफ इस तरह के आरोप लगते हैं, वे 'भुगतानशुदा खबरों' के चलन की सार्वजनिक रूप से निन्दा करते हैं। इस तरह के कुछ लोग पाखंडियों जैसा व्यवहार करते हैं और नैतिकता पर चलने का दम्भ भरते हैं।'' (राय, 2010, पृ. 19)।

स्टिंग ऑपरेशन के नाम पर पत्रकारों ने खबरपालिका को बदनाम किया है। उन्होंने सनसनीपूर्ण ख़बरों को गढ़ने या उजागर करने हेतु अपने को वेश्या के रूप में भी प्रस्तुत किया है पत्रकारिता या अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता कलंकित हुई है। यह बिडंबना ही है जबसे बाजार ने मीडिया पर कब्जा कर लिया है तब से मीडिया बाजार की शर्तों के अनुसार ही चल रहा है। यह सारी प्रक्रिया अपने आप में अनैतिकता या उच्छृंखलता की सीमा में आ जाती है। यदि मीडिया अनैतिकता के रास्ते पर अग्रसर है और इसे बढ़ावा दे रहा है तो उसे इससे संबंधित वैधानिक प्रावधानों के उल्लंघन का दोषी माना जाएगा। जहां एक ओर उसकी साख कलंकित होगी वहीं उसे कानूनों के दायरे में भी आना पड़ेगा। इस विरोधाभास को पहचानने की आवश्यकता है। ऐसा नहीं हो सकता कि मीडिया का व्यवसाय अनैतिकता एवं उच्छृंखलता के दायरे में आता हो और वह संरक्षण पत्रकारिता से जुड़े अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के सिद्धांत के तहत मांग रहा हो। यह विरोधाभास न तो नैतिकता की दृष्टि से संभव है और न ही कानून की दृष्टि से। मीडिया का स्वरूप तेजी से बदल रहा है। उसकी गति, चाल एवं स्वभाव में आमूल-चूल परिवर्तन हो रहा है।

निष्कर्ष

मीडिया को लोकतंत्र का चौथा स्तंभ माना जाता है, लेकिन अब इस स्तंभ की स्थिति एवं उत्तरदायित्व भी बदल रहा है। अब यह स्तंभ अनेक बार लोकतंत्र की रक्षा नहीं करता, बल्कि आम आदमी में अपने कद का भय बढ़ाता है। मीडिया का यह स्वरूप आम आदमी की शक्ति से नहीं बढ़ा है, बल्कि बाजार की शक्ति से बढ़ा है। वैश्वीकरण के प्रभाव से ग्रसित यह मीडिया भारतीय हितों की अनदेखी कर रहा है और कई अवसरों पर यह भारतीय लोकतंत्र पर कुठाराघात भी करता प्रतीत होता है।

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के नाम पर उच्छृंखलता या अनैतिकता, मीडिया की गरिमा को नष्ट करती है और साथ ही पाठक एवं दर्शक को गुमराह भी करती है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता असीमित नहीं है, बल्कि उसकी सीमाएं हैं। इस स्वतंत्रता का मूल उद्देश्य समाज को सकारात्मक पहलू देना एवं आगे बढ़ाना है न कि इसकी आड़ में समाज में विद्वेषमूलक गतिविधियों को बढ़ावा देना है। यदि मीडिया विदेशी संस्कृति एवं मूल्यों को भारतीय मानस में प्रस्थापित करने का विद्वेषपूर्ण कार्य करता है तो उसे कम-से-कम अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के नाम पर संरक्षण मांगने का अधिकार नहीं है। भारत में बढ़ते वैश्वीकरण और विदेशी बाजार के प्रभाव से मीडिया के चाल, चरित्र और चेतना पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है, किन्तु यह भी सत्य है कि हमारे समाज में मानवीय मूल्यों और आदर्शों की परत बहुत गहरी है और तात्कालिक प्रभावों से वह ज्यादा समय तक प्रभावित नहीं रह सकती। सामाजिक एवं राष्ट्रीय मूल्यों के सरोकार बहुत गहरे हैं और कुछ पत्रकार एवं मीडिया संस्थान उसे कमजोर नहीं कर सकते। इसी सन्दर्भ में जगदीश्वर चतुर्वेदी अपनी पुस्तक 'जनमाध्यम एवं मास कल्चर' में लिखते हैं, ''जनमाध्यमों की भूमिका जनसमूह की चेतना बनाने की ओर उन्मुख है। उसे रोका नहीं जा सकता और उससे बचना भी मुश्किल है। ...जनमाध्यम निर्मित संस्कार, दृष्टिकोण बहुत प्रबल एवं प्रभावी होते हैं।'' (चतुर्वेदी, 1996, पृ. 16)। भारतीय लोकतंत्र में मीडिया सरोकारों की जड़ें बहुत मजबूत हैं। जनमानस को प्रेस की स्वतंत्रता के साथ-साथ उसके

उत्तरदायित्व का ज्ञान कराना आवश्यक है क्योंकि कुछेक मीडिया संस्थानों द्वारा पत्रकारिता की मर्यादा को लांघने से समूची मीडिया कलंकित नहीं हुई है। इसी विश्वास को पत्रकारों एवं जनसंचार माध्यमों को जनमानस तक पहुंचाने का पुनीत कार्य करना है।

संदर्भ

इलाहाबादी, ए. https://www.rekhta.org/copulets/vhinchona-kamaano-ko-na-lalvar-nikaalo-akbar-allhabadi_couplets?lemg=hi से पुन:प्राप्त

कौल, जे. (2000). *हिन्दी पत्रकारिता का बाजार भाव*. पृ. 75. दिल्ली: प्रभात प्रकाशन

कौल, जे. (2000). *हिन्दी पत्रकारिता का बाजार भाव*. पृ. 15. दिल्ली: प्रभात प्रकाशन

कौल, जे. (2000). *हिन्दी पत्रकारिता का बाजार भाव*. पृ. 14. दिल्ली: प्रभात प्रकाशन

चतुर्वेदी, जे. (1996). *जनमाध्यम और मासकल्चर*. पृ.16. नई दिल्ली: सारांश प्रकाशन

जोशी, पी. (2010). 'काले पैसे की काली खबरें'. 'काली खबरों की कहानी...रिपोर्ट जो दबा दी गई. पृ. 133. संपादक-रामबहादुर राय (प्रथम संस्करण). गाजियाबाद: रेमाधव पब्लिकेशन प्रा. लि.

मंडलोई, एल. (2006). *इनसाइड लाइव*. पृ.128-129. पंचकूला: आधार प्रकाशन

मोहन, ए. (2009). *मीडिया, शासन और बाजार*. पृ. 15, 45. बीकानेर: वाग्देवी प्रकाशन

राय, आर. बी. (2010). 'काली खबरों की कहानी...रिपोर्ट जो दबा दी गई'. *पुरोकथन*, पृ. 12. गाजियाबाद: रेमाधव पब्लिकेशन प्रा. लि.

राय, आर. बी. (2010). 'काली खबरों की कहानी...रिपोर्ट जो दबा दी गई'. *पुरोकथन*, पृ. 20. गाजियाबाद: रेमाधव पब्लिकेशन प्रा. लि.

राय, आर. बी. (2010). 'काली खबरों की कहानी...रिपोर्ट जो दबा दी गई'. *पुरोकथन*, पृ. 32. गाजियाबाद: रेमाधव पब्लिकेशन प्रा. लि.

राय, आर. बी. (2010). 'काली खबरों की कहानी...रिपोर्ट जो दबा दी गई'. *पुरोकथन*, पृ. 31. गाजियाबाद: रेमाधव पब्लिकेशन प्रा. लि.

राय, आर. बी. (2010). 'काली खबरों की कहानी...रिपोर्ट जो दबा दी गई'. *पुरोकथन*, पृ. 30. गाजियाबाद: रेमाधव पब्लिकेशन प्रा. लि.

विलियम्स, आर. (2000). *संचार माध्यमों का वर्ग चरित्र*. पृ.116. संघ शिल्पी प्रकाशन

शेखर. (2010). एक मुहिम अखबारी बाजीगरी के खिलाफ. *काली खबरों की कहानी....रिपोर्ट जो दबा दी गई*. पृ. 159. सम्पादक-रामबहादुर राय (प्रथम संस्करण). गाजियाबाद: रेमाधव पब्लिकेशन प्रा. लि.

संचार माध्यम | खंड 32(2): 56-59, जुलाई-दिसंबर 2020
आईएसएसएन: 2321-2608

हंगामा व विवादित बयानों पर सिमटती संसदीय पत्रकारिता

डॉ. हरीश चंद्र लखेड़ा[1]

सारांश

संसद देश की सर्वोच्च पंचायत है। संसद के लिए लोग और प्रदेशों की विधानसभाएं अपने प्रतिनिधि चुन कर भेजते हैं। लोगों की अपने जनप्रतिनिधियों से भारी अपेक्षाएं रहती हैं, इसलिए लोगों की दिलचस्पी स्वाभाविक तौर पर इस बात में रहती है कि संसद सत्र के दौरान उनके सांसद सदन में क्या करते हैं। जनता को यह सब जानकारी निष्पक्ष और पारदर्शी तरीके से देने की जिम्मेदारी मीडिया की है। संसद और जनता के बीच मीडिया पत्रकारिता ही प्रमुख सेतु का काम करती है, लेकिन संसदीय पत्रकारिता अब सांसदों के हंगामों, अमर्यादित आचरण और विवादित बयानों के इर्दगिर्द सिमटती जा रही है, जबकि ऐसे बहुत से सांसद हैं जो संसद सत्र के लिए पूरी तैयारी करके सदन में आते हैं। उनके उठाए मुद्दों को लेकर खबरें बहुत कम दिखती हैं। संसद सत्र के दौरान कुछ समय पहले तक समाचार पत्रों के प्रथम पृष्ठ पर संसद के समाचार प्राथमिकता से होते थे, परंतु अब हंगामा अथवा बड़े मामलों से संबंधित खबरें ही ज्यादा दिखती हैं। अधिकतर खबरिया चैनल भी हंगामा, सनसनीखेज और उत्तेजना वाले समाचारों को ही प्रमुखता से दिखाते हैं। संसदीय पत्रकारिता का स्वरूप पिछले दो दशकों में बदला है। वैश्वीकरण और बाजारवाद ने पत्रकारिता को पहले ही बदलना शुरू कर दिया था, फिर सूचना क्रांति ने इस प्रक्रिया को और तेज किया। अब सोशल मीडिया ने परंपरागत पत्रकारिता का चेहरा-मोहरा बदल कर रख दिया है। इसका असर संसदीय पत्रकारिता पर पड़ा है। पत्रकारिता अब मिशन के बजाय विशुद्ध तौर पर एक उद्योग में तब्दील हो चुकी है। इसका पहला ध्येय सूचना देने, शिक्षित करने, जनसरोकार के मुद्दे उठाने आदि के बजाय सिर्फ मुनाफा कमाना हो गया है। आज समय के साथ समाज और सांसद भी बदल गए हैं। वे गांधी की बात तो करते हैं, परंतु अमल में नहीं लाते। आज समाचारपत्र- पत्रिकाओं के साथ खबरिया चैनल, रेडियो, दूरदर्शन न्यूज, लोकसभा टीवी, राज्यसभा टीवी, वेब-पत्रकारिता, सोशल मीडिया तक आ चुके हैं। बाजारवाद के कारण खबरें अब उत्पाद बन गई हैं और प्रतिस्पर्धा के दौर में खबरों को बेचने का प्रयास किया जा रहा है। इसलिए मीडिया को हंगामा, सनसनी वाली खबरें चाहिए। इससे खुद मीडिया के साथ संसद और जनता का भी नुकसान हो रहा है। खासतौर पर चैनलों की खबरों से तो ऐसा लगता है कि जैसे कि संसद में सिर्फ हंगामा ही होता है, जबकि वहां और भी बहुत कार्य होता है। इस तरह की स्तरहीन रिपोर्टिंग के कारण संसद और सांसदों की सही तस्वीर सामने नहीं आ रही है। सही छवि तभी सामने आ पाएगी जब मीडिया एक पक्षीय होने के बजाय निष्पक्ष होकर रिपोर्टिंग करे। मीडिया के निष्पक्ष, पारदर्शी व विश्वसनीय बने रहने से ही लोकतंत्र मजबूत होगा।

संकेत शब्द : संसद, लोकतंत्र, संसदीय पत्रकारिता, संसदीय कार्यवाही, चौथा स्तंभ, बाजारवाद, मीडिया, सूचना क्रांति, हंगामा

प्रस्तावना

देश की सर्वोच्च पंचायत संसद की पत्रकारिता अब सांसदों के हंगामों, अमर्यादित आचरण और विवादित बयानों के इर्दगिर्द सिमटती जा रही है। संसद सत्र के दौरान पहले समाचार पत्रों के प्रथम पृष्ठ पर संसद के समाचार प्राथमिकता से होते थे, परंतु अब हंगामा अथवा बड़े मामलों से संबंधित खबरें ही होती हैं। खबरिया चैनल तो हंगामा, सनसनीखेज और उत्तेजना वाले समाचारों को ही अधिक दिखाते हैं। समाचार पत्रों में भी संसद की खबरों की संख्या घट गई है। यहां तक कि स्वयं को राष्ट्रीय मीडिया कहने वाले मीडिया में बजट, बिल, प्रधानमंत्री या मंत्रियों के बयान, जवाब आदि को जगह देना तो उनकी मजबूरी है, लेकिन सांसदों द्वारा उठाए गए उचित मुद्दों को बहुत कम स्थान दिया जाता है, जबकि देश की सर्वोच्च संसद की सूचनाएं आम लोगों को मिलनी आवश्यक हैं, ताकि लोग जान सकें कि संसद क्या कर रही है, उनके चुने प्रतिनिधि संसद में क्या करते हैं। लेकिन मीडिया ऐसा नहीं कर रहा है। वह खबरों को उत्पाद की तरह बेचने में लग गया है। इससे लोगों तक संसद की एकतरफा तस्वीर ही पहुंच रही है। इसे लोकतंत्र के लिए शुभ नहीं माना जा सकता है।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोधपत्र के लिए संसद से संबंधित पुस्तकों व लेखों का अध्ययन किया गया है। लोकसभा के महासचिव व सचिव रह चुके अधिकारियों से बात की गई है। लंबे समय से संसद की पत्रकारिता करने वाले वरिष्ठ पत्रकारों से चर्चा की गई। खुद शोधार्थी को पिछले दो दशकों से संसदीय पत्रकारिता का अनुभव है। इस सभी से मिली जानकारी को आधार बनाकर यह शोध पत्र तैयार किया गया है।

अमर्यादित आचरण

समाज बदलने के साथ ही सांसद भी बदल गए हैं। सांसदों के बदलने के साथ ही संसद भी बदल गई है। इसके साथ ही संसदीय पत्रकारिता भी बदल गई है। अब संसदीय पत्रकारिता की प्राथमिकता में जन सरोकार के समाचार नहीं हैं, बल्कि अब संसद में सांसदों का हंगामा, अमर्यादित आचरण, सनसनीखेज और विवादित बयान हैं। संसद सत्र के दौरान यही घटनाएं अब समाचार पत्रों की सुर्खियां बनती हैं। खबरिया चैनलों की 'बड़ी खबरें' बनती हैं। संसदीय पत्रकारिता का स्वरूप मुख्यत: पिछले दो

[1]वरिष्ठ पत्रकार, दैनिक ट्रिब्यून। ई मेल : harishlakhera13@gmail.com

दशकों में बदला है। वैश्वीकरण और बाजारवाद ने पत्रकारिता को पहले ही बदलना शुरू कर दिया था, अब सूचना क्रांति ने इस प्रक्रिया को तेज किया है। संसद की कार्यवाही का सीधा प्रसारण होने से भी संसदीय पत्रकारिता बदली है। अब सोशल मीडिया के विस्फोट ने परंपरागत पत्रकारिता का चेहरा-मोहरा बदल कर रख दिया है। इसने समाचार पत्रों के बाद अब खबरिया चैनलों की भी संसदीय रिपोर्टिंग की परंपरागत शैली को ध्वस्त करके रख दिया है। इसका असर संसदीय पत्रकारिता पर भी पड़ा है।

पहले संसद सत्र के दौरान प्रत्येक समाचारपत्र में प्रथम एक या दो पृष्ठ संसद के समाचारों के लिए होते थे। सत्र में उठे बड़े मुद्दे अखबारों की सुर्खियां बनते थे। प्रश्नकाल में पूछे गए प्रमुख सवालों के जवाब भी प्रकाशित होते थे। विभिन्न समितियों की रिपोर्ट से भी खबरें होती थीं। खबरिया चैनलों में भी शुरूआती दौर में प्रश्नों के जबाव और संसदीय रिपोर्ट से विशेष खबरें बनती थीं, परन्तु अब ये धीरे-धीरे कम होते चले गए। समाचार पत्रों समेत मीडिया में अब संसद के बहुत कम समाचार दिखते हैं। संसद में सांसदों द्वारा उठाए गए महत्वपूर्ण मुद्दे अब उनके क्षेत्र के समाचार पत्रों या क्षेत्रीय खबरिया चैनलों में ही कुछ जगह पा रहे हैं। लोकसभा टीवी के मुख्य संपादक आशीष जोशी कहते हैं, ''हंगामा ब्रिगेड को तरजीह मिलने से संसद की रिपोर्टिंग का स्तर कम हुआ है। अब टीवी में हंगामा, धक्का-मुक्की, शोरगुल को ज्यादा दिखाते हैं। चैनलों की यह कमी है। इसी कारण सांसद हंगामा करते हैं कि टीवी में दिख जाएंगे।''

संसदीय पत्रकारिता

संसदीय पत्रकारिता का अर्थ है, संसद, विधानसभा यानी विधायिका को लेकर की गई पत्रकारिता। देश की सर्वोच्च पंचायत संसद के दोनों सदनों, राज्यसभा और लोकसभा तथा प्रादेशिक विधानसभाओं, विधानपरिषदों की कार्यवाही रिपोर्टिंग इसके तहत आती है। लोकसभा और दिल्ली विधानसभा के पूर्व सचिव सुदर्शन शर्मा कहते हैं, ''संसदीय समाचार का अर्थ संसद के दोनों सदनों लोकसभा और राज्यसभा तथा राज्यों की विधानसभा और विधानपरिषद की गतिविधियों के समाचारों से है। संसदीय पत्रकारिता कुछ भिन्न है। संसदीय पत्रकारिता में सदन की अवमानना न हो, इसका विशेष ध्यान रखना होता है। जिस तरह से अदालत की अवमानना होती है, उसी तरह का प्रावधान विधायिका के लिए भी है।' जबकि अन्य क्षेत्रों की पत्रकारिता के मामले में संसदीय अवमानना का मामला नहीं बनता है।''

संसदीय पत्रकारिता का महत्व

संसदीय लोकतंत्र में पत्रकारिता की बड़ी भूमिका है। संसद और जनता के बीच पत्रकारिता ही प्रमुख सेतु का काम करती है। ''जनता की राय के प्रसार के लिए प्रेस महत्वपूर्ण माध्यम है। प्रेस के माध्यम से संसद को जानकारी मिलती है और उसे कार्यपालिका पर निगरानी रखने में मदद मिलती है। इससे कार्यपालिका की जिम्मेदारी को प्रभावी ढंग से सुनिश्चित करने में मदद मिलती है। इसे कभी-कभार संसद का विस्तार भी कहते हैं। प्रेस प्रशासन की खामियों का पता लगाता है। जनता की शिकायतों और कठिनाई को सामने रखता है। सरकार की चूक और उपलब्धियों का उल्लेख करता है कि नीति पर कैसे अमल किया जा रहा है। कैसे प्रशासन लोगों को प्रभावित कर रहा है' (कॉल और शकधर, 1991)।

प्रेस संसदीय जीवन में विशेष रूप से महत्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध कराने की भूमिका निभाता है, परंतु इससे प्रेस पर भारी दायित्व भी आ जाता है कि वह स्वयं अपनी आचरण संहिता का पालन करे। ''सनसनीखेज बातें लिखने के प्रलोभन में न आए, पत्रकारिता के तुच्छ लाभों के लिए राष्ट्रीय हित का बलिदान न करने के अपने सर्वोच्च कर्तव्य को याद करे, समाचारों का तथ्यात्मक आधार पर सही होना और विश्वसनीय होना सुनिश्चित करे और सर्वोपरि, ईमानदार, और निष्पक्ष रहे तथा जनता की सेवा के लिए समर्पित रहे'' (कश्यप, 1991)।

लाइव खबरों के दौर में बदलती पत्रकारिता

पिछले दो दशकों में बहुत कुछ बदल गया है। खासतौर पर खबरों के लाइव होने से संसदीय पत्रकारिता भी बदलती चली गई। पहले हंगामा या विवादित बयानों को ज्यादा तवज्जो नहीं दी जाती थी, लेकिन टीवी आने के बाद लाइव खबरों के दौर में चीजें बदलती चली गईं और हंगामे की खबरों को महत्व मिलने लगा। दैनिक जागरण के विशेष संवाददाता संजय मिश्र कहते हैं, ''अब जिन बातों में विवाद होता है, उन्हें ही मीडिया ज्यादा उठाता है। अब राजनीतिक वबाल बढ़े हैं।'' वास्तव में पहले समाचार पत्र हंगामे के बजाय सदन की चर्चा पर अधिक महत्व नहीं देते थे। 'राष्ट्रीय सहारा' के पूर्व ब्यूरो चीफ राकेश आर्य कहते हैं, ''समाचारपत्रों में संसद की कार्यवाही की कवरेज कम हो गई है, क्योंकि अब सब कुछ सीधा प्रसारण टीवी पर ऑनलाइन हो गया है। रिपोर्टिंग में गंभीरता कम हुई है। हंगामों से जुड़ी या सनसनीखेज खबरें ज्यादा होती हैं।'' हालांकि समाचार पत्रों में संसद की कवरेज घटने को लेकर डेक्कन हेराल्ड के विशेष संवाददाता शमिन जॉय कहते हैं, ''अखबारों में अति स्थानीयकरण यानी 'हाईपर लोकलाइजेशन' हुआ है। अब अखबार लोकल खबरों के लिए ज्यादा पृष्ठ देते हैं। इसलिए भी संसद की खबरों के लिए जगह कम हुई है।'' समाचार पत्रों में संसद की रिपोर्टिंग घटने का एक मुख्य कारण सदन की कार्यवाही का सीधा प्रसारण ही माना जाता है। एक बार लाइव हो जाने के बाद उस घटना को समाचार पत्र में पढ़ने की दिलचस्पी भी घट जाती है। पहले दूरदर्शन के डीडी-1 चैनल पर प्रसारण होता था, लेकिन अब लोकसभा और राज्यसभा के अपने-अपने चैनल हैं। लोकसभा टीवी के मुख्य संपादक आशीष जोशी कहते हैं, ''लोकसभा टीवी दर्शकों के ड्राइंग रूम तक संसद को ले गया है। वे घर में बैठे-बैठे अपने जनप्रतिनिधि को देख सकते हैं कि वह संसद में क्या कर रहा है। मीडिया में हंगामा ब्रिगेड को तरजीह मिलने से संसद की रिपोर्टिंग का स्तर कम हुआ है। अब सांसद तैयारी करके नहीं आते है, सिर्फ गिनेचुने सांसद ही तैयारी करके आते हैं, क्योंकि उन्हें मालूम है कि सीधे प्रसारण से उन्हें सभी देख रहे हैं। हालांकि इनकी संख्या बहुत कम है''।

वास्तव में सांसद भी अब तैयारी करने के बजाय हंगामा करने में ज्यादा दिलचस्पी दिखाते हैं, ताकि इससे टीवी में दिख जाएं। और मीडिया उन्हें दिखाता भी है। हालांकि प्रत्येक दल में बड़ी संख्या में ऐसे सांसद भी हैं जो अपने क्षेत्रों के ज्वलंत व सामयिक मुद्दों को लगातार संसद में उठाते रहते हैं, लेकिन दिल्ली से प्रकाशित होने वाले समाचार पत्र और यहां के खबरिया चैनलों में उनको जगह नहीं मिल पाती। उनके उठाए मुद्दे उनके क्षेत्र के समाचार पत्रों में ही जगह पाते हैं। कोजेंसेज एजेंसी के

विशेष संवाददाता साहिद अब्बास कहते हैं, ''संसद में धरना-प्रदर्शन होने पर उसकी कुछ ज्यादा ही निंदा, आलोचना होती है, मगर यह नहीं भूलना चाहिए कि यह लोकतंत्र का औजार है। वास्तव में पत्रकारिता में अप्रशिक्षित लोग ज्यादा आ गए हैं। वे संसद में सांसदों के हंगामा करने पर इसके खिलाफ बोलने/लिखने लगते हैं, जबकि यह गलत है। चैनलों का तो बस बाइट पर ज्यादा जोर रहता है और वे वही दिखाना पसंद करते हैं, जिससे उनकी टीआरपी बढ़े।''

यह सच्चाई है कि मीडिया संस्थानों को चलाने के लिए पैसा चाहिए। मीडिया को यह पैसा विज्ञापनों से मिलता है। विज्ञापन तभी मिलेंगे, जब समाचारपत्रों का ज्यादा सर्कुलेशन होगा और खबरिया चैनलों की अधिक टीआरपी, जबकि संसद की गंभीर किस्म की खबरें उन्हें यह सब दे पाने में सक्षम नहीं हैं। इसलिए संसद के हंगामे, सांसदों के भडक़ाऊ बयान आदि को तो मीडिया में महत्व मिल रहा है, जबकि लोक महत्व के मुद्दों को स्थान मिलना मुश्किल हो गया है। आज के मीडिया घराने पत्रकारिता की आड़ में राजनेताओं से संपर्क बढ़ाकर अपने हित साधने के लिए मीडिया का दुरुपयोग कर रहे हैं, जबकि आम पाठक मानता रहा है कि पत्रकारिता एक मिशन है। लेकिन आज हकीकत इसके विपरीत है। पत्रकारिता अपने मूल स्वभाव के विपरीत राह पर चल पड़ी है। वह मिशन के बजाय विशुद्ध तौर पर एक उद्योग में तब्दील हो चुकी है, जिसका पहला ध्येय सूचना देने, शिक्षित करने, जनसरोकार के मुद्दे उठाने आदि के बजाय सिर्फ मुनाफा कमाना हो गया है।

सदन से बाहर आ गई है रिपोर्टिंग

संसद की रिपोर्टिंग अब सदन से बाहर शिफ्ट हो गई है। संसद सत्र के दौरान खबरिया चैनलों में सदन की कार्यवाही के बजाय वह ज्यादा दिखाया जाता है जो सदन के बाहर होता है। सदन की कार्यवाही को लेकर सासंद संसद भवन परिसर में चैनलों को जो बाइट देते हैं वही ज्यादा दिखाई जाती है। नेता भी अब चैनलों में बाइट देने में ज्यादा दिलचस्पी लेते हैं। सांसद पहले संसद के भीतर ज्यादा बोलते थे। अब बाहर ज्यादा बोलते हैं। कई बार यह भी देखा गया है कि कई सांसद संसद के भीतर सदन में कुछ बोलते हैं और संसद के बाहर कुछ और। अब खबरिया चैनलों के लिए रिपोर्टिंग बाइट लेने तक सीमित रह गई है। इसलिए चैनलों के लगभग सभी रिपोर्टर अब 'बाइट कलेक्टर' बन कर रह गए हैं।

वास्तव में टीवी की पत्रकारिता अब 'रिएक्शन' पत्रकारिता हो गई है। देशभर में कुछ घट जाए तो संसद आकर यहां नेताओं से प्रतिक्रिया लेनी होती है, क्योंकि यहां नेता, मंत्री आदि सभी उपलब्ध हो जाते हैं। अब हर चैनल का अपना एजेंडा है। चैनल विचारधारा के मामले में भी बंट गए हैं। वे अपने हित को ध्यान में रखकर संसद की कार्यवाही को कम या ज्यादा दिखाते हैं। टीवी चैनलों के 'फ्रेमवर्क' में बदलाव आ गया है। पहले सभी में न्यूज दिखाने में लगभग समानता थी, लगभग हर बड़ी घटना को सभी दिखाते थे। अब वैचारिक विभाजन बढ़ा है। इसका असर पत्रकारिता पर पड़ रहा है। न्यूज-24 के उपसंपादक संजीव त्रिवेदी कहते हैं, ''अब खबरें बिकती हैं। मतलब जनता को कितना डरा सकते हैं। उद्वेलित कर सकते हैं। यदि संसद में ऐसी न्यूज है तो चैनल दिखाएंगे अन्यथा नहीं। चैनल अब संसद की महत्वपूर्ण खबरों को नहीं लेते। एकतरफा खबरें जा रही हैं। जो समाज में घट रहा है, उसी का 'रिफ्लेक्शन' वहां देखने को मिल रहा है। कई कानून बन रहे हैं, लेकिन ध्यान नहीं दिया जा रहा है, क्योंकि यहां विवादित मुद्दों की धमक है। पहले संसद से न्यूज बाहर जाती थी, अब बाहर की न्यूज पर प्रतिक्रिया जाती है। अब हमारे पास समय नहीं है। बाहर की खबरें प्रभावित करती हैं। हम वही दिखाएं तभी ऑफिस हमारी न्यूज पर ध्यान देता है।'' वैसे न्यूज चैनलों का अपना अलग महत्व है। इसमें नेताओं के चहरे दिखते हैं। टीवी में फोटो दिखता है, चेहरा दिखता है। इसलिए उसमें सभी की रुचि है। इसमें संसद के भीतर व बाहर की रिपोर्टिंग होती है। हालांकि अब सिर्फ बाइट पर जोर दिया जा रहा है।

परंपरागत मीडिया की अहमियत घटी

आज लगभग सभी सांसद सोशल मीडिया पर सक्रिय हैं। फेसबुक, ट्विटर, इंस्टाग्राम आदि पर उनके बड़ी संख्या में 'फालोअर्स' हैं। इसलिए अब जैसे ही वे सांसद सदन में कोई मुद्दा उठाते हैं, अथवा संसद भवन परिसर में कोई बयान देते हैं तो उनका स्टाफ तुरंत ही उस जानकारी को सोशल मीडिया में डाल देता है। 'द ट्रिब्यून' के ब्यूरो प्रमुख वी.के. प्रसाद कहते हैं, ''सांसद अब व्हाट्सएप और यूट्यूब, ईमेल, खबरिया चैनल आदि से अपने क्षेत्र तक अपनी बात पहुंचा देते हैं, इसलिए पत्रकारों का महत्व कम हो गया है। सांसद अब लोकसभा और राज्यसभा से सीडी मंगा लेते हैं, जिसमें उनकी कार्यवाही में शामिल बातें होती हैं। फिर वे सोशल मीडिया में डाल देते हैं, जो कि सीधे उनके क्षेत्र में पहुंच जाती हैं''।

यह कह सकते हैं कि आज संसदीय रिपोर्टिंग का पराभव हुआ है। रिपोर्टिंग के गिरते स्तर के लिए संसदीय पत्रकार भी जिम्मेदार हैं। अधिकतर पत्रकार भी तैयारी नहीं करते हैं। पहले रिपोर्टर सुबह 11 बजे प्रेस दीर्घा में पहुंच जाते थे। प्रश्नकाल के हर प्रश्न व उत्तर को गंभीरता से सुनते थे। मगर अब सुबह प्रेस दीर्घा की अधिकतर सीटें खाली रहती हैं। 'स्वदेश' के ब्यूरो चीफ उमेश कुमार कहते हैं, ''पत्रकारों की सोच भी संसद को लेकर बदल गई है। पहले के रिपोर्टर संसद की कार्यवाही की हर घटना से लेकर संसदीय समितियों की बैठकों की भी जानकारी रखते थे, मगर अब ऐसा नहीं है''। सोशल मीडिया के चलते अब मीडिया पर उसी तरह की खबरें बनाने का भी दबाव है। सोशल मीडिया पर नई पीढ़ी अधिक सक्रिय है। उन्हें भी न्यूज पहुंचानी है। संभवत: इसलिए भी संसद के गंभीर मुद्दों को अब ज्यादा तवज्जो नहीं दी जा रही है। न्यूज ऐजेंसी 'यूएनआई' की पूर्व ब्यूरो चीफ नाज असगर कहती हैं, ''इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के दबाव में सनसनीखेज व विवादित खबरों को बढ़ावा दिया जा रहा है''।

मीडिया घराने का नफा-नुकसान देखकर बनती हैं खबरें

मीडिया किसी खबर को किस तरह से पेश करता है। कौन-सी खबर को प्राथमिकता से देना है, किसे दबाना है, लोगों को क्या दिखाना है, यह सभी बातें खबरिया चैनलों के मुख्यालयों में बैठे सीनियर पत्रकार तय करते हैं। उनका ध्यान इस पर रहता है कि संसद की खबरों से उनके मालिकों के आर्थिक हितों पर चोट न पहुंचे। इसके लिए वे खबरों को नए-नए एंगल देने के प्रयास में ही अपनी ऊर्जा खपाते रहते हैं। संपादक के ऊपर रखे ब्रांड मैनेजर उन पर कड़ी नजर रखते हैं। मीडिया अब विचारधारा

के आधार पर बंट गया है। इससे समाचार संपूर्णता के बजाय एकपक्षीय दिखाए जाते हैं। 'एशियन एज' व 'लोकमत ग्रुप' के विशेष संवाददाता वैंकटेश केसरी कहते हैं, ''पहले मालिक का दखल न था, अब मालिक का दबाव है कि स्टोरी से रेवेन्यू नहीं घटना चाहिए''। दरअसल, अब चैनलों में न्यूज स्टोरी दिखाने से पहले यह आकलन कर लिया जाता है कि उस मीडिया समूह को उससे लाभ होगा कि हानि। इनाडु ग्रुप के पूर्व विशेष संवाददाता पीवी थॉमस कहते हैं, ''रिपोर्टिंग में काफी बदलाव आ गया है। अब मालिक तय करते हैं कि संवादादाता, ब्यूरो चीफ व संपादक क्या रिपोर्टिंग करें। इसलिए मुद्दे भी बदल गए हैं। अब सदन की कार्यवाही को प्राथमिकता नहीं मिलती है। संसद में बड़ा मुद्दा हो तो अखबार में जगह मिल जाती है। बजट को बहुत कवरेज आज भी मिलती है, मगर अच्छी बहस, मुद्दों को जगह मुश्किल से मिलती है।'' इसी तरह खबरिया चैनलों को लेकर एनडीटीवी इंडिया के संपादक (सरकारी मामले) हिमांशु शेखर मिश्रा कहते हैं कि अब बड़े विवादित मुद्दों पर ही टीवी की नजर होती है। उदाहरण के तौर पर राफेल पर यदि संसदीय समिति की रिपोर्ट में कुछ लिखा है तो वह खबर बन जाती है, लेकिन राज्यों में आई बाढ़ को लेकर कुछ कहा गया है तो खबर नहीं बनती।

चौथा स्तम्भ

पत्रकारिता को लोकतंत्र का चौथा स्तम्भ कहा जाता है, परंतु संवैधानिक तौर पर ऐसा कुछ नहीं है। संविधान में पत्रकारिता अभिव्यक्ति के अधिकार से ही परिभाषित होती है, उसे अलग से कोई विशेष अधिकार प्राप्त नहीं हैं। एडमंड बर्क (1729-1797) ने ब्रिटिश पार्लियामेंट में सबसे पहले मीडिया को चौथा स्तंभ कहा था। भारत में ब्रिटिश राज रहने के कारण तब यहां भी मीडिया को चौथा खंभा कहा जाने लगा। भारतीय संसदीय लोकतंत्र के तीन स्तम्भ विधायिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका ही हैं। ''विधायिका को मीडिया जनता के सरोकारों से जुड़ी और देश हित से संबंधित मूल्यवान सूचना और संकेत उपलब्ध कराता है। प्रेस गैलरी में बैठे पत्रकारों से उम्मीद की जाती है कि वे सदन की कार्यवाही की रिपोर्ट सत्य, पारदर्शिता और विश्वसनीयता के साथ करें (देवेंदर, 2016)।

मीडिया का उत्तरदायित्व

संसद के प्रांगण में जहां महात्मा गांधी की एक विशाल प्रतिमा लगी है, उन्होंने पत्रकारिता को कभी भी अपनी आजीविका का आधार बनाने का प्रयास नहीं किया। गांधीजी मानते थे कि 'पत्रकारिता कभी भी निजी हित या आजीविका कमाने का जरिया नहीं बनना चाहिए और अखबार या संपादक के साथ चाहे जो भी हो जाए, लेकिन उसे अपने देश के विचारों को सामने रखना चाहिए नतीजे चाहे जो हों। अगर उन्हें जनता के दिलों में जगह बनानी है तो उन्हें एकदम अलग धारा का सूत्रपात करना होगा' (बंदोपाध्याय, 2017)। संसद की 1975 से लगातार रिपोर्टिंग कर रहे तमिल दैनिक 'दिनामनी' और तेलगू 'दैनिक वार्ता' के पूर्व राजनीतिक संपादक आर. राजगोपालन कहते हैं, ''हंगामा इसलिए दिखाते हैं, कि संसद में हंगामा व अमर्यादित आचरण बढ़ा है। संसद में पहले स्वतंत्रता सेनानी थे, अब बड़ी संख्या में अपराधी व बाहुबली भी चुनकर आ गए हैं। कई तो हत्या, डकैती, लूट जैसे मामलों में लिप्त रहे हैं। इससे सदन की मर्यादा खत्म होती चली गई। इसलिए संसद की क्वालिटी खराब हो गई है। रही सही कसर टीवी और सोशल मीडिया के आने के बाद खत्म हो गई है। टीवी आने के बाद संसदीय पत्रकारिता भी खत्म सी हो गई है''।

निष्कर्ष

संसदीय लोकतंत्र में संसदीय पत्रकारिता की महत्वपूर्ण भूमिका है। संसद और लोगों के बीच संचार का सेतु मीडिया ही है। लोकतंत्र में प्रेस/मीडिया को आमतौर पर संसद का विस्तार कहा जाता है। प्रेस का दायित्व है कि वह सही और तथ्यों के आधार पर रिपोर्ट पेश करके लोगों तक जानकारी पहुंचाए। परंतु, आज संसदीय पत्रकारिता सनसनी और हंगामों तक सीमित हो गई है। संसद में शोर-शराबा, हंगामा, बायकॉट, विवादित बयान, धक्का-मुक्की आदि ही ज्यादा पढ़ाए/दिखाए जाते हैं, जबकि संसद में बहुत-सा काम भी होता है। संसद के दोनों सदनों में कई बार देर तक बैठकें भी होती हैं। संसद में गंभीर मुद्दे भी उठाए जाते हैं। जम्मू-कश्मीर से अनुच्छेद 370 को समाप्त करने की पहल भी संसद ने की। इसके लिए जनता ने कोई आंदोलन नहीं किया। संसद पर इसके लिए दबाव भी नहीं था। संसद में आवश्यक कानून भी समय पर बनते हैं। प्रत्येक दल में बड़ी संख्या में ऐसे सांसद भी हैं जो अपने क्षेत्रों के ज्वलंत व समसामयिक मुद्दों को लगातार संसद में उठाते रहते हैं, लेकिन मीडिया उनको नजरंदाज कर रहा है। सिर्फ हंगामा, विवादित बयानों को ही तवज्जो देने से संसद और सांसदों की छवि भी खराब हो रही है, जबकि मीडिया तो देश की सर्वोच्च पंचायत संसद और जनता के बीच सेतु की तरह है। सच्ची, पारदर्शी व भेदभावपूर्ण रिपोर्टिंग करके ही मीडिया अपने पाठकों/दर्शकों में अपनी विश्वसनीयता और विश्वास कायम रख सकता है।

संदर्भ

कश्यप, एस. (1991), *हमारी संसद*. नई दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया.

कॉल, एम. एन. व शकधर, एस. एल. (1991). *प्रेक्टिस और प्रोसिजर ऑफ पार्लियामेंट*. नई दिल्ली: लोकसभा सचिवालय और मैट्रोपोलिटन बुक को. प्रा. लि.

बंदोपाध्याय, ए. (2017). *महात्मा गांधी: एक पत्रकार*. अहमदाबाद: नवजीवन प्रेस.

सिंह, डी. (2016). *इंडियन पार्लियामेंट: वियोंड द सील एंड सिगनेचर*. गुरुग्राम: यूनिवर्सल लॉ पब्लिशिंग.

संचार माध्यम | खंड 32(2): 60-68, जुलाई-दिसंबर 2020
आईएसएसएन: 2321-2608

इंटरनेट पर उपलब्ध हिंदी समाचार-पत्रों के स्वरूप का अध्ययन

उमाशंकर मिश्र[1]

सारांश

भारत में पहली बार 15 अगस्त, 1995 को सार्वजनिक उपयोग के लिए इंटरनेट उपलब्ध हुआ। हालांकि, करीब एक दशक तक हिंदी समाचार-पत्रों की इंटरनेट से जुड़ने की गति बेहद धीमी रही। वर्ष 2006 तक विभिन्न हिंदी समाचार-पत्रों में से सिर्फ 17 हिंदी समाचार-पत्र ही इंटरनेट पर मौजूद थे। वर्ष 2006 तक भारत में हिंदी और अंग्रेजी समेत विभिन्न भारतीय भाषाओं के 114 समाचार पत्र ऑनलाइन उपलब्ध हुए। हाल के वर्षों में इंटरनेट का विस्तार होने के साथ-साथ मोबाइल उपकरणों का उपयोग बढ़ा है। इंटरनेट के आगमन से समाचारों के उत्पादन, वितरण और उपभोग से जुड़ी प्रवृत्तियों में बदलाव हुआ है। इस शोध-पत्र में दिल्ली के हिंदी दैनिक समाचार-पत्रों को केंद्र में रखकर इंटरनेट पर उपलब्ध हिंदी समाचार-पत्रों के स्वरूप का अध्ययन किया गया है। अध्ययन में, वेब पत्रकारिता से तात्पर्य इंटरनेट पर मौजूद हिंदी दैनिक समाचार-पत्रों के समाचार पोर्टलों पर आधारित ऑनलाइन पत्रकारिता से है। यहां इंटरनेट पर उपलब्ध हिंदी समाचार-पत्रों के स्वरूप से तात्पर्य ऑनलाइन उपलब्ध हिंदी समाचार-पत्रों की संख्या, ऑनलाइन हिंदी समाचारों के पाठकों की रुचियों और ऑनलाइन उपलब्ध हिंदी समाचार-पत्रों के पोर्टलों पर समाचारों के उपभोग संबंधी पाठकों की प्रवृत्तियों से है। अध्ययन से पता चला है कि दिल्ली से प्रकाशित होने वाले 685 हिंदी दैनिक समाचार-पत्रों में से सिर्फ 102 समाचार-पत्र इंटरनेट पर मौजूद हैं। माना जा रहा है कि इंटरनेट आधारित वेब पत्रकारिता के बावजूद निकट भविष्य में समाचार पत्रों का अस्तित्व बना रहेगा। इंटरनेट की पहुंच बढ़ने के साथ हिंदी समेत अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में ऑनलाइन मीडिया की पहुंच और प्रभाव बढ़ सकता है।

संकेत शब्द : इंटरनेट, हिंदी समाचार पत्र, वेब पत्रकारिता, सोशल मीडिया, पोर्टल

प्रस्तावना

इंटरनेट और इसके उपयोगकर्ताओं की निरंतर बढ़ती संख्या ने पत्रकारिता और पत्रकारों की भूमिका को बड़े पैमाने पर प्रभावित किया है। कुछ दशक पहले तक स्थापित यह धारणा अब छिन्न-भिन्न हो रही है कि मुद्रित समाचार माध्यम मीडिया के अन्य माध्यमों के लिए एजेंडा सेट करते हैं। इंटरनेट के आगमन के बाद यह धारणा बलवती होने लगी कि अखबारों की दुनिया पर संकट के बादल मंडरा रहे हैं और मुद्रित समाचार-पत्रों के व्यवसाय में गिरावट हो रही है। इसके लिए इंटरनेट आधारित पत्रकारिता (वेब पत्रकारिता) को जिम्मेदार माना जाता है। इंटरनेट ने शब्द, चित्र, ऑडियो, वीडियो, ग्राफिक्स, एनीमेशन, रेखाचित्र, कार्टून समेत विभिन्न संप्रेषण विधाओं को अपने भीतर समाहित कर लिया है। एक सशक्त संचार माध्यम के रूप में इंटरनेट ने मशहूर संचार-विज्ञानी मार्शल मैकलुहान के कथन 'माध्यम ही संदेश है' को बहुत हद तक चरितार्थ किया है।

"वर्ष 1991 में भारत में इंटरनेट का आगमन होने के बाद समाचार-पत्रों ने खुद को उसके अनुरूप ढालना शुरू कर दिया। आरंभ में अखबारों की इंटरनेट से जुड़ने की गति बेहद धीमी रही। वर्ष 1998 में भारत में पंजीकृत 4,719 समाचार-पत्रों में से विभिन्न भाषाओं के सिर्फ 48 भारतीय समाचार पत्र इंटरनेट पर मौजूद थे। वर्ष 1998 में हिंदी भाषा के पंजीकृत समाचार-पत्र एवं पत्रिकाओं की संख्या 2,118 थी, जिसमें से केवल पांच समाचार-पत्र ही इंटरनेट पर उपलब्ध थे" (ठाकुर, 2009)। "वर्ष 2005-06 में हिंदी भाषा के 942 दैनिक समाचार पत्र थे, जिनका 7,66,98,490 प्रतियों के प्रसार का दावा था। इसी तरह, 201 अंग्रेजी दैनिक अखबारों ने 3,41,06,816 प्रतियों के प्रसार का दावा किया। वर्ष 2006 तक भारत में हिंदी और अंग्रेजी समेत विभिन्न भाषाओं के सिर्फ 114 समाचार पत्र ऑनलाइन उपलब्ध थे। इन समाचार पत्रों में हिंदी भाषा के 17 समाचार पत्र शामिल थे" (ठाकुर, 2009)। वर्ष 1995 में इंटरनेट पर पहली बार किसी भारतीय समाचार-पत्र के दस्तक देने के करीब एक दशक तक मुद्रित समाचार-पत्रों की संख्या और उनकी प्रसार संख्या में वृद्धि होती रही। लेकिन, अखबारों के ऑनलाइन होने की गति धीमी ही बनी रही। इस अध्ययन में जानने का प्रयास किया गया है कि वर्ष 2006 के बाद हिंदी समाचार-पत्रों के ऑनलाइन होने की प्रवृत्तियां किस प्रकार की रही हैं, और इंटरनेट के विस्तार एवं उसके उपयोगकर्ताओं की बढ़ती संख्या ने हिंदी पत्रकारिता के स्वरूप को किस प्रकार प्रभावित किया है।

इंटरनेट का आगमन और वेब पत्रकारिता

"वर्ष 1990 के दशक में इंटरनेट के आगमन के बाद समाचार-पत्रों ने अपने स्वरूप में बदलाव शुरू कर दिया था। अखबार के दफ्तरों में बहुत-से कार्यों को निपटाने में कंप्यूटर की मदद ली जाने लगी। इनमें अखबार का डिजाइन, लेआउट और टाइटपिंग जैसे कार्य प्रमुख रूप से शामिल थे। कई अखबारों ने अपनी वेबसाइट बनाई और अखबारों को ई-पेपर के फॉर्मेट में उपलब्ध कराना शुरू किया" (ठाकुर, 2009)। "भारत में, वर्ष 1995 में इंटरनेट की सुविधा आम लोगों को मिलने लगी थी। उसी वर्ष देश में वेब पत्रकारिता की नींव पड़ी। भारत में वेब पत्रकारिता की शुरुआत का श्रेय चेन्नई से प्रकाशित अंग्रेजी अखबार 'द हिन्दू' को दिया जाता है, जिसका वेब संस्करण वर्ष 1995 में शुरू हुआ।

हिंदी दैनिक समाचार-पत्र और वेब पत्रकारिता

"नई सूचना प्रौद्योगिकी और वेब तकनीक को देश के बड़े समाचार-पत्रों ने जल्दी अपनाया। वर्ष 1990 के दशक के अंतिम वर्षों में कई प्रमुख

[1]शोधार्थी, पत्रकारिता विभाग, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, रावतभाटा रोड, कोटा-324021, राजस्थान। ईमेल : umashankarjou13@vmou.ac.in

हिंदी दैनिक अखबारों ने अपनी समाचार वेबसाइटों का विकास प्रारंभ किया। इनमें नई दुनिया समाचार-पत्र की वेबसाइट नई दुनिया डॉट कॉम (7 दिसंबर, 1996), दैनिक जागरण (17 जनवरी, 1997), हिंदी मिलाप (4 मार्च, 1997), अमर उजाला (24 जुलाई, 1998), राजस्थान पत्रिका (19 फरवरी, 1998), दैनिक भास्कर (17 अप्रैल 1998) और प्रभात खबर (7 फरवरी, 2000) शामिल थीं" (कुमार स., 2004)। "भारत में वर्ष 1998 तक 48 दैनिक समाचार-पत्र ऑनलाइन हो चुके थे। ये समाचार-पत्र अंग्रेजी के साथ-साथ अन्य भारतीय भाषाओं, जैसे- हिंदी, मराठी, मलयालम, तमिल, गुजराती, बांग्ला, कन्नड़, तेलुगू और उर्दू में थे" (ठाकुर, 2009)।

हिंदी समाचार पोर्टल का आरंभ

समाचार-पत्रों की वेबसाइटों के साथ-साथ स्वतंत्र समाचार पोर्टल भी धीरे-धीरे इंटरनेट पर दस्तक देने लगे। "हिंदी का पहला पोर्टल वेब दुनिया डॉट कॉम है, जिसकी शुरुआत 23 सितंबर, 1999 को हुई" (वेब दुनिया, 2018)। "हिंदी के एक अन्य चर्चित समाचार पोर्टल प्रभासाक्षी डॉट कॉम की शुरुआत 26 अक्तूबर, 2001 को हुई" (प्रभासाक्षी 2001)। "जहां बड़े समाचार-पत्रों ने अपनी वेबसाइटों के निर्माण एवं सुधार को बनाए रखा, वहीं, स्वतंत्र वेबसाइट्स, जिनका संबंध साहित्य-संस्कृति आदि से था, वे अपेक्षित गति से विकसित नहीं हो पायीं। इसके मूल में भाषा और फॉण्ट जैसी तकनीकी समस्याएं प्रमुख थीं" (कुमार, 2004)। हालांकि, समय के साथ बदलती प्रौद्योगिकी ने इंटरनेट पर भारतीय भाषाओं और उनकी फॉण्ट संबंधी समस्याओं को दूर कर दिया।

इंटरनेट पर हिंदी सामग्री का उपभोग

"वर्ष 2011 की जनगणना के आंकड़ों के मुताबिक भारतीय भाषाओं में हिंदी बोलने और पढ़ने वालों की संख्या सर्वाधिक करीब 44 प्रतिशत है" (सत्याग्रह, 2018)। यह महत्वपूर्ण है कि "भारतीय इंटरनेट उपयोगकर्ताओं में 21 प्रतिशत उपयोगकर्ता हिंदी सामग्री उपयोग करते हैं। इंटरनेट पर अंग्रेजी सामग्री के उपभोग में 19 प्रतिशत वृद्धि की तुलना में इंटरनेट पर हिंदी सामग्री के उपभोग में वर्ष-दर-वर्ष 94 प्रतिशत तक वृद्धि देखी गई है। टियर-2 और टियर-3 शहरों के इंटरनेट उपयोगकर्ताओं से जुड़ने के लिए प्रौद्योगिकी की दिग्गज कंपनी गूगल अब 'मैप्स' और 'सर्च' जैसे अपने उत्पादों के उपयोग को देसी भाषाओं, विशेषकर हिंदी में बढ़ाने पर विशेष ध्यान केंद्रित कर रही है" (प्रेस ट्रस्ट ऑफ इंडिया, 2018)। गूगल के नेक्स्ट बिलियन यूजर्स ऐंड पेमेंट खंड के मुताबिक "भारत में, 95 प्रतिशत वीडियो की खपत क्षेत्रीय भारतीय भाषाओं में होती है। वॉयस सामग्री नये इंटरनेट उपयोगकर्ताओं के लिए पसंदीदा इनपुट मोड के रूप में उभर रही है और भारत दुनिया में वॉयस सर्च की कुल मात्रा में अग्रणी है। वर्ष 2018 तक भारत में वॉयस सर्च में 270 प्रतिशत तक वर्ष-दर-वर्ष वृद्धि देखी गई है" (मेहता, 2019)।

ऑनलाइन अभिलेखागार और प्रभावी उपकरण

"समाचार संगठन के अभिलेखागार में बहुत-सी ऐसी सामग्री होती है, जिसे डिजिटल युग में सामने लाकर पाठकों के समक्ष पेश करना आसान हो गया है। उदाहरण के लिए स्विस अखबार 'ले टेम्प्स' को ले सकते हैं, जिसने "जोंबी" नामक एक एल्गोरिदम विकसित किया है। यह एल्गोरिदम पाठकों के समक्ष ऐसे पुराने लेखों की दैनिक सूची की सिफारिश करता है, जो वर्तमान समाचारों के चक्र में फिर से फिट हो सकते हैं। इसके साथ-साथ न्यूजरूम में किसी स्टोरी में अधिक सुर्खियां, चित्र और ब्लर्ब जोड़ने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। 'वाशिंगटन पोस्ट' जैसे मशहूर समाचार-पत्र की समाचार वेबसाइट के लिए विकसित किया गया टूल 'बैंडिटो' यह देखता है कि इस तरह का कौन-सा संयोजन प्रभावी साबित हो रहा है, और अधिक ट्रैफिक दे रहा है। इसी के फलस्वरूप विभिन्न उपयोगकर्ताओं को एक ही सामग्री के लिए अलग-अलग सुर्खियां मिलती हैं" (प्लैटनर, 2018)।

सोशल मीडिया की भूमिका

"फेसबुक या ट्विटर जैसी सोशल मीडिया वेबसाइटों के जरिये वेब माध्यमों की सामग्री को लाखों लोगों से एक साथ शेयर करके उसकी पहुँच को तत्काल विस्तारित किया जा सकता है। आज फेसबुक के पोस्ट, स्टेटस और ट्विटर की ट्वीट से भी खबरें ब्रेक की जा रही हैं" (ब्रेइनेर, 2018)। "वेबसाइट पर कंटेंट अपलोड करते ही उसे सोशल मीडिया पर शेयर करना जरूरी हो गया है। भारत में कंटेंट डिस्ट्रिब्यूशन के लिहाज से फेसबुक सोशल मीडिया का सबसे बड़ा प्लेटफॉर्म बनकर उभरा है, तो वीडियो कंटेंट शेयरिंग में यूट्यूब अग्रणी भूमिका निभा रहा है। शेयरिंग के दौरान संबंधित हैशटैग और टैगिंग जैसी विशेषताओं के उपयोग से कड़ियां कुछ इस तरह जुड़ती हैं कि कंटेंट की पहुंच का दायरा कई गुना विस्तृत हो जाता है" (बंज, 2009)। "समाचार-पत्रों में कंटेंट उत्पादन को केंद्र में रखकर ब्लॉग लेखन को प्रोत्साहित किया जाता है। ब्लॉग के जरिये भी कंटेंट को विस्तृत पाठकों तक पहुंचाया जा सकता है (कोप्पा, 2018)।"

ऑनलाइन समाचार एवं सूचना उपभोक्ता

"भारत की कुल जनसंख्या में युवाओं की आबादी वर्ष 1971 में 30.6 प्रतिशत थी, जो बढ़कर वर्ष 2011 में 34.8 प्रतिशत हो गई" (एमओएसपीआई, 2017)। "यहां यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की नई पीढ़ी स्मार्टफोन के जरिये ऑनलाइन दुनिया में दस्तक दे रही है। युवा आबादी, जिसमें छात्र और पेशेवर शामिल हैं, अपनी विभिन्न गतिविधियों के लिए इंटरनेट पर अधिक निर्भर हैं" (नवभारत टाइम्स, 2018)। "वर्ष 2018 के आरंभ में भारत में 46.2 करोड़ सक्रिय इंटरनेट उपयोगकर्ता थे। वर्ष 2021 में भारत में इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की संख्या बढ़कर 63.58 करोड़ होने का अनुमान है। उल्लेखनीय है कि भारत में 74 प्रतिशत इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की उम्र 35 वर्ष से कम है, जो युवा आबादी का प्रतिनिधित्व करते हैं" (स्टैटिस्टा, 2018)। "इंटरनेट ऐंड मोबाइल एसोसिएशन ऑफ इंडिया (आईएएमआई) की रिपोर्ट 'इंटरनेट इन इंडिया 2017' के अनुसार, जून 2018 तक देश में इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की कुल संख्या में केवल 30 प्रतिशत महिलाएं थीं" (भल्ला, 2018)।

"भारत में स्मार्टफोन उपयोगकर्ता औसतन 1 जीबी डेटा रोजाना खर्च करते हैं। जबकि, कुछ समय पहले तक यह औसत 4 जीबी प्रति माह था। एंट्री लेवल, मिड और प्रीमियम लेवल सेगमेंट के यूजर्स की डेली ऑनलाइन गतिविधियां 90 मिनट से ज्यादा होती हैं" (मानस, 2010)।

"भारत में लगभग 50 करोड़ स्मार्टफोन उपयोगकर्ता अपना अधिकांश समय (72 प्रतिशत) मोबाइल फोन पर नेट सर्फिंग में बिताते हैं। समाचार और मनोरंजन दो ऐसे प्रमुख क्षेत्र हैं, जिनके लिए अधिकांश उपभोक्ता इंटरनेट पर विचरण करते हैं" (जेहरा, 2017)। "भारत में कुल इंटरनेट उपयोगकर्ताओं में से 87 प्रतिशत नियमित उपयोगकर्ता हैं। अधिक संख्या में उपयोगकर्ता इंटरनेट का उपयोग करने के लिए मोबाइल फोन का उपयोग करते हैं" (इकॉनोमिक टाइम्स, 2019)।

वेब पत्रकारिता में अवसर एवं चुनौतियां

अवसरों के साथ इंटरनेट पत्रकारिता के लिए चुनौतियां भी लाया है। अमेरिका, यूरोप, लैटिन अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड जैसे देशों में अखबारों की प्रसार संख्या में गिरावट को इंटरनेट के विस्तार से जोड़कर देखा जाता है। "भारत में इंटरनेट की धीमी गति और सीमित आबादी तक इसकी पहुंच समाचार पोर्टलों के विस्तार से जुड़ी एक अन्य प्रमुख बाधा है। वेब आधारित समाचार संगठनों के समक्ष एक चुनौती प्रौद्योगिकी में हो रहे बदलावों और नए वेब ऐप्लीकेशन के अनुसार खुद को अनुकूलित करने से संबंधित है। वेब समाचार उपभोक्ताओं के अनुभव को बेहतर बनाए रखने के लिए मीडिया संस्थानों को बदलते वक्त के साथ अपने स्वरूप को अनुकूलित करने के लिए निवेश करते रहते रहना आवश्यक है" (बंसल, 2015)।

शोध विधि

अध्ययन में स्नातक, परा-स्नातक और पीएचडी के 189 छात्र एवं छात्राओं को दिल्ली के चार प्रमुख केन्द्रीय विश्वविद्यालयों से उद्देश्यपूर्ण निदर्शन पद्धति से चयनित किया गया है। इनमें दिल्ली विश्वविद्यालय, जामिया मिल्लिया इस्लामिया विश्वविद्यालय, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय और इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय शामिल हैं। विवरणात्मक सर्वेक्षण और विषयवस्तु विश्लेषण से अध्ययन को विस्तारित किया गया है। स्वनिर्मित 'वेब आधारित समाचारों के उपभोग की अभिरुचि संबंधी प्रश्नावली' तथा अर्ध-संरचनात्मक साक्षात्कार से प्राथमिक आंकड़े एकत्रित किए गए हैं। अध्ययन में शामिल उत्तरदाताओं की प्रतिक्रिया का प्रतिशत विश्लेषण किया गया है। अध्ययन में 14 बंद एवं 1 खुले प्रश्न समेत कुल 15 प्रश्नों की प्रश्नावली का प्रयोग किया गया है। प्रश्नों का निर्माण लिकर्ट स्केल यानी पांच रेटिंग स्केल पर किया गया है। वर्ष 2014 की राष्ट्रीय युवा नीति में 15 से 29 वर्ष तक के लोगों को युवा के रूप में परिभाषित किया गया है, जबकि भारत में विश्वविद्यालय स्तर पर छात्रों के प्रवेश की औसत उम्र 18 वर्ष है। इसीलिए, अध्ययन में न्यूनतम 18 वर्ष और अधिकतम 29 वर्ष के युवा उत्तरदाताओं को शामिल किया गया है।

इन चारों विश्वविद्यालयों में देश के विभिन्न हिस्सों के अलग-अलग पृष्ठभूमियों से जुड़े छात्र पढ़ने आते हैं। अध्ययन में, चारों- विश्वविद्यालयों के स्नातक, परा-स्नातक और पीएचडी छात्रों को इसीलिए चुना गया है, ताकि युवाओं की विविध सामाजिक एवं शैक्षिक पृष्ठभूमि को प्रस्तुत अध्ययन में प्रतिनिधित्व मिल सके। अध्ययन में ऐसे छात्र-छात्राओं को शामिल किया गया है, जो कम-से-कम 24 घंटे में एक बार इंटरनेट सर्फिंग करते हैं। अध्ययन में शामिल इन प्रतिभागियों से समाचार, सूचनाओं और मनोरंजन के लिए समाचार-पत्रों के वेब पोर्टल के उपयोग से संबंधित तथ्यों के बारे में जानकारी एकत्रित की गई है। न्यादर्शों के चयन के लिए अध्ययन में शामिल प्रत्येक विश्वविद्यालय परिसर में स्क्रीनिंग फॉर्म युक्त 60 प्रश्नावली वितरित की गई। इस तरह चारों विश्वविद्यालय परिसरों में कुल 240 प्रश्नावलियां वितरित की गईं, जिनमें से सुरक्षित वापस प्राप्त 210 प्रश्नावलियों में से 189 छात्र-छात्राओं की प्रश्नावलियां निर्धारित मापदंडों के अनुकूल पाई गई। इसीलिए, 189 उत्तरदाताओं को ही अंततः अध्ययन में शामिल किया गया है।

उत्तरदाताओं का लिंग के आधार पर परिचय

लिंग	संख्या	प्रतिशत
स्त्री	85	45
पुरुष	104	55
कुल	189	100

तालिका सं.1: उत्तरदाताओं का लिंग के आधार पर परिचय

उत्तरदाताओं का आयु के आधार पर परिचय

आयु (वर्ष में)	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
18-20	82	43
21-23	57	30
24-26	31	17
27-29	19	10
कुल	189	100

तालिका सं. 2 : उत्तरदाताओं का आयु के आधार पर परिचय

चयनित न्यादर्शों को चार आयु वर्गों 18-20 वर्ष, 21-23 वर्ष, 24-26 वर्ष और 27-29 वर्ष में वर्गीकृत किया गया है। अध्ययन में उद्देश्यपूर्ण निदर्शन पद्धति से चयनित 06 विशेषज्ञों से साक्षात्कार किया गया है। इनमें 02 विशेषज्ञ वेब पत्रकारिता और 02 विशेषज्ञ मीडिया शोध तथा 02 विशेषज्ञ शिक्षण से जुड़े हैं। अध्ययन में, ऐसे विशेषज्ञों का चयन किया गया है, जिनकी शैक्षिक योग्यता पत्रकारिता एवं जनसंचार में परा-स्नातक अथवा अधिक है और वे वेब पत्रकारिता, पत्रकारिता एवं जनसंचार शोध या फिर पत्रकारिता एवं जनसंचार शिक्षण से 10 वर्ष या अधिक समय से जुड़े हैं।

रजिस्ट्रार न्यूजपेपर्स ऑफ इंडिया (आरएनआई) के वर्ष 2016-17 के आंकड़ों के मुताबिक दिल्ली से प्रकाशित एक लाख से अधिक प्रसार संख्या वाले शीर्ष चार समाचार-पत्रों में आज समाज, नवभारत टाइम्स, दैनिक जागरण और पंजाब केसरी शामिल हैं"। दिल्ली में सर्वाधिक प्रसार वाले इन चारों समाचार-पत्रों के वेब पोर्टलों को अध्ययन में शामिल किया गया है। आरएनआई ने प्रसार संख्या के आधार पर समाचार-पत्रों को तीन श्रेणियों- छोटे (25,000 प्रतियां), मध्यम (25,001-75,000 प्रतियां) और बड़े (75,000 से अधिक प्रतियां) में वर्गीकृत किया है। दिल्ली से प्रकाशित इन समाचार-पत्रों की इंटरनेट पर मौजूदगी का पता लगाने के लिए उन्हें इंटरनेट पर सर्च किया गया है।

एक लाख से अधिक प्रसार वाले दिल्ली से प्रकाशित हिंदी दैनिक समाचार पत्र		
क्र.सं.	**समाचार पत्र**	**प्रसार संख्या**
1.	आज समाज	6,36,935
2.	नवभारत टाइम्स	6,33,450
3.	दैनिक जागरण	4,21,455
4.	पंजाब केसरी	3,64,934
5.	हिंदुस्तान	2,97,630
6.	विराट वैभव	2,94,500
7.	अमर उजाला	2,19,684
8.	लोकसत्य	1,82,795
9.	समय जगत	1,51,000
10.	दबंग दुनिया	1,40,839
11.	राज एक्सप्रेस	1,39,772
12.	अमृतवर्षा	1,29,850
13.	अमृतवर्षा (सांध्य)	1,29,850
14.	अमर भारती	1,28,312
15.	वीर अर्जुन	1,26,610
16.	न्यू इंडिया हेराल्ड	1,21,100
17.	प्रदेश टुडे	1,13,338
18.	एक्शन इंडिया	1,03,402

तालिका-3: एक लाख से अधिक प्रसार वाले दिल्ली से प्रकाशित हिन्दी दैनिक समाचार पत्र (स्रोत-आरएनआई)

परिणाम एवं विश्लेषण

"वर्ष 2016-17 में दिल्ली में 685 हिंदी दैनिक समाचार-पत्र प्रकाशित हो रहे थे (आरएनआई, 2016)।" ऑनलाइन सर्च करने पर इन समाचार-पत्रों में से केवल 15 प्रतिशत (102 समाचार-पत्र) ही इंटरनेट पर उपलब्ध पाए गए। प्रस्तुत अध्ययन में शामिल दिल्ली से प्रकाशित चारों हिंदी दैनिक समाचार-पत्र आज समाज, नवभारत टाइम्स, दैनिक जागरण और पंजाब केसरी इंटरनेट पर मौजूद हैं। इस अध्ययन में एक महत्वपूर्ण तथ्य यह पता चला है कि दिल्ली से प्रकाशित होने वाले हिंदी दैनिक समाचार-पत्रों में एक लाख से अधिक प्रसार संख्या वाले सिर्फ 18 समाचार पत्र हैं। ऑनलाइन सर्च से स्पष्ट हुआ कि एक लाख से अधिक प्रसार वाले ये सभी समाचार-पत्र इंटरनेट पर मौजूद हैं।

वर्ष 2004-05 से 2016-17 तक भारत में दैनिक समाचार पत्रों की प्रसार संख्या			
वर्ष	**समाचार पत्रों की संख्या**	**प्रसार संख्या**	**वार्षिक वृद्धि (+) (-) %**
2004-05	1834	7,86,89,266	(+) 7.0
2005-06	2130	8,88,63,048	(+) 12.9
2006-07	2337	9,88,37,248	(+) 11.22
2007-08	2566	10,57,91,199	(+) 7.04
2008-09	3386	13,58,05,315	(+) 28.37
2009-10	3909	16,23,12,686	(+) 19.52
2010-11	4396	17,56,65,243	(+) 8.23
2011-12	4929	19,69,51,390	(+) 12.12
2012-13	5767	22,43,37,652	(+) 13.91
2013-14	6730	26,42,89,811	(+) 17.81
2014-15	7871	29,63,02,606	(+) 12.11
2015-16	8905	37,14,57,696	(+) 25.36
2016-17	9061	27,53,61,253	(-) 25.87

तालिका 4: वर्ष 2004-05 से 2016-17 तक दैनिक समाचार-पत्रों की प्रसार संख्या (स्रोत : प्रेस इन इंडिया, 2016-17, आरएनआई)

इंटरनेट विस्तार और समाचार-पत्रों का प्रसार

तालिका-4 से स्पष्ट है कि भारत में दैनिक समाचार-पत्रों की संख्या और प्रसार इंटरनेट के आगमन के बावजूद बढ़ते रहे हैं। दैनिक अखबारों की संख्या और प्रसार में यह बढ़ोतरी वर्ष 2004-05 से 2016 तक निरंतर देखने को मिलती है। वर्ष 2004-05 में कुल 1,834 दैनिक अखबार प्रकाशित होते थे। वर्ष 2016-17 में यह संख्या बढ़कर 9,061 हो गई। वर्ष 2004-05 में दैनिक अखबारों का प्रसार 7,86,89,266 था। वर्ष 2016-17 में प्रसार संख्या 27,53,61,253 हो गई, हालांकि, 2015-16 के 37,14,57,296 की तुलना में वर्ष 2016-17 में दैनिक अखबारों की प्रसार संख्या में 25.87 प्रतिशत की गिरावट दर्ज की गई।

ऑनलाइन समाचार/सूचना उपभोग प्रवृत्तियां

प्रश्न सं.1 के संदर्भ में उत्तरदाताओं की प्रतिक्रिया का विश्लेषण

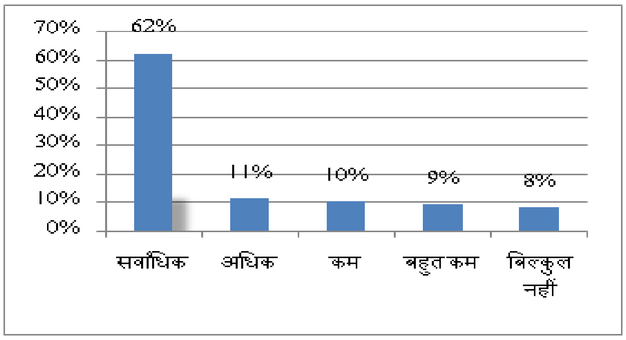

ग्राफ सं. 1 : प्रश्न सं. 1 के सन्दर्भ में उत्तरदाताओं की प्रतिक्रिया

ग्राफ सं. 1 के अनुसार, 62 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने माना है कि वे इंटरनेट का सर्वाधिक उपयोग समाचार, विचार अथवा सूचनाएं प्राप्त करने के लिए करते हैं, जबकि, 11 प्रतिशत उत्तरदाता अधिक, 10 प्रतिशत उत्तरदाता कम, 9 प्रतिशत उत्तरदाता बहुत कम और 8 प्रतिशत उत्तरदाता इंटरनेट का उपयोग बिल्कुल नहीं करते हैं। अध्ययन में शामिल कुल 45 प्रतिशत महिला एवं 55 प्रतिशत पुरुष उत्तरदाताओं में से 28 प्रतिशत महिलाएं एवं 34 प्रतिशत पुरुष सर्वाधिक, 3 प्रतिशत महिलाएं एवं 5 प्रतिशत पुरुष अधिक, 3 प्रतिशत महिलाएं एवं 6 प्रतिशत पुरुष कम, 5 प्रतिशत महिलाएं एवं 5 प्रतिशत पुरुष बहुत कम और 6 प्रतिशत महिलाएं एवं 5 प्रतिशत पुरुष इंटरनेट का उपयोग समाचार एवं सूचनाएं प्राप्त करने के लिए बिल्कुल नहीं करते हैं। वर्ष 2018 में, रॉयटर्स इंस्टीट्यूट द्वारा भारत में डिजिटल मीडिया की स्थिति पर प्रकाशित एक अन्य रिपोर्ट में भी इसी तरह की प्रवृत्ति उभरकर आई है। रॉयटर्स इंस्टीट्यूट की इस रिपोर्ट में बताया

गया है - "अंग्रेजी बोलने वाले 35 वर्ष तक की उम्र के 56 प्रतिशत युवा समाचारों के उपभोग के लिए इंटरनेट का उपयोग करते हैं, और इंटरनेट समाचार प्राप्त करने के लिए युवाओं के बीच सर्वाधिक प्रचलित माध्यम है (अनीज, नेयाजी, कैलोगेरोपॉलस व निलेसन, 2018)।"

प्रश्न सं.2 के संदर्भ में उत्तरदाताओं की प्रतिक्रिया का विश्लेषण

अध्ययन में शामिल 63 प्रतिशत उत्तरदाता इंटरनेट पर हिंदी अखबार/ई-पेपर पढ़ना सर्वाधिक पसंद करते हैं, जिनमें 29 प्रतिशत महिलाएं एवं 34 प्रतिशत पुरुष शामिल हैं। ग्राफ सं. 1.1 के अनुसार, इस संबंध में, 18 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने अधिक, 11 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कम, 5 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने बहुत कम और 3 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इंटरनेट पर हिंदी अखबार/ई-पेपर पढ़ने को लेकर बिल्कुल नहीं में अपनी प्रतिक्रिया दी है।

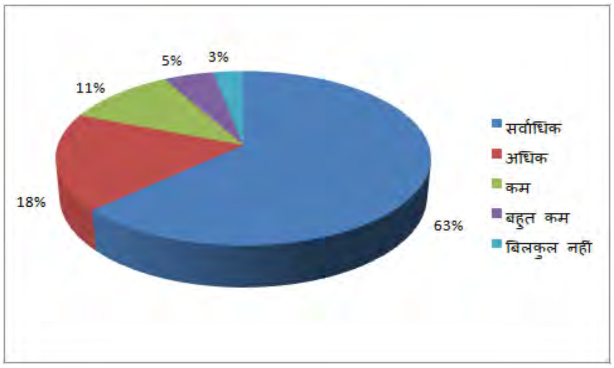

ग्राफ सं. 2 : प्रश्न सं. 2 के सन्दर्भ में उत्तरदाताओं की प्रतिक्रिया

प्रश्न सं. 2 में, 29 प्रतिशत महिलाओं ने सर्वाधिक, 7 प्रतिशत महिलाओं ने अधिक, 6 प्रतिशत महिलाओं ने कम, 2 प्रतिशत महिलाओं ने बहुत कम एवं 1 प्रतिशत महिलाओं ने बिल्कुल नहीं में मत व्यक्त किया है, जबकि 34 प्रतिशत पुरुष उत्तरदाताओं ने सर्वाधिक, 11 प्रतिशत ने अधिक, 5 प्रतिशत ने कम, 3 प्रतिशत ने बहुत कम, जबकि 2 प्रतिशत ने बिल्कुल नहीं में उत्तर दिया है। स्पष्ट है कि अधिकतर पुरुष एवं महिलाएं दोनों इंटरनेट पर हिंदी अखबार/ई-पेपर पढ़ना पसंद करते हैं। आयु के आधार पर विश्लेषण से पता चलता है कि 18-20 वर्ष आयु वर्ग के 30 प्रतिशत, 21-23 वर्ष के 18 प्रतिशत, 24-26 वर्ष के 11 प्रतिशत और 27-29 वर्ष के 04 प्रतिशत उत्तरदाता इंटरनेट का उपयोग हिंदी अखबार/ ई-पेपर पढ़ने के लिए पसंद करते हैं।

प्रश्न सं.3 के संदर्भ में उत्तरदाताओं की प्रतिक्रिया का विश्लेषण

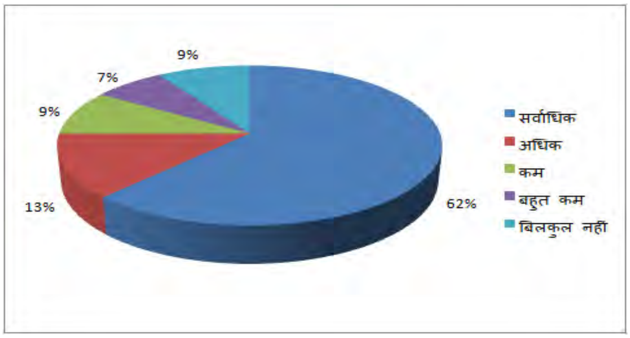

ग्राफ सं. 3 : प्रश्न सं. 3 के सन्दर्भ में उत्तरदाताओं की प्रतिक्रिया

ग्राफ सं. 3 से स्पष्ट है कि प्रश्न सं. 3 में उत्तरदाताओं की कुल संख्या के 62 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने सर्वाधिक, 13 प्रतिशत ने अधिक, 9 प्रतिशत ने कम, 7 प्रतिशत ने बहुत कम और 9 प्रतिशत ने बिल्कुल नहीं पर अपना मत व्यक्त किया है।

स्पष्ट है कि अधिक संख्या में लोग समाचार, विचार, सूचनाएं प्राप्त करने के लिए मोबाइल डिवाइस अथवा स्मार्टफोन का उपयोग करते हैं। रॉयटर्स इंस्टीट्यूट द्वारा किए गए एक अन्य अध्ययन में भी इसी तरह की प्रवृत्तियां उभरकर आई हैं। इंडियन डिजिटल न्यूज रिपोर्ट-2019 के अनुसार, भारत में 68 प्रतिशत इंटरनेट उपयोगकर्ता अपने स्मार्टफोन पर समाचार प्राप्त करना पसंद करते हैं।

प्रश्न सं.4 के संदर्भ में उत्तरदाताओं की प्रतिक्रिया का विश्लेषण

ग्राफ सं. 1.3 से स्पष्ट है कि उत्तरदाताओं की कुल संख्या के 53 प्रतिशत ने सर्वाधिक, 8 प्रतिशत ने अधिक, 13 प्रतिशत ने कम, 11 प्रतिशत ने बहुत कम और 15 प्रतिशत ने बिल्कुल नहीं पर अपना मत व्यक्त किया है। स्पष्ट है कि अधिक संख्या में लोग समाचार प्राप्त करने के

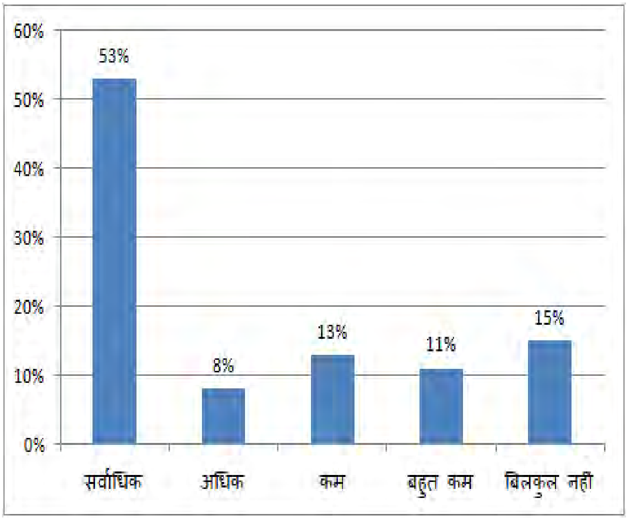

लिए एप का उपयोग करते हैं।

ग्राफ सं. 4 : प्रश्न सं. 4 के सन्दर्भ में उत्तरदाताओं की प्रतिक्रिया

23 प्रतिशत महिलाएं एवं 30 प्रतिशत पुरुष समाचार प्राप्त करने के लिए किसी न किसी एप का उपयोग करते हैं। विभिन्न आयु वर्गों में 18-20 वर्ष के 28 प्रतिशत, 21-23 वर्ष के 15 प्रतिशत, 24-26 वर्ष के 6 प्रतिशत और 27-29 वर्ष के 4 प्रतिशत उत्तरदाता ऑनलाइन समाचार प्राप्त करने के लिए एप का उपयोग करते हैं।

प्रश्न सं.5 के संदर्भ में उत्तरदाताओं की प्रतिक्रिया का विश्लेषण

प्रश्न सं.5 के उत्तरदाताओं की प्रतिक्रिया के अनुसार उत्तरदाताओं की कुल संख्या के 54 प्रतिशत ने सर्वाधिक, 12 प्रतिशत ने अधिक, 10 प्रतिशत ने कम, 11 प्रतिशत ने बहुत कम और 13 प्रतिशत ने बिल्कुल नहीं पर अपना मत व्यक्त किया है। स्पष्ट है कि 54 प्रतिशत उत्तरदाता सोशल मीडिया के जरिये न्यूज पोर्टल की सामग्री प्राप्त करना पसंद करते हैं।

प्रश्न सं.6 के संदर्भ में उत्तरदाताओं की प्रतिक्रिया का विश्लेषण

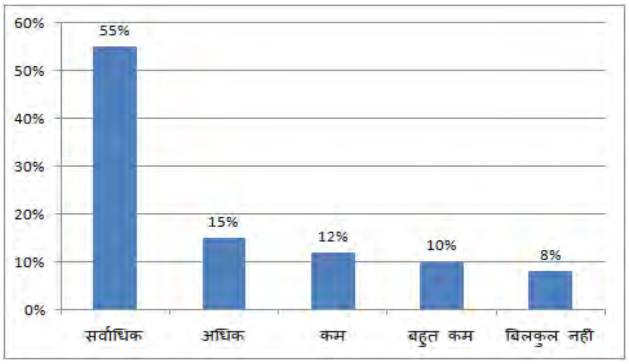

ग्राफ सं. 5 : प्रश्न सं.6 के सन्दर्भ में उत्तरदाताओं की प्रतिक्रिया

कंटेंट की विश्वसनीयता के मामले में 55 प्रतिशत लोग स्वतंत्र समाचार पोर्टल के बजाय अखबारों के वेब पोर्टल या उनके ऑनलाइन संस्करण को ज्यादा विश्वसनीय मानते हैं। ग्राफ 5 से स्पष्ट है कि उत्तरदाताओं की कुल संख्या के 55 प्रतिशत ने सर्वाधिक, 15 प्रतिशत ने अधिक, 12 प्रतिशत ने कम, 10 प्रतिशत ने बहुत कम और 8 प्रतिशत ने बिल्कुल नहीं पर मत व्यक्त किया है। अतः स्पष्ट है कि अधिक लोगों को अन्य समाचार पोर्टलों की अपेक्षा अखबारों के वेब पोर्टल या उनके ऑनलाइन संस्करण ज्यादा विश्वसनीय लगते हैं।

प्रश्न सं.7 के संदर्भ में उत्तरदाताओं की प्रतिक्रिया का विश्लेषण

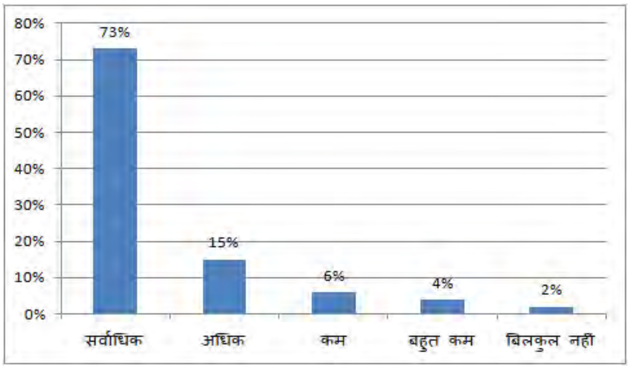

ग्राफ सं. 6: प्रश्न संख्या-11 के सन्दर्भ में उत्तरदाताओं की प्रतिक्रियाओं का विश्लेषण

ग्राफ सं. 6 के अनुसार, 73 प्रतिशत उत्तरदाता ऑनलाइन समाचार माध्यमों की आर्काइवल प्रकृति के कारण इसकी उपयोगिता को समाचार-पत्रों की तुलना में सर्वाधिक बेहतर मानते हैं। अध्ययन में शामिल 41 प्रतिशत पुरुष एवं 32 प्रतिशत महिलाएं मानती हैं कि ऑनलाइन समाचार माध्यमों की आर्काइवल प्रकृति के कारण इसकी उपयोगिता मुद्रित समाचार पत्रों की अपेक्षा अधिक होती है।

प्रश्न सं.8, प्रश्न सं.9 एवं प्रश्न सं.10 के संदर्भ में उत्तरदाताओं की प्रतिक्रिया का विश्लेषण

प्रश्न सं.8 की प्रतिक्रिया में 63 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने माना है कि वे इंटरनेट पर अपने मूल राज्य के समाचार-पत्रों के वेब पोर्टल देखना पसंद करते हैं। प्रश्न सं.9 में उत्तरदाताओं की कुल संख्या के 56 प्रतिशत ने सर्वाधिक, 11 प्रतिशत ने अधिक, 7 प्रतिशत ने कम, 5 प्रतिशत ने बहुत कम और 21 प्रतिशत ने बिल्कुल नहीं कहा है। स्पष्ट है कि अधिकतर लोग ऑनलाइन माध्यमों पर पॉडकास्ट देखना या सुनना पसंद करते हैं, हालांकि 21 प्रतिशत लोग पॉडकास्ट बिल्कुल पसंद नहीं करते हैं। प्रश्न सं.10 की प्रतिक्रिया देते हुए 66 प्रतिशत उत्तरदाता कहते हैं कि वे ऑनलाइन न्यूज पोर्टलों की सामग्री प्राप्त करने के लिए पेड सब्सक्रिप्शन लेने के पक्ष में बिल्कुल नहीं हैं।

प्रश्न सं.11, प्रश्न सं.12, प्रश्न सं.13, प्रश्न सं.14 एवं प्रश्न सं.15 के संदर्भ में उत्तरदाताओं की प्रतिक्रिया का विश्लेषण

कुल उत्तरदाताओं में से 37 प्रतिशत नवभारत टाइम्स, 31 प्रतिशत दैनिक जागरण, 9 प्रतिशत पंजाब केसरी, 5 प्रतिशत आज समाज के पोर्टल को पढ़ना पसंद करते हैं। इन चारों अख़बारों के वेब पोर्टल्स के अलावा 18 प्रतिशत उत्तरदाता अन्य समाचार पोर्टल को पढ़ना पसंद करते हैं। अध्ययन में शामिल 32 प्रतिशत उत्तरदाता नवभारत टाइम्स, 36 प्रतिशत दैनिक जागरण, 10 प्रतिशत पंजाब केसरी, 3 प्रतिशत आज समाज और 19 प्रतिशत अन्य हिंदी समाचार पत्रों के वेब पोर्टल पर खबरों की प्रस्तुति बेहतर मानते हैं, जबकि 33 प्रतिशत उत्तरदाताओं को दैनिक जागरण, 29 प्रतिशत उत्तरदाताओं को नवभारत टाइम्स, 16 प्रतिशत को पंजाब केसरी और 3 प्रतिशत उत्तरदाताओं को आज समाज के पोर्टल पर अपनी रुचि की खबरें मिलती हैं। इसके साथ ही, 19 प्रतिशत उत्तरदाताओं को अन्य पोर्टलों पर अपनी रुचि की खबरें प्राप्त होती हैं। कुल उत्तरदाताओं में से 32 प्रतिशत दैनिक जागरण, 29 प्रतिशत नवभारत टाइम्स, 17 प्रतिशत पंजाब केसरी, 5 प्रतिशत आज समाज और 17 प्रतिशत उत्तरदाता अन्य समाचार पत्रों के पोर्टल के अपडेशन को बेहतर मानते हैं।

साक्षात्कारदाताओं की प्रतिक्रिया का विश्लेषण

इंटरनेट के हस्तक्षेप से पत्रकारिता के स्वरूप पर व्यापक असर पड़ा है। इंटरनेट ने रिपोर्टिंग के तौर-तरीकों, खबरों के उत्पादन, वितरण और उपभोग को बड़े पैमाने पर प्रभावित किया है। इंटरनेट के रूप में एक ऐसा मंच उभरकर आया है, जिसने पत्रकारिता के मुद्रित माध्यमों से लेकर ऑडियो, विजुअल समेत विभिन्न रूपों को अपने भीतर समाहित कर लिया है। समाचारों-पत्रों के डिजिटल मंच का स्वरूप कुछ इस रूप में उभरा है, जहां खबर ब्रेक करने की आपाधापी समाचार टेलीविजन चैनलों से कम नहीं है, हालांकि अधिक क्लिक पाने की होड़ में खबरों को सनसनीखेज बनाकर परोसने की प्रवृत्ति बढ़ी है। वेब पत्रकारों पर भी अधिक खबरें लिखने और उन खबरों के माध्यम से अधिक क्लिक पाने का दबाव रहता है, जिसके कारण पत्रकारों में तनाव की स्थिति उभर रही है।

समाचार पोर्टल्स का निरंतर अपडेशन एक अनिवार्य शर्त है। बड़े समाचार-पत्रों में खबरों के 24 घंटे अपडेशन के लिए विभिन्न पालियों में पत्रकार कार्य करते हैं, हालांकि छोटे और मध्यम स्तर के समाचार-पत्रों में प्रायः निरंतर अपडेशन नहीं होता है। इन दोनों श्रेणियों के समाचार-पत्रों की वेबसाइटों के निरंतर अपडेट न होने के लिए सीमित निवेश एवं संसाधनों की कमी को जिम्मेदार माना जाता है। विशेषज्ञों का मानना है कि समाचार-पत्रों की बढ़ती संख्या के बावजूद छोटे एवं मध्यम आकार के समाचार-पत्रों की वेबसाइटों के लिए बड़े समाचार-पत्रों की वेबसाइटों से प्रतिस्पर्धा

कर पाना संभव नहीं है। बड़े समाचार-पत्रों के डिजिटल न्यूजरूम में दर्जनों पत्रकार एक ही समय में सैकड़ों खबरें तैयार करके वेबसाइट पर अपलोड करने में जुटे होते हैं, जबकि छोटे एवं मध्यम समाचार-पत्रों में ऐसी स्थिति देखने को नहीं मिलती है।

इंटरनेट की पहुंच बढ़ने के साथ-साथ लोगों की ऑनलाइन गतिविधियों का औसत समय भी बढ़ा है। इसके पीछे मुख्य रूप से टैबलेट एवं स्मार्टफोन जैसे मोबाइल उपकरणों के बढ़ते उपयोग की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। हालांकि, भारत की करीब आधी आबादी आज भी इंटरनेट से पूरी तरह नहीं जुड़ पाई है। इस डिजिटल डिवाइड को दूर करने के लिए सरकार डिजिटल इंडिया जैसे कार्यक्रम चला रही है और देश के प्रत्येक गांव को हाई-स्पीड इंटरनेट से जोड़ने के प्रयास किए जा रहे हैं। ऐसे में यह सवाल उठना स्वाभाविक है कि इंटरनेट का प्रसार बढ़ता है, तो क्या पश्चिमी देशों की तरह भारत में भी अखबारों के बंद होने की घटनाएं भविष्य में देखने को मिलेंगी? इस पर विशेषज्ञों की मिलीजुली प्रतिक्रिया रही है।

एक तर्क यह है कि भारत की जनसांख्यिकीय और भाषाई विविधता के कारण मुद्रित समाचार-पत्रों का अस्तित्व इंटरनेट पत्रकारिता के विस्तार के बावजूद देश में बना रहेगा। भारतीय प्रिंट मीडिया की एक प्रमुख विशेषता उसका राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय स्तर पर बंटा होना है। इंटरनेट उपयोगकर्ताओं और वेब समाचारों के उपभोक्ताओं की संख्या बढ़ने के साथ ही समाचार-पत्रों के नए संस्करण टियर-टू और टियर-थ्री स्तर के शहरों में स्थानांतरित हो रहे हैं। आगामी वर्षों में इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की संख्या और साक्षरता दर बढ़ने से शहरी वेब समाचार के उपभोक्ताओं की संख्या मुख्य रूप से बढ़ सकती है। वहीं, समाचार पत्र मुख्य रूप से नवसाक्षरों का माध्यम बनकर टियर-टू और टियर-थ्री स्तर के शहरों में उभर सकते हैं। अखबारों की प्रसार संख्या में वर्ष 2016-17 के दौरान अचानक 25 प्रतिशत से अधिक गिरावट के लिए इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की संख्या में वृद्धि और मोबाइल उपकरणों के प्रचलन में बढ़ोतरी को जिम्मेदार माना जाता है।

इंटरनेट का उपयोग बढ़ने के बावजूद समाचार एवं सूचना उपभोग के लिए इंटरनेट का उपयोग करने वाली महिलाओं की संख्या पुरुषों की तुलना में कम है। इस लैंगिक अंतर के कारणों को विस्तृत रूप से समझने की आवश्यकता है। हालांकि, इंटरनेट पर सक्रिय युवाओं में विज्ञापनदाताओं को अपना उपभोक्ता वर्ग मिल सकता है और वेब माध्यमों को राजस्व बढ़ाने के अवसर मिल सकते हैं।

मशहूर अमेरिकी पत्रिका न्यूजवीक का मुद्रित संस्करण बंद हुआ, तो उसे अमेरिका में अखबारों का प्रकाशन बंद होने के फिलिप मेयर के अनुमान से जोड़कर देखा गया। अखबारों के बारे में बदलती धारणा के लिए ऑनलाइन माध्यमों की ओर पाठकों के बढ़ते रुझान, अखबारों की प्रसार संख्या में गिरावट और विज्ञापनों से समाचार-पत्रों को होने वाली आमदनी में कमी को मुख्य रूप से जिम्मेदार माना जाता है। इसके साथ ही, ऑनलाइन माध्यमों के विस्तार के मूल में कई अन्य कारण भी महत्वपूर्ण हैं। ऑनलाइन समाचार माध्यमों को अखबारों की तरह न तो विशालकाय सर्कुलेशन चेन की जरूरत होती है और न ही यहां प्रिंटिंग मशीन लगाने के लिए भारी-भरकम खर्च की आवश्यकता पड़ती है। अखबार या पत्रिका जैसे मुद्रित माध्यमों की अपेक्षा ऑनलाइन समाचार पत्र के जरिये कम लागत में विस्तृत पाठकों तक पहुंचा जा सकता है। ये कुछ ऐसे कारण हैं, जो इंटरनेट को भविष्य के सशक्त माध्यम के रूप में पेश करते हैं।

निष्कर्ष

अध्ययन से स्पष्ट है कि वर्ष 2006 से वर्ष 2017 के कालखंड में समाचार-पत्रों की संख्या एवं उनका प्रसार बढ़ने के बावजूद इन समाचार-पत्रों के इंटरनेट पर उपलब्ध होने की गति बेहद धीमी है। अध्ययन से पता चला है कि दिल्ली से प्रकाशित होने वाले 685 हिंदी दैनिक समाचार-पत्रों में से सिर्फ 102 समाचार-पत्र इंटरनेट पर मौजूद हैं। एक महत्वपूर्ण तथ्य यह भी उभरकर आया है कि दुनियाभर में अखबारों की प्रसार संख्या कम होने और समाचार-पत्रों के मुद्रित संस्करण बंद होने की घटनाओं के बावजूद भारत में समाचार-पत्रों की संख्या और उनके प्रसार दोनों में निरंतर बढ़ोतरी होती रही है। इसी आधार पर माना जा रहा है कि इंटरनेट आधारित वेब पत्रकारिता के बावजूद निकट भविष्य में समाचार पत्रों का अस्तित्व बना रहेगा। भारत में समाचार पत्र-पत्रिकाओं की कुल प्रसार संख्या में हिंदी के विभिन्न आवधिक प्रकाशनों की भागीदारी सर्वाधिक 48.96 प्रतिशत है। इस मामले में 11.59 प्रतिशत प्रसार संख्या के साथ अंग्रेजी के आवधिक प्रकाशन दूसरे स्थान पर हैं। दैनिक समाचार पत्रों की कुल प्रसार संख्या में भी हिंदी अखबारों की प्रसार संख्या सर्वाधिक 46.09 प्रतिशत है। इससे स्पष्ट है कि हिंदी भाषी उपभोक्ता वर्ग विस्तृत है।

स्पष्ट है कि हिंदी के समाचार-पत्रों के साथ-साथ उनके वेब पोर्टल के प्रबंधकों, पत्रकारों, पाठकों और विज्ञापनदाताओं के लिए अवसर मौजूद हैं। इंटरनेट की पहुंच बढ़ने के साथ हिंदी समेत अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में ऑनलाइन मीडिया की पहुंच और प्रभाव बढ़ सकता है। इंटरनेट के आगमन ने समाचारों के उत्पादन और उपभोग के तौर-तरीकों को बदल दिया है। पत्रकारों की भूमिका अब मल्टीमीडिया पत्रकार के रूप में बदल रही है। वेब रिपोर्टर को रिपोर्ट फाइल करने के लिए दफ्तर जाकर कॉपी लिखने का बंधन नहीं है। वह इंटरनेट युक्त अपने मोबाइल उपकरण पर समाचार कॉपी लिखकर अपने समाचार संपादक को भेज सकता है। इसी तरह, पाठक भी टेलीविजन और समाचार पत्रों की डेडलाइन से बंधे नहीं हैं। इंटरनेट पर वे अपनी सुविधा के अनुसार जब चाहें समाचारों को देख, पढ़ और सुन सकते हैं। मोबाइल उपकरणों पर हर पल मिलने वाले नोटिफिकेशन की मदद से पाठक हर क्षण की खबरों से अपडेट रहते हैं। इसके साथ ही वे इन नोटिफिकेशनों को जब चाहें प्रतिबंधित भी कर सकते हैं। इंटरनेट ने पाठकों को भी पत्रकार की भूमिका में लाकर खड़ा कर दिया है और वे ब्लॉग, सोशल मीडिया या फिर सिटिजन जर्नलिस्ट के रूप में सूचनाओं के त्वरित प्रसार का माध्यम बन सकते हैं। इसके अलावा, समाचार पोर्टल में पाठक अपनी प्रतिक्रिया त्वरित रूप से दर्ज करा सकते हैं। इंटरनेट पर मौजूद समाचार-पत्रों के पास एक अवसर यह होता है कि वे सोशल मीडिया, न्यूजलेटर और ऐप्लीकेशन के जरिये अधिक पाठकों तक पहुंच सकते हैं, हालांकि इंटरनेट के हस्तक्षेप के कारण परंपरागत रूप से प्रभावी संपादक की गेटकीपिंग की भूमिका पर नकारात्मक असर पड़ा है। इंटरनेट ने आम लोगों को भी सूचनाओं एवं समाचारों के प्रसारक की

भूमिका में ला दिया है, जिससे खबरों को फिल्टर करने की अपरिहार्य प्रक्रिया प्रभावित हुई है। इस कारण फेक न्यूज और तथ्यों की पड़ताल किए बिना खबरों को सोशल मीडिया जैसे माध्यमों से प्रसारित करने की प्रवृत्ति बढ़ी है।

सुझाव

वर्तमान सूचना प्रौद्योगिकी युग में इंटरनेट से दूरी अखबारों के अस्तित्व के लिए चुनौतीपूर्ण हो सकती है। इंटरनेट पर अखबारों की मौजूदगी पाठकों के बीच उनके विस्तार को आसान बना सकती है, पर इसके साथ-साथ पाठकों की रुचियों का ख्याल रखते हुए गुणवत्तापूर्ण सामग्री की प्रस्तुति और समाचार वेबसाइट का निरंतर अपडेशन अनिवार्य शर्तें हैं। वेब समाचार माध्यमों द्वारा खबरों का डिलिवरी टाइम पाठकों की सुविधा के अनुसार अनुकूलित करना उपयोगी हो सकता है। पाठकों की जरूरत और रुचि के अनुसार समाचार ऐप्स पर नोटिफिकेशन को कस्टमाइज या अनुकूलित करने से जुड़ी सेटिंग के बारे में उन्हें जागरूक करना जरूरी है। अधिक क्लिक पाने और सबसे पहले खबर ब्रेक करने की होड़ में खबरों को सनसनीखेज बनाकर परोसने से बचना चाहिए। ऐसा करके पाठकों के बीच खबरों की गुणवत्ता और वेब माध्यमों की विश्वसनीयता बनाए रखने में मदद मिल सकती है। विश्वसनीयता और पाठकों को जोड़े रखने के लिए यूनिक कंटेंट महत्वपूर्ण है, क्योंकि इंटरनेट पर यूनिक कंटेंट ही व्यावसायिक सफलता दिला सकता है। वेब समाचार माध्यमों को मोबाइल एप्लीकेशनों पर ध्यान केंद्रित करने की जरूरत है, जो पाठकों को वेबसाइट और उस पर प्रकाशित होने वाली सामग्री से अधिक समय तक जोड़े रखने के लिए आकर्षित कर सकें। इंटरनेट पर संपादकों की गेटकीपिंग की सिमटती भूमिका को देखते हुए वेब समाचार माध्यमों को नए सिरे से विचार करने की जरूरत है। फेसबुक या ट्विटर जैसे सोशल मीडिया मंचों के लिंक को वेब समाचार माध्यमों के साथ समायोजित करना उपयोगी हो सकता है। ऐसा करके समाचार पोर्टल की पहुंच एवं प्रभाव को विस्तारित किया जा सकता है। समाचार-पत्रों के अभिलेखागार में छिपी सामग्री को डिजिटल मीडिया के युग में पाठकों के समक्ष पेश करना उपयोगी हो सकता है। पाठकों की रुचि और स्थान के अनुसार समाचार में शीर्षक, चित्र और ब्लर्ब के अधिक विकल्प उन्हें आकर्षित कर सकते हैं।

संदर्भ

अनीज, नेयाजी, कैलोगेरोपॉलस व निलेसन. (2018). इंडिया डिजिटल न्यूज रिपोर्ट. *रॉयटर्स.* https://reutersinstitute.politics.ox.ac.uk/sites/default/files/2019-03/India_DNR_FINAL.pdf से पुन:प्राप्त

आरएनआई.(2016). लैंग्वेज वाइस सर्कुलेशन. में रजिस्ट्रार न्यूजपेपर्स ऑफ इंडिया (पृ. 49-67). *आरएनआई.* http://rni.nic.in/(S(myro2jljxg5jiteawot05rzc))/pdf_file/pin2016_17/pin-04.pdf से पुन:प्राप्त

आरएनआई.(2016). चैप्टर-6 डेली पब्लिकेशन्स. में रजिस्ट्रार न्यूजपेपर्स ऑफ इंडिया (पृ. 419-434). *आरएनआई.* http://rni.nic.in/(S(myro2jljxg5jiteawot05rzc))/pdf_file/pin2016_17/pin-06.pdf से पुन:प्राप्त

इंटरनेट यूजर्स इन इंडिया. (2019, मार्च 06). *ईकोनॉमिक्स टाइम्स* . https://economictimes.indiatimes.com/tech/internet/internet-users-in-india-to-reach-627-million-in-2019-report/articleshow/68288868.cms से पुन:प्राप्त

एमओएसपीआई.(2017).यूथ इन इंडिया. में मिनिस्ट्री ऑफ स्टैटिस्टिक्स ऐंड प्रोग्राम इम्पलिमेंटेशन (पृ. 1-84). *एमओएसपीआई.* http://mospi.nic.in/sites/default/files/publication_reports/Youth_in_India-2017.pdf से पुन:प्राप्त

कुमार, एस. (2004). *इंटरनेट पत्रकारिता.* नई दिल्ली: तक्षशिला प्रकाशन.

कोप्पा, के. (2018, जुलाई 26). द गुड ऐंड बैड ऑफ सोशल मीडिया. *डेक्कन हेराल्ड.* https://www.deccanherald.com/supplements/dh-education/good-and-bad-social-media-683498.html से पुन:प्राप्त

ज़ेहरा.(2017, मई 25). प्रिंट मीडिया इज स्टिल थ्राइविंग इन इंडिया. द *क्विंट.* https://www.thequint.com/news/india/rise-of-print-media-in-india से पुन:प्राप्त

ठाकुर, के. (2009, नवंबर 13). ऑनलाइन जर्नलिज्म इन इंडियाः एन एक्सप्लानेटरी स्टडी ऑफ इंडियन न्यूजपेपर्स ऑन इंटरनेट. *मीडिया सीन इनइंडिया.*http://mediasceneindia.blogspot.com/2009/11/online-journalism-in-india-exploratory.html से पुन:प्राप्त

डिस्ट्रीब्यूशन ऑफ इंटरनेट यूजर्स बाय एज ग्रुप. (2020, अक्तूबर 16). *स्टैटिस्टा.* https://www.statista.com/statistics/751005/india-share-of-internet-users-by-age-group/ से पुन:प्राप्त

नवभारत टाइम्स. (2018, जुलाई 28). *भारत में स्मार्टफोन यूजर्स ज्यादा, लेकिन इंटरनेट इस्तेमाल कम.* https://navbharattimes.indiatimes.com/tech/gadgets-news/india-closer-to-china-in-smartphone-sales-but-internet-use-as-small-as-in-africa/articleshow/65172718.cms से पुन:प्राप्त

पीटीआई. (2019, मार्च 6). इंटरनेट यूजर्स इन इंडिया टू रीच 627 मिलियन. द *ईकोनॉमिक टाइम्स.* https://economictimes.indiatimes.com/tech/internet/internet-users-in-india-to-reach-627-million-in-2019-report/articleshow/68288868.cms से पुन:प्राप्त

पीटीआई.(2018). हिंदी कंटेंट कंजप्शन ऑन इंटरनेट ग्रोइंग एट 94 पर्सेंट. *बिजनेस टुडे डॉट इन.* https://www.businesstoday.in/technology/internet/google-says-hindi-content-consumption-on-internet-growing-at-94-percent/story/222861.html से पुन:प्राप्त

प्रभासाक्षी. (एन.डी.). https://www.prabhasakshi.com/aboutus से पुन:प्राप्त

प्लैटनर, टी.(2018, अप्रैल 14). टेन इफेक्टिव वेज टू पर्सनलाइज न्यूज प्लेटफॉर्म्स. *मीडियम डॉट कॉम.* https://medium.com/jsk-class-of-2018/ten-effective-ways-to-personalize-news-platform-c0e39890170e से पुन:प्राप्त

बंज, एम. (2009, सितंबर 18). हाउ सोशल नेटवर्किंग इज चेंजिंग जर्नलिज्म. *द गार्जियन वेबसाइट.* https://www.theguardian.com/media/pda/2009/sep/18/oxford-social-media-convention-2009-journalism-blogs से पुन:प्राप्त

बंसल, एस.(2015, मार्च 26). मीडिया ऐंड एंटरटेनमेंट इंडस्ट्री इज एक्सपेक्टेड टू ग्रो एट 13 पर्सेंट. *लाइव मिंट.* https://www.livemint.com/Consumer/BX0GUxdzpGYXlSdBLr7e6H/Media-and-entertainment-industry-is-expected-to-grow-at-13.html से पुन:प्राप्त

ब्यूरो, स. (2018, जुलाई 6). हिंदी सबसे तेजी से बढ़ रही है, इसके अलावा भी जनगणना के भाषा संबंधी आंकड़े बहुत कुछ बताते हैं. *सत्याग्रह.*https://satyagrah.scroll.in/article/117567/hindi-added-100-million-speakers-in-last-decade से पुन:प्राप्त

ब्रीनर, जे. (2018, नवंबर 11). जर्नलिस्ट्स मस्ट यूज सोशल मीडिया टू प्रमोट देअर वर्क. *आईजेनेट डॉट ओआरजी.* https://ijnet.org/en/story/journalists-must-use-social-media-promote-their-work से पुन:प्राप्त

भल्ला, टी.(2018, फरवरी 20). मेल यूजर्स स्टिल डॉमिनेट इंटरनेट इन इंडिया. *योर स्टोरी डॉट कॉम.* https://yourstory.com/2018/02/men-still-dominate-internet-in-india से पुन:प्राप्त

माथुर, श. (2012). *वेब पत्रकारिता.* जयपुर : राजस्थान हिंदी साहित्य ग्रन्थ अकादमी.

मानस, ज. (2010). *वेब पत्रकारिता : कल आज और कल.* दिल्ली: श्री नटराज प्रकाशन.

मेहता.(2019, मई 16). 95 पर्सेंट ऑफ वीडियो कंजप्शन इन इंडिया इज इन रीजनल लैंग्वेजेस. *टाइम्स ऑफ इंडिया.* https://timesofindia.indiatimes.com/blogs/academic-interest/95-of-video-consumption-in-india-is-in-regional-languages-hindi-internet-users-will-outnumber-english-users-by-2021/ से पुन:प्राप्त

वेब दुनिया. (2018, सितंबर 26). ऑनलाइन पत्रकारिता के 19 वर्ष. *वेब दुनिया.* https://hindi.webdunia.com/15-years-of-webdunia/webdunia-hindi-114091900065_1.html से पुन:प्राप्त

हू किल्ड द न्यूजपेपर? (2006, अगस्त 24). द *इकोनॉमिस्ट.* : https://www.economist.com/leaders/2006/08/24/who-killed-the-newspaper से पुन:प्राप्त

संचार माध्यम | खंड 32(2): 69-74, जुलाई-दिसंबर 2020
आईएसएसएन: 2321-2608

भारतीय मुक्त विश्वविद्यालयों के संदर्भ में न्यू मीडिया आधारित वीडियो व्याख्यान के उपयोग में आ रही बाधाओं का अध्ययन

मयंक गौड़[1]

सारांश

न्यू मीडिया प्रौद्योगिकी शिक्षकों को क्लाउड कंप्यूटिंग का एक बड़ा क्षेत्र प्रदान कर रही है जो शिक्षार्थियों से ऑनलाइन जुड़े रहने का अवसर प्रदान करती है। न्यू मीडिया एक संरचना है जिसमें सोशल मीडिया, इंटरनेट आधारित तकनीक और डिजिटल वातावरण शामिल है। इस शोध पत्र का प्रमुख उद्देश्य न्यू मीडिया आधारित वीडियो व्याख्यान के उपयोग में आ रही बाधाओं की पहचान करना है। अध्ययन में तीन भारतीय मुक्त विश्वविद्यालयों के विद्यार्थी, शिक्षक, वीडियो निर्माता एवं तकनीकी विशेषज्ञों का प्रतिदर्श के रूप में चयन किया गया है। इस अनुसन्धान में मिश्रित शोध विधि का उपयोग किया गया, जिसमें प्रश्नावली के साथ-साथ साक्षात्कार प्रणाली को भी शामिल किया गया। शोध से यह निष्कर्ष निकला कि अधिकांश हितधारक (विद्यार्थी, शिक्षक, वीडियो निर्माता एवं तकनीकी विशेषज्ञ) इंटरनेट का उपयोग कर रहे थे। लगभग सभी शिक्षक, वीडियो निर्माता एवं तकनीकी विशेषज्ञों को ई-लर्निंग के बारे में पता था, परन्तु विद्यार्थियों में इसके बारे में जागरूकता बढ़ाने के प्रयास करने होंगे।

संकेत शब्द : न्यू मीडिया, वीडियो व्याख्यान, भारतीय मुक्त विश्वविद्यालय, ई-लर्निंग, प्रौद्योगिकी

प्रस्तावना

वर्तमान में न्यू मीडिया आधारित अध्ययनों का चलन तेजी से बढ़ा है। भारतीय मुक्त विश्वविद्यालयों द्वारा भी इसके इस्तेमाल के प्रयास किए जा रहे हैं। मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा के विद्यार्थियों के अध्ययन के लिए न्यू मीडिया तकनीक का उपयोग बहुत लाभदायक हो सकता है बशर्ते भारतीय मुक्त विश्वविद्यालयों द्वारा इसे सशक्त रूप से उपयोग में लाया जाए। कुछ भारतीय मुक्त विश्वविद्यालयों द्वारा प्रयास किये जा रहे हैं, परन्तु इसका लाभ अधिक से अधिक विद्यार्थियों को हो सके, इस हेतु न्यू मीडिया आधारित एवं निर्मित वीडियो व्याख्यानों का उपयोग अधिक से अधिक विद्यार्थियों द्वारा किया जाना जरूरी है। न्यू मीडिया द्वारा ई-लर्निंग के माध्यम से अध्ययन में आ रही बाधाओं का पता लगाना बहुत आवश्यक है। इन बाधाओं को विस्तृत रूप से जानना एवं इनका निवारण पता करना इस शोध का उद्धेश्य है। न्यू मीडिया, मीडिया का ही एक उन्नत रूप है जो इंटरनेट-आधारित माध्यम है। ये विभिन्न डिजिटल प्लेटफार्मों के माध्यम से ई-लर्निंग सामग्री प्रदान करता है। न्यू मीडिया का उपयोग इंटरनेट से संबंधित सामग्री और प्रौद्योगिकी के बीच परस्पर क्रिया को परिभाषित करने के लिए किया जाता है। न्यू मीडिया की परिभाषा प्रगतिशील है, और इस प्रकार इसके विवरणों में अक्सर परिवर्तन होते रहते हैं। व्यापक अर्थों में न्यू मीडिया में इंटरनेट शामिल हैं जैसे कि वेबसाइट, ऑनलाइन समाचार पत्र, ब्लॉग या विकी, वीडियो गेम, सीडी-डीवीडी, मोबाइल एप, सोशल मीडिया और इलेक्ट्रॉनिक डिजिटल सामग्री जैसे ई-बुक्स, ई-एसएलएम (सेल्फ लर्निंग मटीरियल) आदि।

न्यू मीडिया प्रौद्योगिकी इंटरनेट के उपयोग को सरल बनाती है। छात्र-छात्र, शिक्षक-छात्र और छात्र-सामग्री के बीच सहयोग और सहभागिता दूरस्थ शिक्षा पाठ्यक्रम के लिए महत्वपूर्ण हैं (बर्नार्ड एवं अन्य, 2009)। न्यू मीडिया को 'नए मीडिया' के रूप में देखा गया है, जो डिजिटल है, और ये नेटवर्क योग्य, विस्तृत, संपीडित और परस्पर संवादात्मक होने की विशेषता धारण किए हुए है (फ्लो, 2008)। न्यू मीडिया "उस डिजिटल मीडिया को संदर्भित करता है जो इंटरैक्टिव है, दो-तरफा संचार को शामिल करता है और कंप्यूटिंग के कुछ रूप को शामिल करता है" (लोगन, 2010)। न्यू मीडिया में टेलीविज़न प्रोग्राम (केवल एनालॉग प्रसारण), फीचर फिल्में, पत्रिकाएं, किताबें या पेपर-आधारित प्रकाशन शामिल नहीं हैं, जब तक कि वे डिजिटल आधारित तकनीकों से निर्मित न हुई हों (मेनोविच, 2003)। न्यू मीडिया में सोशल मीडिया भी शामिल है, जिसमें यूट्यूब, फेसबुक, ट्विटर, लिंक्डइन, व्हाट्सएप और इसी तरह की अन्य वेब और मोबाइल-आधारित सेवाएं शामिल हैं, जो समूह सहभागिता की सुविधा प्रदान करती हैं। वर्तमान युग में न्यू मीडिया ने सभी भौगोलिक क्षेत्रों में प्रवेश किया है। न्यू मीडिया शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता रहा है। यह शिक्षार्थियों के लिए परस्पर संवादात्मक ई-लर्निंग प्लेटफॉर्म प्रदान करता है, निर्देशन की सुविधा देता है और शिक्षण और सीखने की प्रक्रिया को मजबूती प्रदान कर सकता है। चोऊ और पाई (2015) के अनुसार सोशल मीडिया के द्वारा शिक्षार्थी विचारों का आदान-प्रदान कर सकते हैं, जानकारी साझा कर सकते हैं और दूसरों के साथ बातचीत कर सकते हैं, जबकि प्रशिक्षक बातचीत को सुचारु बनाने और बहुमूल्य मार्गदर्शन प्रदान करने के लिए एक सूत्रधार के रूप में कार्य कर सकते हैं।

वर्तमान में कई शिक्षण संस्थान शिक्षण और सीखने के लिए न्यू मीडिया प्लेटफॉर्म का बड़े पैमाने पर उपयोग कर रहे हैं। न्यू मीडिया के विकास के परिणामस्वरूप 21वीं सदी में गैर-औपचारिक शिक्षा प्रणाली में रचनात्मक परिवर्तन हुए। मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा प्रणाली छात्रों को 'शिक्षा उनके द्वार तक' को साकार करने का कार्य करती आ रही है। यह औपचारिक शिक्षा और सीखने वालों के बीच की खाई को पाटने में अहम योगदान दे रही है। वर्तमान में कई शैक्षणिक संस्थान और विश्वविद्यालय

[1]शोधार्थी, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान। ईमेल: mayank.wv@gmail.com

न्यू मीडिया का उपयोग करते हुए वीडियो व्याख्यान से अध्ययन कराने का कार्य कर रहे हैं। न्यू मीडिया तकनीक मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा के लिए सबसे आधुनिक शैक्षणिक मार्ग बनता जा रहा है। बहुसंवेदी दृष्टिकोण का उपयोग करके शिक्षा प्रदान करने की क्षमता न्यू मीडिया आधारित शिक्षण प्रणाली को सामान्य के साथ-साथ असाधारण शिक्षार्थियों (अंधे, बहरे, गूंगे, प्रतिभाशाली और रचनात्मक) के लिए भी उतना ही फायदेमंद बनाती है। न्यू मीडिया सीखने में भागीदारी को बढ़ावा देता है। फेसबुक द्वारा सूचना साझा करने, विचारों, क्विज, प्रश्नावली, ऑडियो-वीडियो सामग्री, चित्र, या एक विशिष्ट पाठ्यक्रम या मॉड्यूल पर एक पूरे पृष्ठ पर चर्चा करने के लिए एक बंद या एक खुला समूह बनाकर ई-लर्निंग को बढ़ावा दिया जा सकता है। शिक्षार्थी अपने पाठ्यक्रम से संबंधित मुद्दों पर बात कर सकते हैं और स्वतंत्र रूप से इस मंच पर सवाल उठा सकते हैं। फेसबुक छात्रों और सीखने के उपकरण जैसे वीडियो, चित्र, बोर्ड, चैटिंग और निजी मैसेजिंग के बीच सीखने को बढ़ावा देने और रिश्तों को बेहतर बनाने के लिए सुविधाएं प्रदान करता है। फेसबुक ई-लर्निंग और उस पेज पर संबंधित शिक्षण सामग्री साझा करने से संबंधित अपने स्वयं के पृष्ठ के निर्माण की अनुमति देता है।

यू-ट्यूब ई-लर्निंग के लिए एक उत्कृष्ट उपकरण हो सकता है। यह आभासी कक्षा के लिए प्रभावी वातावरण प्रदान करता है। यू-ट्यूब ऑडियो-वीडियो व्याख्यान, स्पॉट, लघु फिल्मों और वृत्तचित्रों के माध्यम से सीखने के लिए एक विशाल मंच प्रदान कर सकता है। सीखते समय, दर्शक वीडियो सामग्री के साथ-साथ 'टिप्पणी' को 'पसंद' और 'साझा' कर सकते हैं। यू-ट्यूब एक वेब-आधारित चैनल बनाने का अवसर प्रदान करता है, जिस पर कोई भी ऑडियो-वीडियो ट्यूटोरियल चला सकता है। वर्तमान परिदृश्य में यू-ट्यूब ऑडियो-वीडियो प्लेटफॉर्म के लिए सबसे अच्छा साधन बन गया है। यू-ट्यूब में हर विषय पर उच्च गुणवत्ता वाले ऑडियो-वीडियो सामग्री और ई-फ्रंट प्रो या मूडल जैसे आधुनिक एलएमएस प्लेटफॉर्म शामिल हैं, जिससे ई-लर्निंग पाठ्यक्रम में अपने वीडियो जोड़ना आसान हो जाता है। प्रातमा और अन्य (2018) के अनुसार छात्रों के सीखने के प्रदर्शन में यू-ट्यूब की उपयोगिता महत्वपूर्ण हो सकती है। वॉट्सएप वर्तमान में दुनिया का सबसे स्वीकार्य न्यू मीडिया टूल साबित हो रहा है। यह एक बुनियादी मोबाइल-आधारित एप्लिकेशन है, जो कंप्यूटर पर भी चल सकता है। यह निरंतर संदेश या पत्राचार प्रदान करता है, जिसमें डेटा या मीडिया सामग्री जैसे ध्वनि, वीडियो फाइलें, चित्र और स्थान साझा करना शामिल हैं। यह एक गोपनीय एप्लिकेशन प्लेटफॉर्म प्रदान करता है जो अपने उपयोगकर्ताओं को स्माइली, चित्र, वॉयस नोट, वीडियो और वॉयस कॉल से जानकारी भेजने और प्राप्त करने देता है। मंसोर और रहीम (2017), ने देखा कि इंस्टाग्राम छात्रों को संवाद प्रक्रिया में संलग्न होने का अवसर दे रहा है और छात्रों की शिक्षा का समर्थन करता है। इंस्टाग्राम लिखने, पढ़ने, सवाल करने, बहस करने और स्पष्टीकरण देने के लाभों को सीखने का अवसर भी प्रदान करता है। वर्तमान परिदृश्य में अध्ययन हेतु न्यू मीडिया एक सशक्त और महत्वपूर्ण माध्यम बनकर उभरा है और इसका उपयोग शिक्षा के क्षेत्र में एक प्रभावी शिक्षा पद्धति को आकार दे रहा है। मुक्त एवं दूरस्थ विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों के लिए न्यू मीडिया प्रभावी एवं महत्वपूर्ण अध्ययन पद्धति के रूप उपयोग में लाया जा सकता है।

शोध प्रविधि

शिक्षण हेतु भारतीय मुक्त विश्वविद्यालयों द्वारा विभिन्न प्रकार की पद्धतियों का उपयोग किया जा रहा है। न्यू मीडिया आधारित वीडियो व्याख्यान से अध्ययन करना छात्रों में लोकप्रिय हो रहा है, लेकिन छात्रों द्वारा न्यू मीडिया आधारित वीडियो व्याख्यान के उपयोग में आ रही बाधाओं को जानना भी महत्वपूर्ण है। यही इस शोध का उद्देश्य है। इसके लिए 14 भारतीय मुक्त विश्वविद्यालयों में से सोद्देश्य नमूना चयन पद्धति के आधार पर तीन विश्वविद्यालयों का चयन किया गया। तीन विश्वविद्यालयों में से एक राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय (इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, इग्नू) और दो राज्य स्तरीय मुक्त विश्वविद्यालय (वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान एवं उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखंड) का चयन किया गया।

इनके चयन का आधार न्यू मीडिया वीडियो व्याख्यान से संबंधित आधारिक संरचना की उपलब्धता और अनुपलब्धता था। इनमें से प्रत्येक विश्वविद्यालय से सौ अर्थात् कुल 300 विद्यार्थियों को सम्मिलित किया गया। इसी तरह प्रत्येक विश्वविद्यालय से 10 शिक्षकों, कुल 30 शिक्षकों का चयन किया गया। कुल दस वीडियो निर्माताओं का चयन किया गया जिनमें 7 इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय (इग्नू) से चुने गए और केवल एक वीडियो निर्माता वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (वीएमओयू) से चुना गया। उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी (यूओयू) में वीडियो निर्माता से संबंधित कोई पद नहीं था, इसलिए किसी भी वीडियो निर्माता को चुनना संभव नहीं था। तीन तकनीकी विशेषज्ञों को इग्नू से और एक-एक तकनीकी विशेषज्ञ को वीएमओयू और यूओयू से चुना गया। इस अध्ययन में मिश्रित शोध प्रविधि का उपयोग करते हुए प्रश्नावली के साथ-साथ अर्ध संरचित साक्षात्कार अनुसूची का उपयोग किया गया। शोध की प्रश्नावली में नौ कारकों को शामिल किया गया था। सभी नौ कारक न्यू मीडिया आधारित तकनीक और इसके उपयोग पर आधारित थे।

डाटा विश्लेषण

प्रश्नावली में विषय से संबंधित नौ कारकों को शामिल किया गया। सभी नौ कारक न्यू मीडिया आधारित तकनीक और इसके उपयोग पर आधारित हैं। जिन नौ कारकों को शामिल किया गया वे हैं: 1. इंटरनेट का उपयोग, 2. ई-लर्निंग का ज्ञान, 3. सोशल मीडिया का ज्ञान, 4. सोशल मीडिया का उपयोग, 5. यू-ट्यूब पर वीडियो व्याख्यान देखना, 6. यू-ट्यूब पर 2 से कम वीडियो व्याख्यान एक दिन में, 7. यू-ट्यूब पर वीडियो व्याख्यान नहीं देखने के कारण 8. शैक्षिक टेलीविजन चैनल के प्रति जागरूकता, 9. शैक्षिक टेलीविजन चैनल पर वीडियो व्याख्यान देखने के प्रति रुचि।

प्रश्नावली के साथ-साथ अर्ध संरचित साक्षात्कार अनुसूची का उपयोग कर हितधारकों से प्राप्त विभिन्न डाटा को एकत्र किया गया। प्राप्त डाटा को विभिन्न विषयों के साथ चित्रों द्वारा प्रदर्शित किया गया और उनका विश्लेषण किया गया।

इंटरनेट का उपयोग

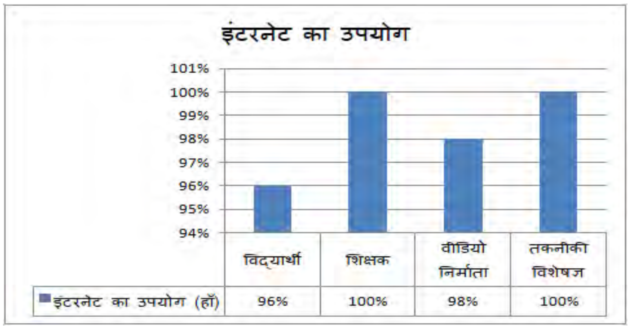

चित्र 1

चित्र 1 से पता चलता है कि 96% विद्यार्थियों के साथ-साथ समस्त शिक्षकों द्वारा इंटरनेट का उपयोग किया जा रहा है। 98% वीडियो निर्माताओं ने स्वीकार किया कि वे इंटरनेट का उपयोग करते हैं। जैसा कि अपेक्षित था, 100% तकनीकी विशेषज्ञों ने सहमति व्यक्त की कि वे इंटरनेट का उपयोग करते हैं।

ई-लर्निंग का ज्ञान

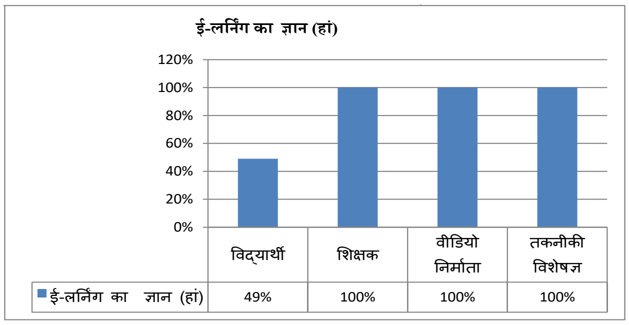

चित्र 2

चित्र 2 ई-लर्निंग के बारे में हितधारकों के ज्ञान के परिणाम को इंगित करता है। केवल 49% छात्र ई-लर्निंग के बारे में जानते है। 100% शिक्षकों और वीडियो निर्माताओं को ई-लर्निंग से संबंधित ज्ञान है। सभी तकनीकी विशेषज्ञ ई-लर्निंग के बारे जानते हैं।

सोशल मीडिया का ज्ञान

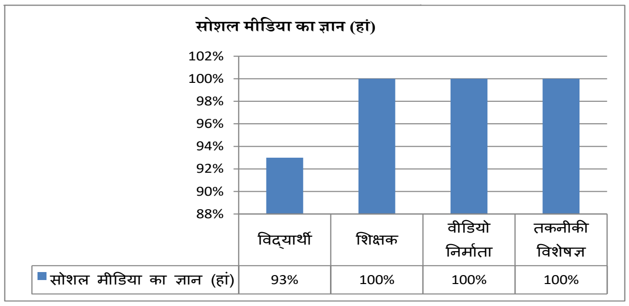

चित्र 3

चित्र 3 में दर्शाया गया है कि कितने हितधारक सोशल मीडिया के बारे में जानकारी रखते हैं। 96% छात्रों ने सहमति व्यक्त की कि वे सोशल मीडिया के बारे में जानते हैं। सभी शिक्षकों ने सोशल मीडिया के बारे में जागरूकता दिखाई। 100% वीडियो निर्माताओं ने सोशल मीडिया के बारे में जागरूकता रखने के लिए 'हां' कहा। सभी तकनीकी विशेषज्ञों ने सोशल मीडिया के पक्ष में जागरूकता दिखाई। परिणाम इंगित करता है कि कुछ छात्रों को छोड़कर, सभी हितधारकों को सोशल मीडिया के बारे में जानकारी थी।

सोशल मीडिया का उपयोग

यू-ट्यूब, फेसबुक, वॉट्सएप

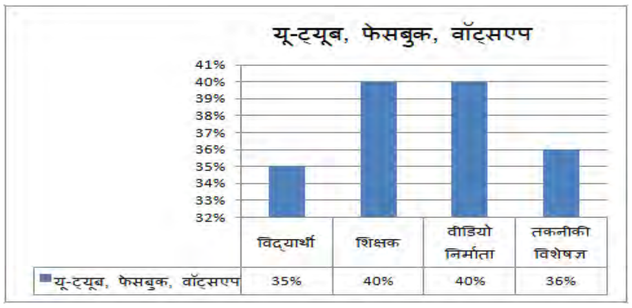

चित्र 4

चित्र 4 में दर्शाया गया है कि कितने प्रतिशत हितधारक यू-ट्यूब, फेसबुक एवं वॉट्सएप तीनों सोशल मीडिया मंचों का उपयोग करते हैं। 35% विद्यार्थी, 40% शिक्षक, 40% वीडियो निर्माता एवं 36% तकनीकी विशेषज्ञों द्वारा यू-ट्यूब, फेसबुक एवं वॉट्सएप तीनों सोशल मीडिया मंच का उपयोग कर रहे थे।

यू-ट्यूब, फेसबुक, वॉट्सएप एवं ट्विटर

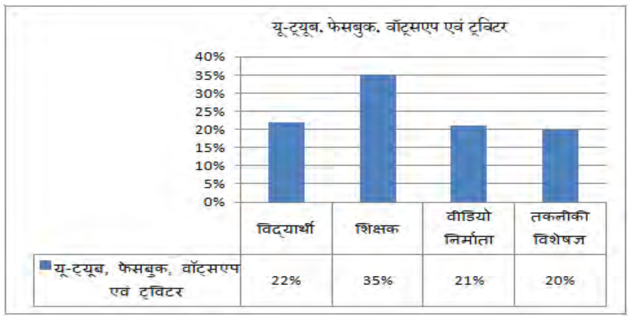

चित्र 5

चित्र 5 में दर्शाया गया है कि कितने प्रतिशत हितधारक यू-ट्यूब, फेसबुक, वॉट्सएप एवं ट्विटर चारों सोशल मीडिया मंचों का उपयोग करते हैं। 22% विद्यार्थी, 35% शिक्षक, 21% वीडियो निर्माता एवं 20% तकनीकी विशेषज्ञों द्वारा यू-ट्यूब, फेसबुक, वॉट्सएप एवं ट्विटर चारों सोशल मीडिया मंच का उपयोग करते हैं।

यू-ट्यूब पर वीडियो व्याख्यान देखना

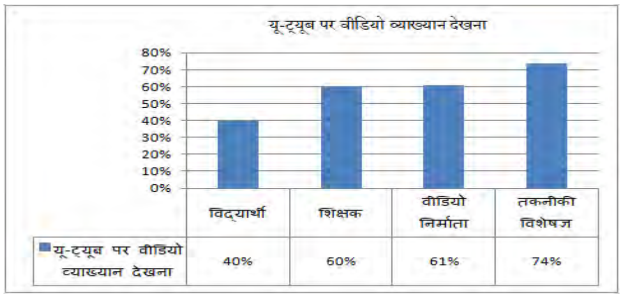

चित्र 6

चित्र 6 में यू-ट्यूब पर वीडियो व्याख्यान देखने में हितधारकों की रुचि के बारे में दर्शाया गया है। केवल 40% विद्यार्थी ही यू-ट्यूब पर वीडियो व्याख्यान देखने में रुचि रखते हैं। 60% शिक्षक यू-ट्यूब पर वीडियो व्याख्यान देखते हैं। 61% वीडियो निर्माता एवं 74% तकनीकी विशेषज्ञों द्वारा यू-ट्यूब का उपयोग वीडियो व्याख्यान देखने में किया जाता है।

यू-ट्यूब पर 2 से कम वीडियो व्याख्यान एक दिन में

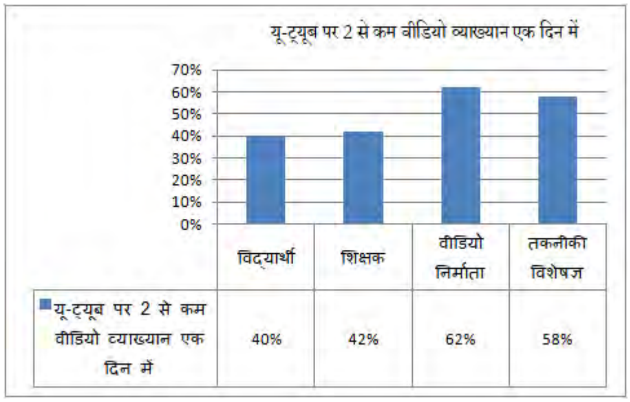

चित्र 7

चित्र 7 में एक दिन में यू-ट्यूब पर एक से दो वीडियो व्याख्यान देखने में हितधारकों की रुचि के बारे में दर्शाया गया है। एक दिन में यू-ट्यूब पर एक से दो वीडियो व्याख्यान देखने में 40% विद्यार्थी, 42% शिक्षक, 62% वीडियो निर्माता एवं 58% तकनीकी विशेषज्ञों ने अपनी सहमति व्यक्त की।

यू-ट्यूब पर वीडियो व्याख्यान नहीं देखने के कारण- उबाऊ, इंटरनेट डाटा का सीमित होना, वीडियो व्याख्यान की अवधि का अधिक होना

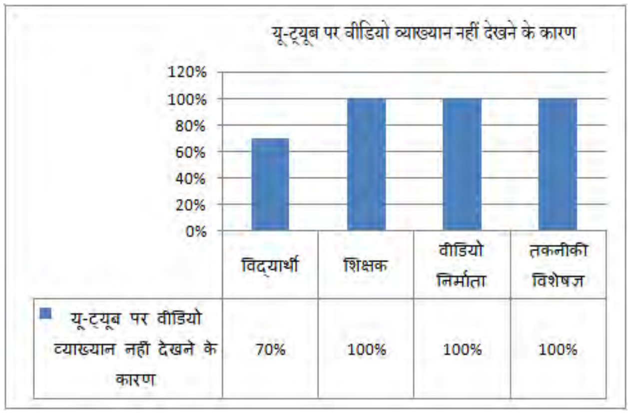

चित्र 8

चित्र 8 में यू-ट्यूब वीडियो व्याख्यान नहीं देखने के कारणों के बारे में दर्शाया गया है। कारण जैसे वीडियो व्याख्यान का उबाऊ होना, इंटरनेट डाटा का सीमित होना, वीडियो व्याख्यान की अवधि का अधिक होना। इन तीनों को संयुक्त रूप से 70% विद्यार्थी, 49% शिक्षक, 51% वीडियो निर्माता एवं 55% तकनीकी विशेषज्ञों ने यू-ट्यूब पर वीडियो व्याख्यान नहीं देखने का प्रमुख कारण माना।

शैक्षिक टेलीविजन चैनल के प्रति जागरूकता

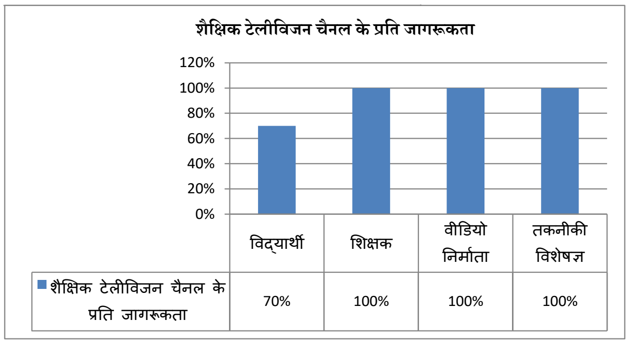

चित्र 9

चित्र 9 में हितधारकों द्वारा शैक्षिक टेलीविजन चैनल के प्रति जागरूकता के बारे में दर्शाया गया है। 70% विद्यार्थी, 100% शिक्षक, 100% वीडियो निर्माता एवं 100% तकनीकी विशेषज्ञ शैक्षिक टेलीविजन चैनल के प्रति जागरूक थे।

शैक्षिक टेलीविजन चैनल पर वीडियो व्याख्यान देखने के प्रति रुचि

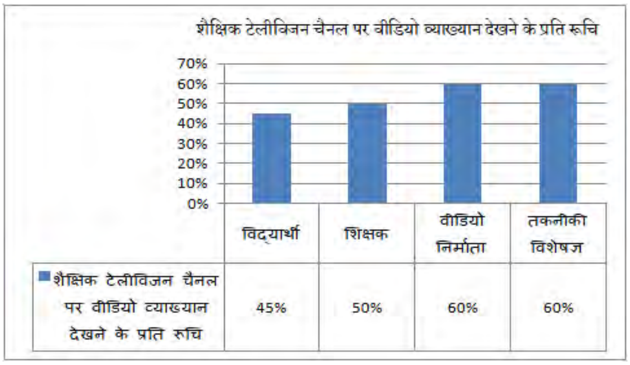

चित्र 10

चित्र 10 में हितधारकों द्वारा शैक्षिक टेलीविजन चैनल पर वीडियो व्याख्यान देखने के प्रति रुचि के बारे में दर्शाया गया है। 45% विद्यार्थी, 50% शिक्षक, 60% वीडियो निर्माता एवं 60% तकनीकी विशेषज्ञों ने शैक्षिक टेलीविजन चैनल पर वीडियो व्याख्यान देखने के प्रति अपनी रुचि व्यक्त की।

मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा प्रणाली में वीडियो व्याख्यान के उपयोग में आने वाली बाधाओं के बारे में जानने के लिए प्रश्नावली के साथ साक्षात्कार का भी उपयोग किया गया था। साक्षात्कार में हितधारकों (शिक्षक, वीडियो निर्माता और तकनीकी विशेषज्ञ) से प्रश्न पूछे गए थे। साक्षात्कार में सभी से वीडियो व्याख्यान के उपयोग में आने वाली बाधाओं के बारे में पूछा गया। शिक्षकों, निर्माताओं और तकनीकी विशेषज्ञों से प्राप्त प्रतिक्रियाओं के आधार पर निष्कर्षों को पांच भागों में विभाजित किया गया। मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा प्रणाली में वीडियो व्याख्यान के उपयोग में आने वाली बाधाओं को दर्शाते हैं —

1. जागरूकता की कमी
2. वीडियो कार्यक्रमों में अन्तरक्रियाशीलता की कमी
3. वीडियो प्रोग्राम की गुणवत्ता में कमी

4. इंटरनेट कनेक्टिविटी और सीमित डाटा का अवरोध
5. समय की कमी

1. जागरूकता की कमी - हितधारकों के अनुसार विद्यार्थियों के बीच विश्वविद्यालय के शैक्षिक वीडियो व्याख्यान और ऑनलाइन चैनलों के बारे में जागरूकता की कमी है। कई छात्रों को इस बात की जानकारी नहीं होती कि विश्वविद्यालय द्वारा उनकी पढ़ाई के लिए क्या पहल की जा रही है। हितधारकों ने सहमति व्यक्त की कि छात्रों को विश्वविद्यालय द्वारा किए जा रहे शैक्षिक वीडियो कार्यक्रमों की जानकारी नहीं थी। उन्हें संबंधित वीडियो कार्यक्रमों के बारे में बताया जाना चाहिए। हितधारकों का मानना था कि शैक्षिक वीडियो कार्यक्रमों के बारे में छात्रों में जागरूकता की कमी उनके उपयोग में सबसे बड़ी बाधा है।

हितधारकों से छात्रों में जागरूकता बढ़ाने के उपायों के बारे में जानने का प्रयास किया गया। अध्ययन से ज्ञात हुआ कि विश्वविद्यालय द्वारा संचालित चैनल और शैक्षिक वीडियो कार्यक्रमों के बारे में विद्यार्थियों के बीच जागरूकता लाना आवश्यक है। चूंकि यह अध्ययन मुक्त एवं दूरस्थ माध्यम से शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों के लिए है, इसलिए उन्हें कई माध्यमों, अर्थात् मोबाइल संदेश, सोशल मीडिया, संपर्क शिविर, व्यावहारिक शिविर, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, प्रिंट मीडिया (पैम्फलेट और विज्ञापन) के माध्यम से इनके बारे में सूचित किया जा सकता है।

संदेश- सभी हितधारकों ने सुझाव दिया कि न्यू मीडिया-आधारित वीडियो व्याख्यान की जागरूकता को मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा प्रणाली के शिक्षार्थियों के बीच फैलाना चाहिए और मोबाइल संदेश सबसे अच्छे समाधानों में से एक हैं। सभी मुक्त एवं दूरस्थ विश्वविद्यालय अपने न्यू मीडिया चैनलों का सृजन करके उनको सब्सक्राइब करने का विकल्प प्रदान कर सकते हैं। इसके लिए वे टेक्स्ट मैसेज के जरिये चैनल लिंक भेज सकते हैं। इन संदेशों के माध्यम से छात्रों को चैनल के साथ-साथ विश्वविद्यालयों की अन्य जानकारियों से भी अवगत कराया जा सकता है।

सोशल मीडिया- वर्तमान परिदृश्य में सूचना प्राप्त करने और इसे साझा करने के लिए सोशल मीडिया सबसे सशक्त माध्यम है। हितधारकों का मानना था कि सोशल मीडिया के माध्यम से शिक्षार्थियों में जागरूकता बढ़ाई जा सकती है। भारतीय मुक्त विश्वविद्यालय फेसबुक, ट्विटर, इंस्टाग्राम और व्हाट्सएप आदि के माध्यम से अपने न्यू मीडिया-आधारित वीडियो चैनल के बारे में जानकारी दे सकते हैं। यदि वीडियो चैनल व्याख्यान को वेबकास्ट कर रहा है, तो इसका लिंक छात्रों के साथ सोशल मीडिया के माध्यम से साझा किया जा सकता है। सोशल मीडिया के माध्यम से लगभग सभी शिक्षार्थियों को कोई भी संबंधित जानकारी उपलब्ध कराई जा सकती है।

प्रायोगिक और संपर्क शिविर- हितधारकों के अनुसार मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा के विद्यार्थियों के लिए प्रायोगिक और परामर्श संपर्क शिविरों का आयोजन किया जाता है। विश्वविद्यालय विषय संबंधित समस्याओं को दूर करने में शिक्षार्थियों की सहायता के लिए संपर्क शिविर को आयोजित करते हैं। इसके अलावा, छात्रों के लिए प्रायोगिक शिविर भी आयोजित किए जाते हैं। मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा के विद्यार्थियों के लिए सप्ताहांत कक्षाएं भी आयोजित करते हैं। इन संपर्क शिविरों के दौरान शिक्षार्थियों को अपने वीडियो चैनलों के बारे में जानकारी दे सकते हैं। उन्हें अध्ययन के लिए इसका अधिक उपयोग करने के बारे में जागरूक कर सकते हैं। शिविर और कक्षाओं के समय छात्र सहायता के लिए विश्वविद्यालय द्वारा की जा रही पहलों के बारे में जागरूकता बढ़ाने के लिए भी एक सत्र आयोजित किया जाना चाहिए।

2. वीडियो कार्यक्रमों में अन्तरक्रियाशीलता की कमी - हितधारकों ने सहमति व्यक्त की कि कई छात्र वीडियो व्याख्यान के बारे में जानने के बावजूद उन्हें नहीं देखते हैं। उनके अनुसार वीडियो व्याख्यान का उपयोग नहीं करने वाले छात्रों का कारण यह हो सकता है कि वीडियो व्याख्यान बहुत दिलचस्प नहीं होते। उनका मानना था कि वीडियो कार्यक्रमों में अन्तरक्रियाशीलता की कमी और अधिक सामग्री के साथ वीडियो व्याख्यान अक्सर उबाऊ होने लगते हैं। वीडियो व्याख्यान की उपयोगिता में बाधाओं के बीच यह एक प्रमुख कारण था।

3. वीडियो व्याख्यान की गुणवत्ता- हितधारकों ने कहा कि वीडियो व्याख्यान की गुणवत्ता भी वीडियो व्याख्यान के उपयोग में एक महत्वपूर्ण बाधा थी। हितधारकों के अनुसार वीडियो व्याख्यान में गुणवत्ता आवश्यक है। यदि वीडियो व्याख्यान की गुणवत्ता अच्छी है, तो छात्रों को भी इसे देखने में मजा आएगा और वीडियो व्याख्यान देखने और समझने में भी आसानी होगी। यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि वीडियो व्याख्यान की रिकॉर्डिंग या तो HD (हाई डेफिनेशन) में या SD (स्टैंडर्ड डेफिनेशन) प्रारूप में है। यदि वीडियो व्याख्यान की गुणवत्ता अच्छी है तो छात्रों को वीडियो व्याख्यान से सीखने में रुचि आएगी। हितधारकों ने कहा कि परिवर्तन के युग में प्रौद्योगिकी एसडी से एचडी में स्थानांतरित हो रही है। इसका भविष्य एचडी में है। इसके साथ उन्होंने एसडी की तुलना में बेहतर गुणवत्ता के लिए एचडी प्रारूप पर विचार करने का सुझाव दिया।

4. इंटरनेट कनेक्टिविटी और सीमित डाटा का अवरोध- हितधारकों ने सहमति व्यक्त की कि इंटरनेट कनेक्टिविटी वीडियो व्याख्यान के उपयोग में एक प्रमुख बाधा है। उन्होंने कहा कि वीडियो व्याख्यान यू-ट्यूब या सोशल मीडिया के माध्यम से देखे जा रहे हैं। छात्रों को उन्हें देखने के लिए इंटरनेट की आवश्यकता होगी। इंटरनेट की अनुपलब्धता या कम उपलब्धता एक बड़े अवरोध के रूप में सामने आई। उन्होंने स्वीकार किया कि यद्यपि वर्तमान में लगभग हर छात्र इंटरनेट का उपयोग करता है, लेकिन वीडियो व्याख्यान देखने के लिए अधिक इंटरनेट डाटा की आवश्यकता हो सकती है। शिक्षार्थियों को बता सकते हैं कि यदि वे यू-ट्यूब के माध्यम से वीडियो व्याख्यान देख रहे हैं, तो वे उन्हें डाउनलोड कर सकते हैं। यू-ट्यूब वीडियो डाउनलोड करने की सुविधा प्रदान करता है, जिसे बाद में इंटरनेट के बिना भी देखा जा सकता है। वीडियो व्याख्यान का फ़ाइल आकार कम किया जाना चाहिए, जो कम इंटरनेट खपत के साथ वीडियो व्याख्यान को अपलोड और डाउनलोड करने में मदद कर सकता है।

5. समय की कमी- हितधारकों ने कहा कि जो विश्वविद्यालय टीवी के माध्यम से छात्रों को वीडियो व्याख्यान प्रदान कर रहे हैं, उन्हें छात्रों के समय का भी ध्यान रखना होगा। समय भी छात्रों के लिए एक महत्वपूर्ण

बाधा के रूप में आया। मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा प्रणाली के साथ अध्ययन करने वाले शिक्षार्थी ज्यादातर कामकाजी और पेशेवर होते हैं और उनके पास निर्धारित समय-आधारित अध्ययन के लिए पर्याप्त समय नहीं होता है। समय की कमी के कारण वे टीवी पर आने वाले वीडियो व्याख्यान देखने में असमर्थ होते हैं। खासकर जब एजुकेशन टीवी प्रोग्राम आता है तब यह आवश्यक नहीं कि उनके पास इसे देखने के लिए टीवी एवं उचित स्थान उपलब्ध हो और न ही उनके पास इतने लंबे वीडियो व्याख्यान के लिए पर्याप्त समय होता है। इसलिए विश्वविद्यालयों को इसके बारे में सोचना चाहिए और इस पर चर्चा करनी चाहिए। वर्तमान में न्यू मीडिया, मोबाइल फोन रखने वाले लगभग हर छात्र के बीच लोकप्रिय हो गया है। शिक्षार्थी टीवी से दूर जा रहे हैं। वीडियो व्याख्यान को वेबकास्टिंग या यूट्यूब चैनल के माध्यम से छात्रों तक पहुंचाया जा सकता है, ताकि वे किसी भी समय कहीं भी देख सकें और उनका उपयोग कर सकें।

निष्कर्ष

विद्यार्थियों में जागरूकता की कमी मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा प्रणाली में वीडियो व्याख्यान के उपयोग में आने वाली बाधाओं में प्रमुख है। अधिकांश हितधारकों (विद्यार्थी, शिक्षक, वीडियो निर्माता एवं तकनीकी विशेषज्ञ) द्वारा इंटरनेट का उपयोग करने के बावजूद विद्यार्थियों को ई-लर्निंग के बारे में जागरूक करना आवश्यक है। मोबाइल संदेश, सोशल मीडिया, संपर्क शिविर, प्रायोगिक शिविर, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, प्रिंट मीडिया (पैम्फलेट और विज्ञापन) के माध्यम से शिक्षार्थियों में न्यू मीडिया द्वारा वीडियो व्याख्यान से अध्ययन के लिए जागरूक एवं प्रोत्साहित किया जा सकता है। शैक्षिक वीडियो व्याख्यानों में अन्तरक्रियाशीलता एवं उनकी गुणवक्ता में कमी इनके उपयोग में एक महत्वपूर्ण बाधा है। शिक्षकों एवं वीडियो निर्माताओं द्वारा कम अवधि एवं गुणवक्ता पूर्ण वीडियो व्याख्यानों का निर्माण करना चाहिए। वीडियो व्याख्यान में अन्तरक्रियाशीलता की कमी नहीं होनी चाहिए। वीडियो व्याख्यान को 15 मिनट से कम अवधि का और प्रस्तुतकर्ता का विषय विशेषज्ञ होने के साथ-साथ उसमें प्रयुक्त PPT में अंतर्निहित वस्तुएं गुणवक्तापूर्ण होना एवं उसमें चित्र, टेक्स्ट एनीमेशन आदि का प्रयोग प्रभावी वीडियो व्याख्यान निर्मित करने में मदद करता है। इसके साथ उन्होंने एसडी की तुलना में बेहतर गुणवत्ता के लिए एचडी प्रारूप में ऑडियो-वीडियो व्याख्यान का निर्माण करने पर जोर दिया। सीमित इंटरनेट कनेक्टिविटी और सीमित डाटा न्यू मीडिया आधारित वीडियो व्याख्यान में अवरोध के रूप में सामने आए। अधिक से अधिक विद्यार्थियों को इंटरनेट की उपलब्धता हो और पर्याप्त इंटरनेट डाटा प्राप्त हो इस हेतु विशेष प्रयास करने होंगे। शिक्षार्थियों को जागरूक करना होगा कि यदि वे यू-ट्यूब के माध्यम से वीडियो व्याख्यान देख रहे हैं, तो वे उन्हें डाउनलोड भी कर सकते हैं, जिससे उन्हें एक ही वीडियो व्याख्यान पुन: देखने के लिए इंटरनेट का इस्तेमाल करने की आवश्यकता नहीं होगी। वीडियो व्याख्यान का फाइल का आकार कम किया जा सकता है, जिससे वीडियो व्याख्यान को अपलोड और डाउनलोड करते समय कम इंटरनेट डाटा का उपयोग होगा। समय की कमी भी एक प्रमुख बाधा है, जो वीडियो व्याख्यान के दौरान आती है।

मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा प्रणाली से अध्ययन करने वाले अधिकांश विद्यार्थी कामकाजी और पेशेवर होते हैं और उनके पास निर्धारित समय-आधारित अध्ययन के लिए पर्याप्त समय नहीं होता है। समय की कमी के कारण, वे टीवी पर विशेष समय पर आने वाले वीडियो व्याख्यानों को देखने में असमर्थ होते हैं। खासकर जब शैक्षिक वीडियो कार्यक्रम आते हैं तब यह आवश्यक नहीं कि उनके पास इसे देखने के लिए टीवी एवं उचित स्थान उपलब्ध हो और न ही उनके पास इतने लंबे वीडियो व्याख्यान के लिए पर्याप्त समय होता है। इसलिए विश्वविद्यालयों को इसके बारे में सोचना चाहिए और इस पर चर्चा करनी चाहिए। वीडियो व्याख्यानों की अवधि ज्यादा अधिक नहीं होनी चाहिए। वीडियो व्याख्यान को वेबकास्टिंग या यूट्यूब चैनल के माध्यम से शिक्षार्थियों तक पहुंचाया जा सकता है, ताकि वे इनका उपयोग कहीं भी और किसी भी समय कर सकें। न्यू मीडिया का उपयोग शैक्षिक रूप में अधिक से अधिक हो सके, इस हेतु विश्वविद्यालयों को सशक्त एवं सुदृढ़ प्रयास करने होंगे।

संदर्भ

चोऊ, सी. एच. एवं पाई, एस. एम. (2015). द इफेक्टिवनेस ऑफ फेसबुक ग्रुप्स फॉर ई लर्निंग. *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इंफॉर्मेशन एंड एजुकेशन टेक्नॉलोजी*, *5*, 477-482

प्रातमा, वाई., हरतांतो, आर. एवं कुसुमावर्दनी, एस.एस. (2018). वैलिडेटिंग यूट्यूब फैक्टर्स अफेक्टिंग लर्निंग परफॉर्मेंस. *आइओपी कांफ्रेस सीरिज: मटीरियलस साइंस एंड इंजीनियरिंग*. आईओपी पब्लिशिंग

फ्लो, टी. (2008). *न्यू मीडिया: एन इंट्रोडक्शन*. यूके: ओयूपी

बर्नार्ड, आर. एम., अब्रामी, पी.सी., बोरोखोवस्की, ई., वेड, सी.ए., तमीम, आर. एम., सुर्केस, एम. ए. (2009). ए मेटा एनालिसिसि ऑफ थ्री टाइप्स ऑफ इंटरेक्शन ट्रीटमेंट्स इन डिस्टेंस एजुकेशन. *द रिव्यू ऑफ एजुकेशनल रिसर्च*, पृ. 1243-1289.

मेनोविच, एल. (2003). द *न्यू मीडिया रीडर*. (एन. डबल्यू. फ्रुइन एवं एन. मोंटफोर्ट, संपादक). कैम्ब्रिज: द एमआईटी प्रेस.

रहीम, एन.ए. एवं मंसोर, एन. (2017). इंस्टाग्राम इन ईएसएल क्लासरूम. *मैन इन इंडिया*, 118-114.

लोगन, आर. (2010). *अंडरस्टेंडिंग न्यू मीडिया*. टोरंटो: पीटर लैंग पब्लिशिंग

संचार माध्यम | खंड 32(2): 75-80, जुलाई-दिसंबर 2020
आईएसएसएन: 2321-2608

उच्च शिक्षा में वेब रेडियो के महत्व का अध्ययन

डॉ. रेनू श्रीवास्तव[1]

सारांश

तकनीक के व्यापक विकास के कारण हम संचार के सेटेलाइट युग में हैं। जैसे-जैसे तकनीक का विकास हो रहा है इलेक्ट्रोनिक मीडिया संपूर्ण विश्व को एक धरातल पर लाकर खड़ा कर रहा है। तकनीक के विकास के साथ रेडियो ने भी नई बुलन्दियों को छुआ है। इसके आकार-प्रकार में व्यापक अन्तर आया है। डिजिटल और इंटरनेट के विस्तार के साथ अब वेब रेडियो का तेजी से विस्तार हो रहा है। वेब रेडियो ने शिक्षा को एक नया आयाम दिया है, खासतौर पर दूरस्थ शिक्षा को। दूरस्थ प्रणाली से शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों में इसने क्लासरूम की कमी को पूरा किया है। इसके माध्यम से एक ही प्लेटफार्म पर सभी विषयों का ज्ञान विद्यार्थियों को मिल जाता है और वे अपनी आवश्यकतानुसार उसका प्रयोग शिक्षा को पूरा करने के लिए कर सकते हैं। वेब रेडियो ने शिक्षा को पहले से अधिक सशक्त बनाया है। वर्तमान समय में जब अधिकतर लोग इंटरनेट का उपयोग कर रहे हैं, ऐसे में वेब रेडियो का महत्व और भी बढ़ गया है। कोरोना जैसी महामारी के दौर में संचार के इस माध्यम की उपयोगिता पहले से कहीं अधिक प्रासंगिक और उपयोगी सिद्ध हुई है।

संकेत शब्द : प्रौद्योगिकी, वेब रेडियो, डिजिटल तकनीक, सेटेलाइट, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, दूरस्थ शिक्षा, उच्च शिक्षा

प्रस्तावना

वर्तमान समय में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का महत्व दिनों दिन बढ़ता जा रहा है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के बढ़ते कदमों ने दूरियों को समाप्त कर संसार को एक शहर में बदल दिया है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में टेलीविजन जहां दृश्य एवं श्रव्य माध्यम है, वहीं रेडियो श्रव्य संचार का मुख्य माध्यम है। रेडियो आज भी लोगों के लिए जन सम्पर्क का बहुत ही आवश्यक स्रोत है। रेडियो एक ऐसा माध्यम है, जो बहुत कम समय में गांव तक भी किसी भी संदेश को पहुंचा देता है। आज जहां टेलीविजन की पहुंच नहीं है, वहां तक रेडियो का विस्तार है और इसका इतिहास टेलीविजन से पुराना है। आरम्भ में संचार माध्यमों में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के रूप में रेडियो का ही आविष्कार हुआ और उस समय रेडियो संचार का प्रबल माध्यम था। उस समय लाखों श्रोताओं तक अपनी बात एक साथ पहुंचाने का रेडियो प्रभावी माध्यम था। जो लोग पढ़े-लिखे नहीं थे, उन तक भी बात पहुंच जाती थी, क्योंकि इसका लाभ लेने के लिए साक्षर होना आवश्यक नहीं है। इसी कारण से इसकी पहुंच ग्रामीण इलाकों तक है, क्योंकि ये शिक्षा की आवश्यकता की जंजीरों से मुक्त है। रेडियो में संवाद साधारण बातचीत के माध्यम से होता है।

बदलते दौर में जब टी.वी. और इंटरनेट ने अपनी एक अलग पहचान बनाई है, तब रेडियो हाशिये पर चला गया है। घर-घर में टी.वी. ने रेडियो की जगह ले ली। अब तक जो रेडियो संचार, जानकारी एवं मनोरंजन का सशक्त माध्यम था, उसकी लोकप्रियता घटने लगी। लेकिन रेडियो ने बदलते परिवेश को स्वीकारा और आवश्यकतानुसार लोगों की पंसद के हिसाब से नये सिरे से अपने आपको प्रस्तुत किया। उससे लोग फिर से जुड़ने लगे। आज का युग प्रौद्योगिकी का युग है। प्रौद्योगिकी युग में बदलती तकनीक के साथ रेडियो की तकनीक एवं स्वरूप में भी काफी परिवर्तन हुआ है, जिसके फलस्वरूप रेडियो का एक नया रूप हमारे सामने आया, वह है—वेब रेडियो। इंटरनेट रेडियो को वेब रेडियो भी कहा जाता है। 21 वीं सदी में इंटरनेट हर आयु वर्ग के लिए आवश्यक एवं उपयोगी संसाधन बन गया है। आज हर दूसरा व्यक्ति इंटरनेट का उपयोग कर रहा है, जिससे वेब रेडियो का महत्व और भी बढ़ जाता है। परम्परागत रेडियो, एफ.एम. रेडियो, कम्युनिटी रेडियो आदि सभी के प्रसारण का एक निश्चित और सीमित दायरा है। वेब रेडियो को एक निश्चित दायरे में नहीं बांधा जा सकता है। इनके दायरे के साथ-साथ पारम्परिक रेडियो एवं वेब रेडियो के बीच एक और बुनियादी अन्तर सार्वजनिक प्रसारण का है। वेब रेडियो मनोरंजन के साथ-साथ विचारों के आदान–प्रदान करने का बहुत अच्छा विकल्प है। साथ ही वेब रेडियो उन लोगों में ज्यादा लोकप्रिय है, जो अप्रवासी हैं, क्योंकि वे चाहे कहीं भी रहें अपनी पसंद के कार्यक्रम सुन सकते हैं। इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए सन् 1993 में कार्ल मालमुद ने सबसे पहले 'इंटरनेट टॉक रेडियो' स्थापित किया (जेमी, 2020)। ये एक अनौपचारिक बातचीत का साप्ताहिक कार्यक्रम था। कम्प्यूटर डिवाइस के माध्यम से रेडियो को अनुभव करना अपेक्षाकृत एक नया तरीका है। इसे सुनने के लिए श्रोता को एक नये इंटरफेस यानी स्क्रीन, की-बोर्ड और माउस का प्रयोग करना पड़ता है। इनकी सहायता से श्रोता अपने मनमुताबिक स्टेशन और सामग्री का चयन करता है और उन्हें कभी भी सुन सकता है। वेब रेडियो को इंटरनेट रेडियो, नेट रेडियो और स्ट्रीमिंग रेडियो के नाम से भी जाना जाता है। सामान्यतः वेब रेडियो की सेवाएं किसी भी स्थान पर सुगम हैं। बस इंटरनेट की सुविधा होनी चाहिए। जैसे कोई भी व्यक्ति आस्ट्रेलिया के स्टेशन को दुनिया के किसी भी कोने में सुन सकता है। वेब रेडियो द्वारा उपलब्ध कराई जाने वाली सेवाओं की बात करें तो इसमें समाचार, खेल और संगीत की विभिन्न शैलियों और हर वह कार्यक्रम उपलब्ध करा जाता है, जो परंपरागत रेडियो में उपलब्ध है।

[1]वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान। ईमेल : emailtorenu@gmail.com

उच्च शिक्षण संस्थाओं में वेब रेडियो का महत्व

शिक्षा किसी भी देश के लिए किया जाने वाला वह महत्वपूर्ण निवेश है, जिससे उस देश के नागरिक न केवल साक्षर होते हैं, वरन् राष्ट्र को तकनीकी रूप से नवाचारी भी बनाते हैं। कुछ वर्षो से प्रयास किए जा रहे हैं कि किस तरह से संचार प्रौद्योगिकी का प्रयोग शिक्षा के क्षेत्र में किया जाए, ताकि अधिक से अधिक लोगों तक शिक्षा पहुंचे। संचार प्रौद्योगिकी की विशेषता है कि यह किसी भी समय और कहीं भी समायोजित की जा सकती है। छात्र कभी भी किसी भी समय अपनी सुविधानुसार अपने पाठ्यक्रम से सम्बन्धित सामग्री प्राप्त कर सकते हैं। इस नई तकनीक पर आधारित शिक्षा में एक निश्चित भौतिक स्थान पर होने की आवश्यकता भी समाप्त हो जाती है। शिक्षा प्राप्त करने के लिए आवश्यक नहीं है कि छात्र किसी निश्चित स्थान व कक्षा विशेष में रहकर ही शिक्षा ग्रहण करें। शिक्षा के क्षेत्र में रेडियो का प्रयोग बहुत तेजी से हो रहा है। शिक्षा पर आधारित कई कार्यक्रमों का प्रसारण रेडियो से किया जा रहा है। जनजागृति के लिए भी दूरदराज के क्षेत्रों में संदेश पहुंचाने के कार्य में रेडियो की अहम भूमिका है। हम कह सकते हैं कि रेडियो का प्रयोग शिक्षा के क्षेत्र में एक कुशल शिक्षक की तरह हो रहा है। इंटरनेट प्रौद्योगिकी से अध्ययन और अध्यापन के भी कई नये तरीके खोजे जा सकते हैं। वेब रेडियो ने कक्षा-कक्ष की बाध्यता को समाप्त कर दिया है। कोई भी संस्था इसे स्थापित कर सकती है। वेब रेडियो पर संबधित पाठ्यक्रम की अध्ययन सामग्री को रिकॉर्ड कर अपलोड किया जाता है, जिसे संसार के किसी भी कोने में कोई भी सुन सकता है। इसमें समय की पाबंदी को भी ध्यान में रखा गया है। जिस समय वेब रेडियो पर कोई प्रसारण किया जा रहा है यदि उस समय किसी कारणवश हम नहीं सुन पाते हैं तो उसके लिए सिर्फ संस्था को वेब रेडियो स्थापित करने के साथ 'आर्काइव' भी स्थापित करना होता है। अगर हम कोई प्रसारण नहीं सुन पाए हैं, तो 'आर्काइव' पर क्लिक कर उसमें से अपने पाठ्यक्रम से सम्बन्धित शैक्षणिक प्रसारण को अपनी सुविधानुसार सुन सकते हैं। यह शैक्षणिक प्रसारण क्लासरूम शिक्षण के समान ही प्रभावकारी होता है (विकासपीडिया, 2015)।

शोध प्रविधि

यह समस्या मानव व्यवहार पर आधारित है, इसलिए प्रश्नावली का प्रयोग करके उनके अनुभव पर आधारित आंकड़ों को प्राप्त कर विश्लेषण किया गया है। आंकड़ों का संकलन कर लेने से ही अभीष्ट लक्ष्यों की प्राप्ति नहीं हो सकती है, इसके लिए आवश्यक है कि प्राप्त आंकड़ों का समस्या के संदर्भ में विश्लेषण करके उनकी अर्थपूर्ण व्याख्या प्रस्तुत की जाए। प्रस्तुत अध्ययन के लिए राजस्थान के विभिन्न विश्वविद्यालयों में अध्ययनरत छात्रों को शामिल किया गया है। अध्ययन के उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए प्रश्नावली द्वारा कुल 245 न्यायदर्शों के अभिमत के आधार पर प्रश्नों को भिन्न-भिन्न सारणियों में व्यवस्थित करके उनका विश्लेषण कर व्याख्या की गई है।

शोध के दौरान निम्नलिखित प्रश्नों पर डाटा संग्रहण किया गया :

1. क्या आप कम्प्यूटर का प्रयोग करते हैं?

कुल पुरुषों में से 92.5 प्रतिशत पुरुष स्वीकार करते हैं कि वे कम्प्यूटर का प्रयोग करते हैं, वहीं 6.8 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि वे कभी-कभी कम्प्यूटर का प्रयोग करते हैं और 0.8 प्रतिशत उत्तरदाता इनमें से किसी भी विकल्प को नहीं स्वीकारते हैं। इसी प्रकार कुल महिलाओं में से 83.9 प्रतिशत महिलाएं स्वीकार करती हैं कि वे कम्प्यूटर का प्रयोग करती हैं, वहीं 5.4 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात से इनकार करती हैं, जबकि 9.8 प्रतिशत महिला उत्तरदाताओं का कहना है कि वे कभी-कभी कम्प्यूटर का प्रयोग करती हैं और 0.9 प्रतिशत उत्तरदाता इनमें से किसी भी विकल्प को नहीं स्वीकारती हैं।

कुल 15 से 25 आयु वर्ग में से 85.3 प्रतिशत उत्तरदाता स्वीकार करते हैं कि वे कम्प्यूटर का प्रयोग करते हैं, वहीं 5.5 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात से इनकार करते हैं, जबकि 8.3 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि वे कभी-कभी कम्प्यूटर का प्रयोग करते हैं और 0.9 प्रतिशत उत्तरदाता इनमें से किसी भी विकल्प को नहीं स्वीकारते हैं। 25 से 35 आयु वर्ग में से 91.4 प्रतिशत उत्तरदाता स्वीकार करते हैं कि वे कम्प्यूटर का प्रयोग करते हैं वहीं 8.6 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि वे कभी-कभी कम्प्यूटर का प्रयोग करते हैं। 35 से 45 आयु वर्ग के उत्तरदाताओं में से 89.7 प्रतिशत उत्तरदाता स्वीकार करते हैं कि वे कम्प्यूटर का प्रयोग करते हैं, जबकि 10.3 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि वे कभी-कभी कम्प्यूटर का प्रयोग करते हैं। वहीं 45 से अधिक आयु वर्ग के कुल उत्तरदाताओं में से 92.3 प्रतिशत उत्तरदाता स्वीकार करते हैं कि वे कम्प्यूटर का प्रयोग करते हैं, जबकि 2.4 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात से इनकार करते हैं। 5.1 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि वे कभी-कभी कम्प्यूटर का प्रयोग करते हैं और 2.6 प्रतिशत उत्तरदाता इनमें से किसी भी विकल्प को नहीं स्वीकारते हैं।

शैक्षिक योग्यता के आधार पर बात करें तो स्नातक स्तर के कुल उत्तरदाताओं में से 83.8 प्रतिशत उत्तरदाता स्वीकार करते हैं कि वे कम्प्यूटर का प्रयोग करते हैं, वहीं 7.4 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात से इंकार करते हैं, जबकि 8.8 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि वे कभी-कभी कम्प्यूटर का प्रयोग करते हैं। इसी प्रकार स्नातकोत्तर स्तर के कुल उत्तरदाताओं में से 90.4 प्रतिशत उत्तरदाता स्वीकार करते हैं कि वे कम्प्यूटर का प्रयोग करते हैं। वहीं, 0.6 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात से इनकार करते हैं, जबकि 7.9 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि वे कभी-कभी वे कम्प्यूटर का प्रयोग करते हैं और 1.1 प्रतिशत उत्तरदाता इनमें से किसी भी विकल्प को नहीं स्वीकारते हैं।

2. क्या आप इंटरनेट रेडियो के बारे में जानते हैं?

कुल पुरुषों में से 76.7 प्रतिशत उत्तरदाता स्वीकार करते हैं कि वे इंटरनेट रेडियो के बारे में जानते हैं, वहीं 16.5 प्रतिशत उत्तरदाता इससे इनकार करते हैं, जबकि 5.3 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि उन्होंने इंटरनेट रेडियो के बारे में सुना है और 1.5 प्रतिशत इनमें से किसी भी विकल्प को नहीं स्वीकारते हैं। इसी प्रकार कुल महिलाओं में से 76.8 प्रतिशत उत्तरदाता स्वीकार करती हैं कि वे इंटरनेट रेडियो के बारे में जानती हैं। वहीं 17.0 प्रतिशत उत्तरदाता इससे इनकार करती हैं, जबकि 6.3 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि उन्होंने इंटरनेट रेडियो के बारे में सुना है। इसी प्रकार कुल 15 से 25 आयु वर्ग में से 72.5 प्रतिशत उत्तरदाता स्वीकार

करते हैं कि वे इंटरनेट रेडियो के बारे में जानते हैं। वहीं 20.2 प्रतिशत उत्तरदाता इससे इनकार करते हैं, जबकि 7.3 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि उन्होंने इंटरनेट रेडियो के बारे में सुना है। कुल 25 से 35 आयु वर्ग में से 84.5 प्रतिशत उत्तरदाता स्वीकार करते हैं कि वे इंटरनेट रेडियो के बारे में जानते हैं। वहीं 10.3 प्रतिशत उत्तरदाता इससे इनकार करते हैं, जबकि 3.4 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि उन्होंने इंटरनेट रेडियो के बारे में सुना है और 1.7 प्रतिशत उत्तरदाता इनमें से किसी भी विकल्प को नहीं स्वीकारते हैं। कुल 35 से 45 आयु वर्ग के उत्तरदाताओं में से 82.5 प्रतिशत उत्तरदाता स्वीकार करते हैं कि वे इंटरनेट रेडियो के बारे में जानते हैं। वहीं 15.4 प्रतिशत उत्तरदाता इससे इनकार करते हैं, जबकि 2.6 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि उन्होंने इंटरनेट रेडियो के बारे में सुना है। 45 से अधिक आयु वर्ग के कुल उत्तरदाताओं में से 71.8 प्रतिशत उत्तरदाता स्वीकार करते हैं कि वे इंटरनेट रेडियो के बारे में जानते हैं। वहीं 17.9 प्रतिशत उत्तरदाता इससे इनकार करते हैं, जबकि 7.7 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि उन्होंने इंटरनेट रेडियो के बारे में सुना है और 2.6 प्रतिशत उत्तरदाता इनमें से किसी भी विकल्प को नहीं स्वीकारते हैं।

शैक्षिक योग्यता की बात करें तो स्नातक स्तर के कुल उत्तरदाताओं में से 64.7 प्रतिशत उत्तरदाता स्वीकार करते हैं कि वे इंटरनेट रेडियो के बारे में जानते हैं। वहीं 23.5 प्रतिशत उत्तरदाता इससे इनकार करते हैं, जबकि 11.8 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि उन्होंने इंटरनेट रेडियो के बारे में सुना है। इसी प्रकार स्नातकोत्तर स्तर के कुल उत्तरदाताओं में से 81.4 प्रतिशत उत्तरदाता स्वीकार करते हैं कि वे इंटरनेट रेडियो के बारे में जानते हैं। वहीं 14.1 प्रतिशत उत्तरदाता इससे इनकार करते हैं, जबकि 3.4 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि उन्होंने इंटरनेट रेडियो के बारे में सुना है और 1.1 प्रतिशत उत्तरदाता इनमें से किसी भी विकल्प को नहीं स्वीकारते हैं।

3. क्या आप वेब रेडियो पर शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम सुनते हैं?

कुल पुरुषों में से 55.6 प्रतिशत उत्तरदाता स्वीकार करते हैं कि वे वेब रेडियो पर शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम सुनते हैं। वहीं 19.5 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात से इनकार करते हैं, जबकि 20.3 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि वे कभी-कभी वेब रेडियो पर शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम सुनते हैं और 4.5 प्रतिशत उत्तरदाता इनमें से किसी भी विकल्प को नहीं स्वीकारते हैं। इसी प्रकार कुल महिलाओं में से 60.7 प्रतिशत वेब रेडियो पर शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम सुनती हैं। वहीं 16.1 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात से इनकार करती हैं, जबकि 23.2 प्रतिशत महिला उत्तरदाता कभी-कभी वेब रेडियो पर शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम सुनती हैं। इसी प्रकार कुल 15 से 25 आयु वर्ग में से 58.7 प्रतिशत उत्तरदाता स्वीकार करते हैं कि वे वेब रेडियो पर शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम सुनते हैं। वहीं 22.0 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात से इनकार करते हैं, जबकि 18.3 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि वे कभी-कभी वेब रेडियो पर शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम सुनते हैं और 0.9 प्रतिशत उत्तरदाता इनमें से किसी भी विकल्प को नहीं स्वीकारते हैं। 25 से 35 आयु वर्ग में से कुल 55.2 प्रतिशत उत्तरदाता स्वीकार करते हैं कि वे वेब रेडियो पर शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम सुनते हैं। वहीं 12.1 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात से इनकार करते हैं, जबकि 29.3 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि वे कभी-कभी ऐसे कार्यक्रम सुनते हैं और 3.4 प्रतिशत उत्तरदाता इनमें से किसी भी विकल्प को नहीं स्वीकारते हैं। कुल 35 से 45 आयु वर्ग के उत्तरदाताओं में से 61.5 प्रतिशत उत्तरदाता स्वीकार करते हैं कि वे वेब रेडियो पर शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम सुनते हैं। वहीं 12.8 प्रतिशत उत्तरदाता इससे इनकार करते हैं, जबकि 25.6 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि वे कभी-कभी वेब रेडियो पर शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम सुनते हैं। 45 से अधिक आयु वर्ग के कुल उत्तरदाताओं में से 56.4 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि वे वेब रेडियो पर शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम सुनते हैं। वहीं 20.5 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात से इनकार करते हैं, जबकि 15.4 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि वे कभी-कभी वेब रेडियो पर शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम सुनते हैं और 7.7 प्रतिशत उत्तरदाता इनमें से किसी भी विकल्प को नहीं स्वीकारते हैं।

शैक्षिक योग्यता की बात करें तो स्नातक स्तर के कुल उत्तरदाताओं में से 60.3 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि वे वेब रेडियो पर शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम सुनते हैं। वहीं 19.1 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात से इनकार करते हैं, जबकि 17.6 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि वे कभी-कभी ऐसे कार्यक्रम सुनते हैं और 2.9 प्रतिशत उत्तरदाता इनमें से किसी भी विकल्प को नहीं स्वीकारते हैं। इसी प्रकार स्नातकोत्तर स्तर के कुल उत्तरदाताओं में से 57.1 प्रतिशत उत्तरदाता स्वीकार करते हैं कि वे वेब रेडियो पर शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम सुनते हैं। वहीं 17.5 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात से इनकार करते हैं, जबकि 23.2 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना हैं कि वे कभी-कभी वेब रेडियो पर शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम सुनते हैं और 2.3 प्रतिशत उत्तरदाता इनमें से किसी भी विकल्प को नहीं स्वीकारते हैं।

4. क्या वेब रेडियो पर प्रसारित शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम लाभदायक होते हैं?

इसी प्रकार कुल पुरुषों में से 81.2 प्रतिशत उत्तरदाता स्वीकारते हैं कि वेब रेडियो पर प्रसारित शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम लाभदायक होते हैं। वहीं 3.8 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात से इनकार करते हैं, जबकि 8.3 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि कभी-कभी ऐसे कार्यक्रम लाभदायक होते हैं और 6.8 प्रतिशत उत्तरदाता इनमें से किसी भी विकल्प को नहीं स्वीकारते हैं। इसी प्रकार कुल महिलाओं में से 80.4 प्रतिशत महिलाएं स्वीकारती हैं कि वेब रेडियो पर प्रसारित शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम लाभदायक होते हैं। वहीं 3.6 प्रतिशत उत्तरदाता इससे इनकार करती हैं, जबकि 10.7 प्रतिशत महिलाओं का मानना है कि कभी-कभी ऐसे प्रसारित कार्यक्रम लाभदायक होते हैं और 5.4 प्रतिशत उत्तरदाता इनमें से किसी भी विकल्प को नहीं स्वीकारते हैं।

आयु की दृष्टि से 15 से 25 आयु वर्ग में से 78.9 प्रतिशत उत्तरदाता स्वीकारते हैं कि वेब रेडियो पर प्रसारित शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम लाभदायक होते हैं। वहीं 7.3 प्रतिशत उत्तरदाता इससे इनकार करते है, जबकि 9.2 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना हैं कि कभी-कभी ऐसे कार्यक्रम लाभदायक होते हैं और 4.6 प्रतिशत उत्तरदाता इनमें से किसी भी विकल्प को नहीं स्वीकारते हैं। कुल 25 से 35 आयु वर्ग में से 82.8 प्रतिशत उत्तरदाता स्वीकार करते हैं कि वेब रेडियो पर प्रसारित शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम लाभदायक होते हैं। वहीं 12.1 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि कभी-कभी वेब रेडियो पर प्रसारित शिक्षा

सम्बन्धी कार्यक्रम लाभदायक होते हैं और 5.2 प्रतिशत उत्तरदाता इनमें से किसी भी विकल्प को नहीं स्वीकारते हैं। कुल 35 से 45 आयु वर्ग के उत्तरदाताओं में से 92.3 प्रतिशत उत्तरदाता स्वीकार करते हैं कि वेब रेडियो पर प्रसारित शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम लाभदायक होते हैं। वहीं 2.6 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात से इनकार करते हैं, जबकि 5.1 प्रतिशत उत्तरदाता इनमें से किसी भी विकल्प को नहीं स्वीकारते हैं। 45 से अधिक आयु वर्ग के कुल उत्तरदाताओं में से 71.8 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि वेब रेडियो पर प्रसारित शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम लाभदायक होते हैं, जबकि 15.4 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि कभी-कभी ही ऐसे कार्यक्रम लाभदायक होते हैं और 12.8 प्रतिशत उत्तरदाता इनमें से किसी भी विकल्प को नहीं स्वीकारते हैं।

शैक्षिक योग्यता की बात करें तो स्नातक स्तर के कुल उत्तरदाताओं में से 77.9 प्रतिशत उत्तरदाता स्वीकारते हैं कि वेब रेडियो पर प्रसारित शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम लाभदायक होते हैं, वहीं 8.8 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात से इनकार करते हैं, जबकि 7.4 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना हैं कि कभी-कभी ऐसे कार्यक्रम लाभदायक होते हैं और 5.9 प्रतिशत उत्तरदाता इनमें से किसी भी विकल्प को नहीं स्वीकारते हैं। इसी प्रकार स्नातकोत्तर स्तर के कुल उत्तरदाताओं में से 81.9 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात को स्वीकार करते हैं कि वेब रेडियो पर प्रसारित शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम लाभदायक होते हैं, वहीं 1.7 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात से इनकार करते हैं, जबकि 10.2 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि कभी-कभी वेब रेडियो पर प्रसारित शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम लाभदायक होते हैं और 6.2 प्रतिशत उत्तरदाता इनमें से किसी भी विकल्प को नहीं स्वीकारते हैं।

5. क्या वेब रेडियो पर प्रसारित शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम से आयोजित सम्बन्धित परीक्षा में फायदा होता है?

कुल पुरुषों में कुल 66.2 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात को स्वीकार करते हैं कि वेब रेडियो पर प्रसारित शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम से आयोजित सम्बन्धित परीक्षा में फायदा होता है। वहीं 7.5 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात से इनकार करते हैं, जबकि 18.0 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि उन्हें कभी-कभी वेब रेडियो पर प्रसारित शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम से आयोजित सम्बन्धित परीक्षा में फायदा होता है और 8.3 प्रतिशत उत्तरदाता इनमें से किसी भी विकल्प को नहीं स्वीकारते हैं। इसी प्रकार कुल महिलाओं में से कुल 64.3 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात को स्वीकार करती हैं कि वेब रेडियो पर प्रसारित शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम से आयोजित सम्बन्धित परीक्षा में फायदा होता है। वहीं 8.9 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात से इनकार करती हैं, जबकि 24.1 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि उन्हें कभी-कभी वेब रेडियो पर प्रसारित शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम से आयोजित सम्बन्धित परीक्षा में फायदा होता है और 2.7 प्रतिशत उत्तरदाता इनमें से किसी भी विकल्प को नहीं स्वीकारते हैं।

आयु की दृष्टि से 15 से 25 आयु वर्ग में से 63.3 प्रतिशत उत्तरदाता स्वीकार करते हैं कि वेब रेडियो पर प्रसारित शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम से आयोजित सम्बन्धित परीक्षा में फायदा होता है। वहीं 12.8 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात से इनकार करते हैं, जबकि 19.3 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि उन्हें कभी-कभी वेब रेडियो पर प्रसारित शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम से आयोजित सम्बन्धित परीक्षा में फायदा होता है और 4.6 प्रतिशत उत्तरदाता इनमें से किसी भी विकल्प को नहीं स्वीकारते हैं। कुल 25 से 35 आयु वर्ग में से 60.3 प्रतिशत उत्तरदाता स्वीकार करते हैं कि वेब रेडियो पर प्रसारित शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम से आयोजित सम्बन्धित परीक्षा में फायदा होता है। वहीं 5.2 प्रतिशत उत्तरदाता इससे इनकार करते हैं, जबकि 31.0 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि उन्हें कभी-कभी वेब रेडियो पर प्रसारित शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम से आयोजित सम्बन्धित परीक्षा में फायदा होता है और 3.4 प्रतिशत उत्तरदाता इनमें से किसी भी विकल्प को नहीं स्वीकारते हैं। कुल 35 से 45 आयु वर्ग के उत्तरदाताओं में से 76.9 प्रतिशत उत्तरदाता स्वीकार करते हैं कि वेब रेडियो पर प्रसारित शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम से आयोजित सम्बन्धित परीक्षा में फायदा होता है। वहीं 2.6 प्रतिशत उत्तरदाता इससे इनकार करते हैं, जबकि 17.9 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना हैं कि उन्हें कभी-कभी वेब रेडियो पर प्रसारित शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम से आयोजित सम्बन्धित परीक्षा में फायदा होता है और 2.6 प्रतिशत उत्तरदाता इनमें से किसी भी विकल्प को नहीं स्वीकारते हैं। 45 से अधिक आयु वर्ग के कुल उत्तरदाताओं में से 66.7 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात को स्वीकार करते हैं कि वेब रेडियो पर प्रसारित शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम से आयोजित सम्बन्धित परीक्षा में फायदा होता है। वहीं 5.1 प्रतिशत उत्तरदाता इससे इनकार करते हैं, जबकि 12.8 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि उन्हें कभी-कभी वेब रेडियो पर प्रसारित शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम से आयोजित सम्बन्धित परीक्षा में फायदा होता है और 15.4 प्रतिशत उत्तरदाता इनमें से किसी भी विकल्प को नहीं स्वीकारते हैं।

शैक्षिक योग्यता की दृष्टि से स्नातक स्तर के कुल उत्तरदाताओं में से 70.6 प्रतिशत उत्तरदाता स्वीकार करते हैं कि वेब रेडियो पर प्रसारित शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम से आयोजित सम्बन्धित परीक्षा में फायदा होता है। वहीं 11.8 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात से इनकार करते हैं, जबकि 13.2 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि उन्हें कभी-कभी वेब रेडियो पर प्रसारित शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम से आयोजित सम्बन्धित परीक्षा में फायदा होता है और 4.4 प्रतिशत उत्तरदाता इनमें से किसी भी विकल्प को नहीं स्वीकारते हैं। इसी प्रकार स्नातकोत्तर स्तर के कुल उत्तरदाताओं में से 63.3 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात को स्वीकार करते हैं कि वेब रेडियो पर प्रसारित शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम से आयोजित सम्बन्धित परीक्षा में फायदा होता है। वहीं 6.8 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात से इनकार करते हैं, जबकि 23.7 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि उन्हें कभी-कभी वेब रेडियो पर प्रसारित शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम से आयोजित सम्बन्धित परीक्षा में फायदा होता है और 6.2 प्रतिशत उत्तरदाता इनमें से किसी भी विकल्प को नहीं स्वीकारते हैं।

6. क्या आप वेब रेडियो के कार्यक्रम सुनकर भविष्य की शैक्षिक योजना तैयार करते हैं?

कुल पुरुषों में से 40.6 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात को स्वीकार करते हैं कि वे वेब रेडियो के कार्यक्रम सुनकर भविष्य की शैक्षिक योजना तैयार करते हैं, वहीं 19.5 प्रतिशत उत्तरदाता इससे इनकार करते हैं, जबकि

32.3 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि वे कभी-कभी वेब रेडियो के कार्यक्रम सुनकर भविष्य की शैक्षिक योजना तैयार करते हैं और 7.5 प्रतिशत उत्तरदाता इनमें से किसी भी विकल्प को नहीं स्वीकारते हैं। इसी प्रकार कुल महिलाओं में से 49.1 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात को स्वीकार करती हैं कि वे वेब रेडियो के कार्यक्रम सुनकर भविष्य की शैक्षिक योजना तैयार करती हैं। वहीं 17.0 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात से इनकार करती हैं, जबकि 28.6 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि वे कभी-कभी वेब रेडियो के कार्यक्रम सुनकर भविष्य की शैक्षिक योजना तैयार करती हैं और 5.4 प्रतिशत उत्तरदाता इनमें से किसी भी विकल्प को नहीं स्वीकारती हैं। आयु की दृष्टि से 15 से 25 आयु वर्ग में से 55.0 प्रतिशत उत्तरदाता स्वीकार करते हैं कि वे वेब रेडियो के कार्यक्रम सुनकर भविष्य की शैक्षिक योजना तैयार करते हैं। वहीं 16.5 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात से इनकार करते हैं, जबकि 22.9 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि वे कभी-कभी वेब रेडियो के कार्यक्रम सुनकर भविष्य की शैक्षिक योजना तैयार करते हैं और 5.5 प्रतिशत उत्तरदाता इनमें से किसी भी विकल्प को नहीं स्वीकारते हैं। 25 से 35 आयु वर्ग में से 43.1 प्रतिशत उत्तरदाता स्वीकार करते हैं कि वे वेब रेडियो के कार्यक्रम सुनकर भविष्य की शैक्षिक योजना तैयार करते हैं। वहीं 22.4 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात से इनकार करते हैं, जबकि 32.8 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि वे कभी-कभी वेब रेडियो के कार्यक्रम सुनकर भविष्य की शैक्षिक योजना तैयार करते हैं और 1.7 प्रतिशत उत्तरदाता इनमें से किसी भी विकल्प को नहीं स्वीकारते हैं। 35 से 45 आयु वर्ग के उत्तरदाताओं में से 38.5 प्रतिशत उत्तरदाता स्वीकार करते हैं कि वे वेब रेडियो के कार्यक्रम सुनकर भविष्य की शैक्षिक योजना तैयार करते हैं। वहीं 15.4 प्रतिशत उत्तरदाता इससे इनकार करते हैं, जबकि 43.6 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि वे कभी-कभी वेब रेडियो के कार्यक्रम सुनकर भविष्य की शैक्षिक योजना तैयार करते हैं और 2.6 प्रतिशत उत्तरदाता इनमें से किसी भी विकल्प को नहीं स्वीकारते हैं। वहीं 45 से अधिक आयु वर्ग के कुल उत्तरदाताओं में से 23.1 प्रतिशत उत्तरदाता स्वीकार करते हैं कि वे वेब रेडियो के कार्यक्रम सुनकर भविष्य की शैक्षिक योजना तैयार करते हैं। वहीं 20.5 प्रतिशत उत्तरदाता इससे इनकार करते हैं, जबकि 35.9 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि वे कभी-कभी वेब रेडियो के कार्यक्रम सुनकर भविष्य की शैक्षिक योजना तैयार करते हैं और 20.5 प्रतिशत उत्तरदाता इनमें से किसी भी विकल्प को नहीं स्वीकारते हैं।

शैक्षिक योग्यता की बात करें तो स्नातक स्तर के कुल उत्तरदाताओं में से 60.3 प्रतिशत उत्तरदाता स्वीकार करते हैं कि वे वेब रेडियो के कार्यक्रम सुनकर भविष्य की शैक्षिक योजना तैयार करते हैं। वहीं 14.7 प्रतिशत उत्तरदाता इससे इनकार करते हैं, जबकि 17.6 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि वे कभी-कभी वेब रेडियो के कार्यक्रम सुनकर भविष्य की शैक्षिक योजना तैयार करते हैं और 7.4 प्रतिशत उत्तरदाता इनमें से किसी भी विकल्प को नहीं स्वीकारते हैं।

इसी प्रकार स्नातकोत्तर स्तर के कुल उत्तरदाताओं में से कुल 38.4 प्रतिशत उत्तरदाता स्वीकार करते हैं कि वे वेब रेडियो के कार्यक्रम सुनकर भविष्य की शैक्षिक योजना तैयार करते हैं। वहीं 19.8 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात से इनकार करते हैं, जबकि 35.6 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि वे कभी-कभी वेब रेडियो के कार्यक्रम सुनकर भविष्य की शैक्षिक योजना तैयार करते हैं और 6.2 प्रतिशत उत्तरदाता इनमें से किसी भी विकल्प को नहीं स्वीकारते हैं।

7. क्या वेब रेडियो पर प्रसारित शिक्षा संबंधी कार्यक्रमों की प्रामाणिकता है?

कुल पुरुषों में से 63.9 प्रतिशत उत्तरदाता स्वीकार करते हैं कि रेडियो पर प्रसारित शिक्षा संबंधी कार्यक्रमों की प्रमाणिकता होती हैं। वहीं 9.8 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात से इनकार करते हैं, जबकि 19.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि कभी-कभी वेब रेडियो पर प्रसारित शिक्षा संबंधी कार्यक्रमों की प्रामाणिकता होती हैं और 6.8 प्रतिशत उत्तरदाता इनमें से किसी भी विकल्प को नहीं स्वीकारते हैं। इसी प्रकार कुल महिलाओं में से 70.5 प्रतिशत महिलाएं स्वीकार करती हैं कि वेब रेडियो पर प्रसारित शिक्षा संबंधी कार्यक्रमों की प्रामाणिकता होती हैं। वहीं 11.6 प्रतिशत महिलाएं इस बात से इनकार करती हैं, जबकि 14.3 प्रतिशत महिला उत्तरदाताओं का मानना है कि कभी-कभी वेब रेडियो पर प्रसारित शिक्षा संबंधी कार्यक्रमों की प्रामाणिकता होती हैं और 3.6 प्रतिशत उत्तरदाता इनमें से किसी भी विकल्प को नहीं स्वीकारती हैं।

आयु की दृष्टि से बात करें तो 15 से 25 आयु वर्ग में से 66.1 प्रतिशत उत्तरदाता स्वीकार करते हैं कि वेब रेडियो पर प्रसारित शिक्षा संबंधी कार्यक्रमों की प्रामाणिकता होती है। वहीं 9.2 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात से इनकार करते हैं, जबकि 20.2 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि कभी-कभी वेब रेडियो पर प्रसारित शिक्षा संबंधी कार्यक्रमों की प्रामाणिकता होती है और 4.6 प्रतिशत उत्तरदाता इनमें से किसी भी विकल्प को नहीं स्वीकारते हैं।

25 से 35 आयु वर्ग में से 63.8 प्रतिशत उत्तरदाता स्वीकार करते हैं कि वेब रेडियो पर प्रसारित शिक्षा संबंधी कार्यक्रमों की प्रामाणिकता होती है। वहीं 12.1 प्रतिशत उत्तरदाता इससे इनकार करते हैं, जबकि 20.7 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि कभी-कभी वेब रेडियो से प्रसारित शिक्षा संबंधी कार्यक्रमों की प्रामाणिकता होती है और 3.4 प्रतिशत उत्तरदाता इनमें से किसी भी विकल्प को नहीं स्वीकारते हैं। 35 से 45 आयु वर्ग के उत्तरदाताओं में से 74.4 प्रतिशत उत्तरदाता स्वीकार करते हैं कि वेब रेडियो पर प्रसारित शिक्षा संबंधी कार्यक्रमों की प्रामाणिकता होती है। वहीं 10.3 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात से इनकार करते हैं, जबकि 7.7 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि कभी-कभी वेब रेडियो पर प्रसारित शिक्षा संबंधी कार्यक्रमों की प्रामाणिकता होती है और 7.7 प्रतिशत उत्तरदाता इनमें से किसी भी विकल्प को नहीं स्वीकारते हैं। 45 से अधिक आयु वर्ग के कुल उत्तरदाताओं में से 66.7 प्रतिशत उत्तरदाता स्वीकार करते हैं कि वेब रेडियो पर प्रसारित शिक्षा संबंधी कार्यक्रमों की प्रामाणिकता होती है। वहीं 12.8 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात से इनकार करते हैं, जबकि 12.8 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि कभी-कभी वेब रेडियो पर प्रसारित शिक्षा संबंधी कार्यक्रम की प्रामाणिकता होती है और 7.7 प्रतिशत उत्तरदाता इनमें से किसी भी विकल्प को नहीं स्वीकारते हैं।

स्नातक स्तर के कुल उत्तरदाताओं में से 72.1 प्रतिशत उत्तरदाता

स्वीकार करते हैं कि वेब रेडियो पर प्रसारित शिक्षा संबंधी कार्यक्रमों की प्रामाणिकता होती है और 7.4 प्रतिशत उत्तरदाता इससे इनकार करते हैं, जबकि 14.7 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि कभी-कभी वेब रेडियो पर प्रसारित शिक्षा संबंधी कार्यक्रमों की प्रामाणिकता होती हैं और 5.9 प्रतिशत उत्तरदाता इनमें से किसी भी विकल्प को नहीं स्वीकारते हैं। इसी प्रकार स्नातकोत्तर स्तर के कुल उत्तरदाताओं में से 65.0 प्रतिशत उत्तरदाता स्वीकार करते हैं कि वेब रेडियो पर प्रसारित शिक्षा संबंधी कार्यक्रमों की प्रामाणिकता होती है। वहीं 11.9 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात से इनकार करते हैं, जबकि 18.1 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि कभी-कभी वेब रेडियो पर प्रसारित शिक्षा संबंधी कार्यक्रमों की प्रामाणिकता होती हैं और 5.1 प्रतिशत उत्तरदाता इनमें से किसी भी विकल्प को नहीं स्वीकारते हैं।

आंकड़ों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि वेब रेडियो का उपयोग पुरुष तथा महिला सभी करते हैं। आंकड़ों के विश्लेषण के आधार पर यह भी परिलक्षित होता है कि वेब रेडियो शैक्षणिक विकास की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है। वेब रेडियो पर प्रसारित शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम लाभदायक होते हैं। इस सम्बन्ध में सभी ने माना है कि वास्तव में वेब रेडियो से प्रसारित शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम लाभदायक होते हैं। प्राप्त आंकड़ों के विश्लेषण से यह भी स्पष्ट होता है कि वेब रेडियो से प्रसारित शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम सभी पुरुष तथा महिला, जो विभिन्न आयु वर्ग के हैं तथा विभिन्न स्तर पर शिक्षित हैं, के लिए लाभदायक हैं। वेब रेडियो पर प्रसारित शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम 18 से कम आयु के लोगों के लिए उपयोगी हैं। इस सम्बन्ध में जो आंकड़े प्राप्त हुए उनका जब विश्लेषण किया गया तो सभी स्त्री-पुरूष, विभिन्न आयु वर्ग के लोगों ने माना कि अगर वेब रेडियो से 18 वर्ष से कम आयु के लोगों के लिए भी शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रमों का प्रसारण किया जाए तो वह उपयोगी होगा। स्नातकोत्तर की तुलना में स्नातक के छात्र वेब रेडियो से प्रसारित शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम ज्यादा उपयोगी मानते हैं। स्नातकोत्तर के छात्रों की तुलना में 89.7 प्रतिशत स्नातक छात्रों का मानना है कि वेब रेडियो से प्रसारित शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम ज्यादा उपयोगी होते हैं।

निष्कर्ष

अध्ययन से स्पष्ट है कि वेब रेडियो ने शिक्षा के प्रसार को नया आयाम दिया है, खासतौर से दूरस्थ शिक्षा को। दूरस्थ प्रणाली से शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों में क्लासरूम की कमी को वेब रेडियो ने दूर किया है और एक ही संचार माध्यम पर सभी विषयों का ज्ञान विद्यार्थियों को मिल जाता है, जिसका वे अपनी आवश्यकतानुसार प्रयोग अपनी शिक्षा के अधूरे रह गए स्वप्न को पूरा करने के लिए कर सकते हैं। वैसे भी कोविड-19 के दौर में भारत डिजिटल बन चुका है। शिक्षा के क्षेत्र में वर्तमान समय में इसका व्यापक असर देखने को मिला है। आज प्राइमरी से लेकर उच्च शिक्षा संस्थानों ने ऑनलाइन शिक्षा का सहारा लिया है। ऑनलाइन शिक्षा वर्तमान समय में एक नए विकल्प के रूप में उभर कर आई है। गूगल मीट, जूम, स्काइप जैसे माध्यमों ने डिजिटल मीडिया को एक नई ऊंचाई प्रदान की है। ऑनलाइन शिक्षा के सभी भौगोलिक दायरों से परे होने के कारण इसकी लोकप्रियता में वृद्धि हुई है। वर्तमान समय में जब अधिकतर लोग इंटरनेट का प्रयोग कर रहे हैं, ऐसे में वेब रेडियो का महत्व और भी बढ़ गया है। कोरोना महामारी ने जिस प्रकार पूरी दुनिया के समक्ष अचानक भीषण संकट खड़ा किया ऐसी हालत में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में वेब रेडियो की उपयोगिता को नकारा नहीं जा सकता। यह माध्यम इसलिए भी उपयोगी है, क्योंकि वेबसाइट पर पहले प्रसारित कार्यक्रमों की जानकारी भी उपलब्ध रहती है और श्रोता जब चाहे उसे सुन सकते हैं। आज जब इंटरनेट डाटा का उपभोग बढ़ रहा है ऐसे में यूट्यूब की अपेक्षा वेब रेडियो में डाटा खर्च बहुत कम है।

सन्दर्भ

अरोड़ा, आर. (2012). *वेब जर्नलिज्म*. नई दिल्ली: एराइज पब्लिशर्स

कुमार. के. (2012). *नया मीडिया संसार मीडिया क्रांति के नए संदर्भ*. जयपुर: वाईकिंग बुक्स

खंजोड़, वी.वी. (1995). *रिसर्च मेथोडोलॉजी टेक्निक्स एंड ट्रेंड्स*. दिल्ली: एपीटीटी पब्लिशिंग कॉरपोरोशन

जेमी, ए. (2020). *ए ब्रीफ हिस्ट्री ऑफ इंटरनेट रेडियो*. https://radio.co/blog/a-brief-history-of-internet-radio से पुनर्प्राप्त

देवी, एम. (2009). रेडियो एंड टेलीविजन जर्नलिज्म. नई दिल्ली: अल्फा पब्लिकेशन्स

पांडे, बी. डी. (2011). मॉर्डन जर्नलिज्म, मास कम्युनिकेशन एंड मीडिया मैनेजमेंट. नई दिल्ली: अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रिब्यूटर्स

विकासपीडिया. (2015). *टीचर्स कॉर्नर*. https://vikaspedia.in/education/teachers-corner से पुनर्प्राप्त

सहाय, डी. (2009). *मीडिया रिसर्च मेथोडोलॉजी*. नई दिल्ली: पर्ल बुक्स

संचार माध्यम | खंड 32(2): 81-85, जुलाई-दिसंबर 2020
आईएसएसएन: 2321-2608

कोरोना काल में संसद के मॉनसून सत्र की कार्यवाही की दैनिक समाचार पत्रों में कवरेज का विश्लेषण

डॉ. अमरेन्द्र कुमार[1] और डॉ. ओम शंकर[2]

सारांश

सामान्य तौर पर एक वर्ष में भारतीय संसद की तीन बैठकें यानी बजट सत्र, मॉनसून सत्र और शीतकालीन सत्र होते हैं। बजट सत्र फरवरी-मार्च के महीने में आहूत किया जाता है। भारत में वैश्विक महामारी कोरोना की वजह से वर्ष 2020 का बजट सत्र छोटा कर दिया गया था। इसके बाद कोरोना वायरस के तेजी से प्रसार के चलते जुलाई में होने वाला मॉनसून सत्र विलंब से शुरू हुआ। संविधान के अनुसार, 6 माह के भीतर संसद सत्र को बुलाया जाना आवश्यक है, इसलिए 14 सितंबर से संसद का मॉनसून सत्र शुरू हुआ। उम्मीद थी कि समाचार पत्रों में मॉनसून सत्र में होने वाले विधायी कार्यों पर आधारित कवरेज अच्छी होगी। कुछ हद तक ऐसा हुआ भी। समाचार पत्रों में सदन में सम्मिलित होने से पहले सांसदों का कोरोना टेस्ट, उनके मास्क पहनने से लेकर बैठने की व्यवस्था की खबरें पढ़ने को मिलीं। सत्र के दौरान प्रमुख घटनाओं जैसे राज्यसभा के उपसभापति का चुनाव, तीन कृषि बिल समेत तमाम मुद्दों पर समाचार पत्रों में खबरें प्रस्तुत की गई। यह अलग बात है कि समाचार पत्रों में संसदीय कार्यवाही से संबंधित प्रकाशित कुल खबरों में से विधायी कार्यों से जुड़ी खबरें कम मिलीं। प्रस्तुत शोध पत्र में दैनिक समाचार पत्रों में संसद के मानसून सत्र में संसदीय कार्यवाही से संबंधित कवरेज का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन में यह जानने का प्रयास किया गया है कि समाचार पत्रों में संसदीय कार्यवाही से संबंधित खबरों को कितनी प्रमुखता मिली और उन्हें किस प्रकार प्रस्तुत किया गया है।

संकेत शब्द : भारतीय संसद, संसदीय कार्यवाही, विधायी कार्य, समाचार पत्र, मॉनसून सत्र, कोरोना और संसद

भूमिका

भारत में सबसे पहले जनवरी 2020 में सुदूर दक्षिण के राज्य केरल में चीन के वुहान शहर से लौटा एक छात्र कोरोना से संक्रमित पाया गया था। मार्च में देश भर से कोरोना संक्रमितों की संख्या बढ़ने की खबर आने लगी। उस समय संसद के बजट सत्र का दूसरा चरण चल रहा था। बजट सत्र फरवरी महीने में आहूत किया जाता है। भारत की संसदीय परंपरा के अनुसार, एक वर्ष में तीन बार संसद सत्र बुलाया जाता है, जिसे बजट सत्र, मॉनसून सत्र और शीतकालीन सत्र के नाम से जाना जाता है। शुरुआती दिनों में सरकार की ओर से बजट सत्र को जारी रखने का निर्णय लिया गया, लेकिन कुछ सांसदों के संक्रमित होने की आशंका की खबरों के बाद और कोरोना संक्रमण के तेजी से फैलने के कारण बजट सत्र को स्थगित करने की मांग उठने लगी। कोरोना वायरस तब तक भारत में पैर पसार चुका था और दिल्ली में भी लगातार संक्रमितों की संख्या बढ़ रही थी। चीन सहित कई देशों की भयावह स्थिति को देखते हुए यहां की स्थिति को किस तरह नियंत्रित किया जाए, इस पर भारत की संसद में भी विचार-विमर्श हुआ। बजट सत्र का दूसरा चरण, जो 2 अप्रैल, 2020 तक होना प्रस्तावित था, उसे बीच में ही 23 मार्च को स्थगित कर दिया गया। नतीजा यह हुआ कि कई विधेयक जो संसद से पारित होने की सूची में थे, वे भी स्थगन की भेंट चढ़ गए।

संसद में बजट सत्र के स्थगन के निर्णय के समय कोरोना संकट के लंबे समय तक खिंचने की आशंका नहीं थी। उस समय उम्मीद यह थी कि पूरे देश में लॉकडाउन लगाने के बाद कोरोना वायरस के प्रसार का क्रम टूट जाएगा और स्थिति जल्दी ही पूर्व की तरह सामान्य हो जाएगी। इस विचार के साथ देश भर में 22 मार्च, 2020 को एक दिन का जनता कर्फ्यू लागू किया गया। इसके 2 दिन बाद 24 मार्च की मध्य रात्रि से पहले 15 दिनों के लिए देशभर में पूर्ण लॉकडाउन की घोषणा कर दी गई। इस प्रयोग से शुरुआती दौर में कुछ लाभ मिले, जिसे देखते हुए फिर से देशभर में 2 बार लॉकडाउन की अवधि बढ़ाई गई। लॉकडाउन मई माह तक सख्ती से लागू रहा और सरकार भी कोरोना महामारी के प्रति लोगों को जागरूक करने और दिशा-निर्देशों का पालन कराने की दिशा में लगातार काम करती रही। पहली बार 31 मई को भारत सरकार के गृह मंत्रालय ने आंशिक तौर पर अनलॉक की प्रक्रिया शुरू की। यह प्रक्रिया क्रमश: अगस्त तक चलती रही। सितंबर माह के अंत में कुछ क्षेत्रों को छोड़कर सरकार ने यह कहा कि जब तक दवाई नहीं तब तक ढिलाई नहीं बरती जा सकती है। कोरोना वायरस से लड़ाई के लिए स्वास्थ्य मंत्रालय की ओर से तैयार किए गए प्रोटोकॉल का पालन जनता को करना चाहिए। इस दौरान सरकार की ओर से जनता के साथ संवाद का सिलसिला भी चलता रहा। शुरू में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने कहा कि 'जान है तो जहान है।' वहीं बाद में 'जान भी है और जहान भी है' का नारा दिया। उन्होंने लोगों को इस नारे के माध्यम से इस संकट काल में कोरोना के साथ कैसे जिया जाए, इसका भी संदेश दिया। लोगों ने इसे स्वीकार कर लिया और सतर्कता के साथ अपने सारे कार्य करने आरंभ कर दिए।

इस बीच संसद भी अपने कर्तव्यों का पालन करने की दिशा में आगे बढ़ी। संविधान के अनुसार संसद सत्र को अनिश्चितकाल तक स्थगित नहीं रखा जा सकता है, 6 महीने के अंदर एक बार संसद सत्र को आहूत करना आवश्यक है (कश्यप, 1995; पार्थसारथी, 2005)। इसी संवैधानिक जरूरत को पूरा करने के लिए संसद सत्र को 22 सितंबर, 2020 से पहले बुलाना जरूरी था। अपने कर्तव्यों को निभाने के लिए कई संसद सदस्यों

[1]सहायक आचार्य, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला। ईमेल : akgore@gmail.com
[2]सीनियर एसोसिएट प्रोड्यूसर, एसआईटीवी। ईमेल : Omshankar1971@gmail.com

की ओर से भी समय-समय पर जल्द-से-जल्द संसद सत्र को बुलाए जाने की आवाज उठ रही थी। संवैधानिक जरूरत और संसद सदस्यों की मांग को ध्यान में रखते हुए लोकसभा एवं राज्यसभा की ओर से प्रयास किया गया। संसद सत्र को बुलाने से पहले कोरोना महामारी से उपजी स्थितियों से निपटने के लिए जरूरी चीजों को कैसे पूरा किया जा सके, इस दिशा में मई माह से ही बैठकों का दौर शुरू हो गया था। राज्यसभा अध्यक्ष एम. वेंकैया नायडू और लोकसभा स्पीकर ओम बिरला के बीच बैठकें हुई। सचिवालय के अधिकारियों को भी संसद सत्र आहूत करने की दिशा में आवश्यक तैयारी करने के निर्देश दिए गए, ताकि संसद सदस्यों को किसी भी प्रकार की दिक्कत का सामना न करना पड़े। तैयारी की दिशा में चल रहे प्रयास को विभिन्न स्तरों पर हमेशा मॉनिटर किया जाता रहा और अंत में यह निर्णय लिया गया कि संसद सत्र 14 सितंबर से 1 अक्टूबर, 2020 तक बुलाया जाए।

शोध उद्देश्य

संसद में मॉनसून सत्र को आहूत करने और संसदीय कार्यवाही को सत्र के दौरान अंजाम तक पहुंचाने में कई तरह की चुनौतियों का सामना करना पड़ा। इस पर आधारित खबरें समाचार पत्रों में प्रकाशित होती रहीं। प्रस्तुत शोध का उद्देश्य संसदीय कार्यवाही से संबंधित विधायी और गैर विधायी कार्यों पर समाचार पत्रों के रुख को जानने का है। समाचार पत्रों में संसदीय कार्यवाही से संबंधित समाचार व विचारात्मक आलेखों का विश्लेषण कर यह जानने की कोशिश की गई है कि समाचार पत्रों में संसदीय कार्यवाही को कितनी प्रमुखता मिली है और उसे किस प्रकार प्रस्तुत किया गया है। यह अध्ययन संसद के मॉनसून सत्र की अवधि के दौरान किया गया। मॉनसून सत्र 14 सितंबर से 1 अक्टूबर, 2020 तक प्रस्तावित था, लेकिन यह सत्र 22 सितंबर, 2020 तक ही चला। अध्ययन की अवधि सदन में सत्र की शुरुआत के चार दिन पहले तथा सत्रावसान के चार दिन बाद तक रखी गई। 10 सितंबर से 26 सितंबर तक यानी 17 दिनों की अवधि में अध्ययन के लिए इंडियन रीडरशिप सर्वे 2019 (आईआरएस) के अनुसार, देश के शीर्ष 5 समाचार पत्रों- दैनिक जागरण, अमर उजाला, दैनिक भास्कर, द टाइम्स ऑफ इंडिया और हिंदुस्तान टाइम्स में संसद की कार्यवाही से जुड़ी हुई प्रकाशित सामग्री को संग्रहीत किया गया।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत अध्ययन समाचार पत्रों की विषयवस्तु से संबंधित है। इस शोध में अंतर्वस्तु विश्लेषण पद्धति का उपयोग किया गया है। सामाजिक शोध के अंतर्वस्तु विश्लेषण में सामग्री का मात्रात्मक एवं गुणात्मक मूल्यांकन किया जाता है (दयाल, 2010)। शोध के उद्देश्यों के अनुरूप प्रस्तुत अध्ययन में गुणात्मक और मात्रात्मक दोनों तरीकों का प्रयोग किया गया है।

विश्लेषण - समाचार पत्र में संसदीय कार्यवाही

प्रस्तुत शोध में विश्लेषण का आधार समाचार पत्रों में संसदीय कार्यवाही पर आधारित रिपोर्ट/लेख/संपादकीय हैं। दैनिक जागरण, अमर उजाला, दैनिक भास्कर, द टाइम्स ऑफ इंडिया और हिंदुस्तान टाइम्स में संसदीय कार्यवाही से संबंधित सामग्री को कितनी प्रमुखता मिली है और उनका प्रस्तुतीकरण कैसा है, उसे देखने की कोशिश की गई है। शोधकर्ता के पक्षपात से शोध मुक्त हो, इसके लिए प्रमुखता के आकलन के लिए कुल खबरों में संसदीय कार्यवाही की खबरों के प्रतिशत, खबरों को स्थान दिए जाने, खबरों के स्रोत और खबरों के आकार और विविधता को रखा गया है। प्रस्तुतीकरण को मापने के लिए विविध विचारों का समावेश, नयापन, स्टाइल, समाचार के साथ फोटो के प्लेसमेंट का भी ध्यान रखा गया है। इस शोध के आधार पर देश के हिंदी एवं अंग्रेजी के सभी समाचार पत्रों के बारे में राय कायम नहीं की जा सकती है, हालांकि शोध के लिए चयनित समाचार पत्रों का रुख कैसा रहा है, उसके बारे में अवश्य जाना जा सकता है। साथ ही, इसके आधार पर आगे की दिशा क्या होनी चाहिए, उस पर भी अलग दृष्टिकोण बनाया जा सकता है। आईआरएस सर्वे 2019 के आधार पर देश के 5 सर्वाधिक प्रसार वाले समाचार पत्रों का चयन किया गया।

तालिका 1- समाचार पत्रों का परिचय

क्र. सं.	समाचार पत्र का नाम	अवधि	कुल पृष्ठ	संपादक
1	दैनिक जागरण	10 से 26 सितंबर, 2020	242	विष्णु प्रकाश त्रिपाठी
2	अमर उजाला	10 से 26 सितंबर, 2020	240	इंदु शेखर पंचोली
3	दैनिक भास्कर	10 से 26 सितंबर, 2020	212	कुलदीप व्यास
4	टाइम्स ऑफ इंडिया	10 से 26 सितंबर, 2020	266	दिवाकर अस्थाना
5	हिंदुस्तान टाइम्स	10 से 26 सितंबर, 2020	298	कुनाल प्रधान

तालिका 2 - समाचार पत्रों में संसदीय कार्यवाही से संबंधित खबरों की स्थिति का विश्लेषण (कुल खबरों के प्रतिशत में)

क्र. सं.	समाचार पत्र का नाम	कुल खबरें	संसदीय कार्यवाही से संबंधित कुल खबरें	कुल अंक	प्रतिशत
1	दैनिक जागरण	1533	71	17	4.63
2	अमर उजाला	1170	59	17	5.40
3	दैनिक भास्कर	1809	53	17	2.92
4	टाइम्स ऑफ इंडिया	1467	72	17	4.90
5	हिंदुस्तान टाइम्स	917	73	17	7.96

तालिका 3 -समाचार पत्रों में संसदीय कार्यवाही से संबंधित लेखों व संपादकीय की स्थिति का विश्लेषण (कुल खबरों के प्रतिशत में)

क्र.सं.	समाचार पत्र का नाम	कुल खबरें	संसदीय कार्यवाही से संबंधित कुल संपादकीय/ लेख	प्रतिशत
1	दैनिक जागरण	1533	11	0.71
2	अमर उजाला	1170	8	0.68
3	दैनिक भास्कर	1809	3	0.16
4	टाइम्स ऑफ इंडिया	1467	3	0.20
5	हिंदुस्तान टाइम्स	917	8	0.87

अध्ययन अवधि के दौरान 'दैनिक जागरण' में प्रकाशित 17 अंकों में कुल 1533 खबरों का प्रकाशन हुआ, जिसमें संसदीय कार्यवाही से जुड़ी हुई खबरों की संख्या 71 थी। यानी संसदीय कार्यवाही की खबरों का प्रतिशत 4.63 यानी 5 के करीब रहा। अमर उजाला ने 17 अंकों में इस अवधि के दौरान कुल 1170 खबरों को प्रकाशित किया, जिसमें संसदीय कार्यवाही से संबंधित कुल 59 खबरों को पत्र में जगह दी गई। कुल खबरों में से संसदीय कार्यवाही की खबरों का प्रतिशत 5.04 रहा। 'दैनिक भास्कर' के 17 अंकों में सबसे अधिक 1809 खबरों का प्रकाशन हुआ। इनमें संसदीय कार्यवाही की खबरों की संख्या 53 रही, यानी 2.92 प्रतिशत। अंग्रेजी दैनिक समाचार पत्र 'द टाइम्स ऑफ इंडिया' में अध्ययन अवधि के दौरान कुल 1487 खबरें प्रकाशित की गईं। इनमें संसदीय कार्यवाही की खबरों की संख्या 72 यानी 4.9 प्रतिशत रही। सभी 5 समाचार पत्रों में 'हिंदुस्तान टाइम्स' सबसे बेहतर रहा। इस पत्र में अध्ययन अवधि के दौरान कुल 917 खबरों को जगह दी गई, लेकिन 'हिंदुस्तान टाइम्स' ने संसदीय कार्यवाही से संबंधित खबरों की संख्या सबसे अधिक 73 रही यानी 7.9 प्रतिशत। दैनिक जागरण, अमर उजाला, द टाइम्स ऑफ इंडिया समाचार पत्रों ने संसदीय कार्यवाही से संबंधित समाचारों को एक जैसी प्रमुखता दी, लेकिन 'हिंदुस्तान टाइम्स' ने संसदीय कार्यवाही से संबंधित समाचारों को सबसे अधिक प्रमुखता दी।

'दैनिक जागरण' ने संसदीय कार्यवाही से संबंधित 90 प्रतिशत खबरों को जागरण न्यूज ब्यूरो के नाम से प्रकाशित किया; यानी स्रोत के रूप में संवाददाता का नाम न देकर जागरण न्यूज ब्यूरो का प्रयोग किया गया। 'दैनिक जागरण' की मात्र 10 प्रतिशत खबरें उसके संसदीय संवाददाताओं संजय मिश्र और सुरेंद्र प्रसाद सिंह के हवाले से दी गईं। संपादकीय पृष्ठों पर दो लेख केंद्रीय मंत्रियों अमित शाह और राजनाथ सिंह द्वारा लिखे गए थे। एक आलेख जागरण के मालिक संजय गुप्ता द्वारा लिखा गया। 'दैनिक जागरण' में संसदीय कार्यवाही से संबंधित खबरों का संपादन सटीक रहा। खबरों का प्रस्तुतीकरण भी बेहतर की श्रेणी में रखा जा सकता है, हालांकि खबरों में वैल्यू एडिशन का अभाव रहा। 'दैनिक जागरण' की समाचारात्मक सामग्री में नयापन नहीं के बराबर था। खबरें सपाट और कुछ हद तक सरकार के समर्थन में दिखीं। 'दैनिक जागरण' में प्रकाशित आलेख में भी सरकारी पक्ष को अधिक जगह दी गई। समाचार पत्र में विपक्ष के आलेखों को जगह नहीं मिली। संसद के मॉनसून सत्र की खबरों को लेकर 'दैनिक जागरण' की संपादकीय नीति एकदम सपाट और सरकार समर्थक रही।

'अमर उजाला' ने भी संसदीय कार्यवाही से संबंधित 90 फीसद खबरों के स्रोत के रूप में अपने ब्यूरो को ही रखा। 5 प्रतिशत खबरें समाचार एजेंसी से ली गईं और महज 5 प्रतिशत खबरें 'अमर उजाला' ने अपने एकमात्र संवाददाता मनीष मिश्र के हवाले दीं (अमर उजाला, 2020)। 'अमर उजाला' ने अधिकांश खबरों को ब्यूरो से संकलित किया। खबरों का संपादन 'दैनिक जागरण' से थोड़ा बेहतर कहा जा सकता है। लेकिन प्रस्तुतीकरण के मामले में 'अमर उजाला' ने दैनिक जागरण से अच्छा प्रदर्शन किया। 'अमर उजाला' की समाचारात्मक सामग्री में नयापन नहीं था, लेकिन प्रस्तुतीकरण में प्रयोग देखने को मिला। 'अमर उजाला' ने जो भी लेख और आलेख प्रकाशित किए, उनमें पक्ष के साथ विपक्ष को भी जगह देने की कोशिश की। 'अमर उजाला' ने संसदीय कार्यवाही से संबंधित खबरों का संपादन 'दैनिक जागरण' से थोड़ा बेहतर किया।

हिंदी के तीसरे बड़े समाचार पत्र 'दैनिक भास्कर' ने भी 90 प्रतिशत खबरें समाचार एजेंसियों से लीं (दैनिक भास्कर, 2020)। 'दैनिक भास्कर' ने अपने संवाददाता के हवाले से एक भी खबर नहीं दी। इससे साफ पता चलता है कि 'दैनिक भास्कर' में शायद संसदीय कार्यवाही कवर करने के लिए कोई संवाददाता नहीं है। खबरों का प्रस्तुतीकरण और संपादन बेहद सपाट रहा। 'दैनिक भास्कर' ने समाचारात्मक सामग्री में कोई भी बदलाव नहीं किया। खबरों को सपाट रूप में केवल जानकारी के रूप में प्रस्तुत किया गया। हालांकि खबरों के शीर्षकों में प्रयोग किए गए, लेकिन पक्ष या विपक्ष को जगह देने की जगह केवल खबरों को ही प्रस्तुत किया गया। विचारात्मक सामग्री के तौर पर लेख तो दिए गए, लेकिन किसी मेहमान लेखक या संसदीय मामलों के विशेषज्ञों की जगह अपने विभिन्न ब्यूरो में तैनात संपादकों के लेखों को जगह दी गई।

खबरों के स्रोत, संकलन और संपादन के मामले में अंग्रेजी समाचार पत्र 'द टाइम्स ऑफ इंडिया' की स्थिति हिंदी के समाचार पत्रों से अच्छी रही (द टाइम्स ऑफ इंडिया, 2020)। 'द टाइम्स ऑफ इंडिया' में कुल खबरों की तकरीबन 45 प्रतिशत वे खबरें दी गईं, जो उसके संवाददाताओं ने लिखीं। 'द टाइम्स ऑफ इंडिया' ने संसदीय कार्यवाही के लिए 4 संवाददाताओं को तैनात किया था। इसका उसे लाभ मिला। खबरों का संपादन पेशेवर तरीके से किया गया तथा प्रस्तुतीकरण भी प्रभावपूर्ण रहा। 'द टाइम्स ऑफ इंडिया' ने स्वाति माथुर, अखिलेश सिंह, विश्वमोहन और अशोक प्रधान की खबरों को बाईलाइन देकर प्रकाशित किया गया, जिससे खबरों की जवाबदेही और विश्वसनीयता में भी वृद्धि हुई। तकरीबन 50 प्रतिशत खबरों के लिए 'द टाइम्स ऑफ इंडिया' ने भी 'टाइम्स न्यूज सर्विस' को स्रोत के रूप में श्रेय दिया।

'हिंदुस्तान टाइम्स' ने भी संसदीय कार्यवाही की खबरों के लिए 4 संवाददाताओं को तैनात किया (हिंदुस्तान टाइम्स, 2020)। सौभद्र चटर्जी, स्मृति रामचंद्रन, जिया हक और राधा कृष्णा ने 'हिंदुस्तान टाइम्स' की अच्छी संसदीय खबरें लिखीं। उनकी खबरों को 'हिंदुस्तान टाइम्स' समूह के संपादक मंडल ने बेहतर रूप से संपादित किया। विशेष बात यह रही कि 'हिंदुस्तान टाइम्स' ने संसदीय कार्यवाही से संबंधित खबरों को पूरी समग्रता के साथ प्रकाशित किया। संपादकीय पृष्ठों में मेहमान लेखकों के लेख भी प्रभावपूर्ण रहे। संसदीय कार्यवाही से संबंधित खबरों में थोड़ा वैल्यू एडीशन एवं नयापन देने की कोशिश भी दिखाई पड़ी।

मानसून सत्र में संपन्न विधायी कार्य

संसद की कार्यवाही को प्रमुखता से प्रकाशित करने की समाचार पत्रों से अपेक्षा की जाती है। संसद में आम लोगों की समस्याओं के समाधान के लिए और देशवासियों के लिए बेहतर माहौल प्रदान करने के लिए संसद का कार्य वर्ष भर लगातार चलता रहता है, लेकिन विधायी कार्य खासकर संसद में आहूत सत्र के दौरान ही पूरे किए जाते हैं। सरकार की ओर से कानून को बनाने के लिए संसद में विधेयक को सदन के पटल पर लाना और संसदीय कार्यप्रणाली का अनुपालन करते हुए विधेयक पास कराना

आवश्यक होता है। लोकसभा और राज्यसभा दोनों सदनों से विधेयक पास होने के बाद उसे महामहिम राष्ट्रपति के पास भेजा जाता है और उनकी सहमति मिलते ही विधेयक कानून का रूप ले लेता है, हालांकि विधेयक का ड्राफ्ट तैयार करने में लंबा समय लगता है। हर मंत्रालय अपने विभाग से जुड़ी समस्याओं को सुलझाने के लिए विधेयक का प्रारूप तैयार करता है। वह प्रारूप प्रधानमंत्री की अगुवाई में होने वाली कैबिनेट बैठक में रखा जाता है और जरूरी पहलुओं के निरीक्षण-परीक्षण के बाद उसे संसद पटल पर रखने की व्यवस्था की जाती है। सरकार की ओर से कोई भी नई शुरुआत, जिसमें वित्त व्यय आवश्यक है, शुरू करने से पहले संसद की मंजूरी लेना आवश्यक है। वह मंजूरी संसद सत्र के दौरान ही मिलती है। दो सत्रों के अंतराल में अगर कोई आवश्यक कार्य होता है, तो सरकार अध्यादेश लाती है। अध्यादेश छह माह तक मान्य होता है और विशेष परिस्थिति में उसे छह माह और आगे बढ़ाने का संवैधानिक प्रावधान है।

इस प्रकार संसद सत्र के दौरान सरकार की ओर से नए विधेयक एवं पुराने अध्यादेश पेश किए जाते हैं। सत्र की सफलता विधेयकों के पास होने और अध्यादेशों को मंजूरी मिलने से आंकी जाती है। 14 से 22 सितंबर, 2020 तक चले मॉनसून सत्र में कई विधेयक संसद के समक्ष प्रस्तुत किए गए। सरकार उसे पारित कराने में सफल भी रही। कोरोना महामारी से लड़ने के लिए सरकार की ओर से किस तरह के उपाए किए गए और किन-किन स्तरों पर तैयारी की गई, इस संबंध में केंद्रीय स्वास्थय मंत्री डॉ. हर्षवर्धन ने सदन में स्टेटमेंट रखा और उस पर विस्तृत चर्चा हुई। चर्चा के दौरान विभिन्न पहलुओं पर संसद सदस्यों ने सरकार से जानकारी मांगी।

सरकार की ओर से प्रयास और सत्रों की उत्पादकता

संसद सत्र के दौरान प्रतिपक्ष की ओर से सरकार को घेरने की भी पुरजोर कोशिश की जाती है, वहीं सरकार का प्रयास होता है कि सदन पटल पर अधिक से अधिक कार्यों का निष्पादन कराया जाए। कोरोना काल में आहूत मॉनसून सत्र 2020 को अगर कामकाज की कसौटी पर परखा जाए तो बहुत हद तक सरकार सफल रही। राज्यसभा और लोकसभा, दोनों सदनों का लेखा-जोखा अच्छा रहा। लोकसभा के इस सत्र में 68 फीसदी समय विधायी कार्यों में लगाया गया, वहीं 32 फीसदी समय विधायी कार्यों के इतर संसद सदस्यों को अपनी बातों को रखने के लिए जीरो ऑवर एवं स्पेशल मेंशन जैसे कार्यों में लगाया गया। लोकसभा के पटल पर मॉनसून सत्र के पहले दिन ही 8 विधेयक लाए गए और 2 विधेयक पास भी हुए। बगैर किसी अवकाश के सदन का सत्र 10 दिनों तक चला, जिसमें लोगों की समस्याओं से जुड़े कुल 25 विधेयक पारित हुए। खास बात यह रही कि भारत सरकार के स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय की ओर से तैयार किए गए प्रोटोकॉल का पालन करते हुए सदन में अभूतपूर्व 166 फीसदी कार्य हुआ, जो आजादी के बाद सदन के इतिहास में सबसे अधिक समय किया गया कार्य है। लोकसभा में निर्धारित समय से 33 घंटे अधिक संसदीय कार्यवाही चली।

लोकसभा में सभी सांसदों को बोलने का अवसर मिले, इसके लिए स्पीकर की ओर से खास व्यवस्था की गई। उन्होंने शून्यकाल की समयावधि को आगे बढ़ाने का काम किया, जिसका परिणाम 21-22 सितंबर को देखने को मिला। 21 सितंबर को सदन में सर्वाधिक 234 फीसदी काम 18 घंटे हुआ, वहीं 22 सितंबर को शून्यकाल 4 घंटे 30 मिनट तक चला। सत्र में कुल 378 सदस्यों ने विभिन्न विषयों को उठाया और सदन का ध्यान आम लोगों से जुड़ी समस्याओं की ओर आकर्षित करने की कोशिश की (लोकसभा टीवी, 2020)। 56 महिला सांसदों ने भी जोर-शोर से अपने क्षेत्रीय और देश के ज्वलंत मुद्दों पर अपनी बात सदन पटल पर रखी। मॉनसून सत्र में 2020-21 की अनुदान मांगों पर भी चर्चा हुई। सांसदों ने अपने विचार रखे और सदन की कार्यवाही में अपने योगदान को रेखांकित किया। सरकार की ओर से अनुदान मांगों को पास कराना आवश्यक होता है। सदस्यों ने उसे पूरा करने में अपना योगदान दिया। इस सत्र में विभिन्न मंत्रालयों से जुड़े अहम दस्तावेजों को भी सदन पटल पर रखा गया। इनकी कुल संख्या 855 रही। इस मॉनसून सत्र में संसद सदस्यों के लिए तारांकित प्रश्न पूछने के प्रावधान नहीं थे, हालांकि संसद सदस्यों की ओर से पूछे गए अतारांकित प्रश्नों के लिखित जवाब संबंधित मंत्रालयों के मंत्रियों द्वारा दिया गया। कुल 2310 अतारांकित प्रश्नों का जवाब सदन पटल पर रखा गया।

राज्यसभा का यह 252वां सत्र था (राज्यसभा टीवी, 2020)। पिछले कुछ वर्षों में उच्च सदन की कार्य उत्पादकता की स्थिति अच्छी रही है। इस बार भी इसकी उत्पादकता 100.4 प्रतिशत रही। पिछले सत्र में यह उत्पादकता 96 प्रतिशत थी। लोकसभा से आए सभी 25 विधेयकों को राज्यसभा में पास किया गया। इन सभी पास हुए विधेयकों को कानून की शक्ल में ढालने के लिए राष्ट्रपति महोदय को अग्रसारित किया गया। संसद सदस्यों को विधेयक पर चर्चा में भाग लेने का अवसर दिया गया। राज्यसभा की बैठक सुबह 9 से दोपहर 1 बजे तक होती थी। इस सदन की कार्यवाही को 1 बजे से आगे नहीं बढ़ाया जा सकता था, क्योंकि लोकसभा के लिए अपराह्न का समय निर्धारित था, फिर भी राज्यसभा की कार्यवाही के समय को न्यायसंगत तरीकों से विधायी एवं गैरविधायी कार्यों के लिए निर्धारित किया गया। कुल समय का 57 प्रतिशत समय विधायी कार्यों को दिया गया। बाकी समय में शून्यकाल एवं स्पेशल मेंशन का कार्य हुआ। कुल 92 विषयों को शून्यकाल में एवं 66 विषयों को स्पेशल मेंशन में जगह मिली। राज्यसभा अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने की भूमिका निभाने में सफल रही। वहीं इस सदन में कुछ अप्रिय घटनाएं भी हुईं।

कृषि विधेयक पर चर्चा के दौरान तृणमूल पार्टी के सांसद डेरेक ओ ब्रायन सहित कुछ अन्य पार्टियों के सांसदों द्वारा उपसभापति के समक्ष खड़े होकर असंसदीय व्यवहार किया गया। इसके कारण इन सांसदों को एक सप्ताह के लिए निलंबित करना पड़ा। राज्यसभा के इतिहास में यह एक अप्रत्याशित घटना थी। बावजूद इसके राज्यसभा उपसभापति ने लोकतांत्रिक मूल्यों को मजबूती प्रदान करने का उदहारण प्रस्तुत किया। अपने निलंबन के खिलाफ गांधीजी की मूर्ति के पास धरना-प्रदर्शन कर रहे सांसदों को उपसभापति ने मनाने की कोशिश भी की। निलंबन की दूसरी सुबह सभी सांसदों को उन्होंने स्वयं जाकर चाय पीने का आग्रह किया और लोकतंत्र को मजबूत करने एवं संसदीय मर्यादा को ध्यान में रखकर अपना योगदान देने का उन सभी से आह्वान किया। उत्पादकता के ख्याल से मॉनसून सत्र 2020 में लोकसभा एवं राज्यसभा का प्रदर्शन अच्छा रहा।

निष्कर्ष

लोकतंत्र में न्यायपालिका, कार्यपालिका, विधायिका का अपना स्थान है, वहीं मीडिया को लोकतंत्र का चौथा स्तंभ माना जाता है। मीडिया ने यह दर्जा समाचार पत्रों की निष्पक्ष एवं प्रभावी भूमिका के कारण प्राप्त किया है। इसलिए समाचार पत्रों से अधिक अपेक्षा की जाती है कि वे विधायिका से जुड़ी खबरों को प्रमुखता से जनता के सामने लाएं। प्रस्तुत शोध में हिंदी और अंग्रेजी समाचारपत्रों में संसदीय खबरों की प्रमुखता और प्रस्तुति को लेकर कई तरह की बातें निकलकर सामने आई। स्रोत, संकलन और संपादन के पैमाने परखे जाएं तो हिंदी के समाचार पत्रों ने अपने संवाददाताओं की रिपोर्टों की जगह समाचार एजेंसी या ब्यूरो को स्रोत के रूप में अधिक प्रयोग किया, तो अंग्रेजी के दो सबसे बड़े अखबारों ने अपने संवाददताओं पर अधिक भरोसा किया। खबरों के संकलन के मामले में हिंदी के समाचर पत्र 'दैनिक जागरण' और 'अमर उजाला' ने 'दैनिक भास्कर' की तुलना में बेहतर कार्य किया; हालांकि 'दैनिक भास्कर' ने संसदीय कार्यवाही से संबंधित अधिकांश खबरों को पहले पृष्ठ पर जगह दी, लेकिन खबरें बेहद संक्षिप्त रहीं। अंग्रेजी के दोनों समाचार पत्रों-'द टाइम्स ऑफ इंडिया' और 'हिंदुस्तान टाइम्स' प्रस्तुतीकरण के मामले में भी हिंदी के समाचार पत्रो दैनिक जागरण, अमर उजाला और दैनिक भास्कर से बेहतर रहे। शोध से निष्कर्ष निकलता है कि हिंदी अखबारों के लिए यह जरूरी है कि वे संसदीय कार्यवाही को कवर करने के लिए समाचार एजेंसियों के स्थान पर अपने संवाददाताओं को कवर करने के लिए संसद भेजें। साथ ही खबरों के संकलन एवं प्रस्तुति में नयापन लाने पर भी विशेष ध्यान दें।

संसदीय कार्यवाही से संबंधित समाचारात्मक सामग्री हिंदी के समाचार पत्रों- 'दैनिक जागरण' और 'अमर उजाला' में विविधता और व्यापकता रही, तो 'दैनिक भास्कर' ने समाचारात्मक सामग्री को परोसने में सिर्फ खानापूर्ति की। अंग्रेजी के दोनों समाचार पत्रों ने संसदीय कार्यवाही से संबंधित खबरों को पहले पृष्ठ से लेकर अंदर तक के पृष्ठों पर समग्रता के साथ जगह दी। पक्ष के साथ विपक्ष के बयानों को भी प्रमुखता से स्थान दिया गया। खबरों के विश्लेषण के मामले में अमर उजाला बढ़िया रहा, तो अंग्रेजी का समाचार पत्र 'हिंदुस्तान टाइम्स' सबसे बेहतर रहा। संसदीय कार्यवाही से संबंधित खबरों के संपादन के पैमाने पर अंग्रेजी के समाचार पत्रों और हिंदी के समाचार पत्रों में साफ अंतर दिखा। पाठकों को आकर्षित करने के लिए हिंदी समाचार पत्रों ने हल्की हेडलाइन का सहारा लिया। उदाहरण के तौर पर 21 सितंबर को राज्यसभा में उपसभापति हरिवंश नारायण सिंह के साथ जो हुआ, इस विषय पर हिंदी के समाचार पत्र 'दैनिक जागरण' ने 'सियासी रार में मर्यादा तार-तार' शीर्षक दिया तो 'दैनिक भास्कर' ने संयम तोड़ते हुए 'बिल पास संसद फेल' जैसा शीर्षक दिया, जिसे संसदीय मर्यादा के अनुरूप नहीं कहा जा सकता है। संसदीय प्रक्रिया को लिखने, प्रकाशित करने में सीमा का ध्यान रखना बेहद जरूरी होता है। निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि संसद के मॉनसून सत्र को लेकर हिंदी के समाचार पत्रों दैनिक जागरण, अमर उजाला और दैनिक भास्कर अधिकांश मामलों में समाचार एजेंसियों पर निर्भर रहे या अपने ब्यूरो का अधिकाधिक इस्तेमाल किया। इसका यह अर्थ भी लगाया जा सकता है कि इन तीनों समाचार पत्रों में संसद संवाददाताओं की कमी है। अंग्रेजी के समाचार पत्र इस मामले में सचेत साबित हुए। देश में पाठकों की संख्या के आधार पर चौथे और पांचवें नंबर के समाचार पत्र 'द टाइम्स ऑफ इंडिया' और 'हिंदुस्तान टाइम्स' संसद के मॉनसून सत्र को लेकर गंभीर दिखे।

संदर्भ

अमर उजाला, हिंदी दैनिक, दिल्ली संस्करण, (10 से 26 सितंबर, 2020)

कश्यप, एस. (1995). अवर कांस्टिट्यूशन. नई दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट

कामथ, एम.वी. (2006). प्रोफेशनल जर्नलिज्म. नई दिल्ली: विकास पब्लिकेशन

कामथ, एम.वी. (2002). द *जर्नलिस्ट हैंडबुक*. नई दिल्ली: विकास पब्लिकेशन

टाइम्स ऑफ इंडिया, अंग्रेजी दैनिक, दिल्ली संस्करण, (10 से 26 सितंबर, 2020)

दयाल, एम. (2010). मीडिया शोध, प्रकाशक,हरियाणा साहित्य अकादमी पंचकूला, पृ. सं.1 से 16

दैनिक जागरण, हिंदी दैनिक, दिल्ली संस्करण, (10 से 26 सितंबर, 2020)

दैनिक भास्कर, हिंदी दैनिक, दिल्ली संस्करण, (10 से 26 सितंबर, 2020)

पार्थसारथी, आर. (2005). *जर्नलिज्म इन इंडिया*. नई दिल्ली: स्टर्लिंग पब्लिकेशन

प्रसाद, एस. एम. (2011). इंडियन फेडर्लिज्म: एन इंट्रोडक्शन. नई दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट

राज्यसभा टीवी लाइव, 14 से 25 सितंबर, 2020 https://rstv.nic.in/live-tv

लोकसभा टीवी लाइव, 14 से 25 सितंबर, 2020 https://loksabhatv.nic.in/

हिंदुस्तान टाइम्स, अंग्रेजी दैनिक, दिल्ली संस्करण, (10 से 26 सितंबर, 2020)

संचार माध्यम | खंड 32(2): 86-88, जुलाई-दिसंबर 2020
आईएसएसएन: 2321-2608

महामारी के दौर में स्वास्थ्य संचार

चन्द्रशेखर[1] और डॉ. सुबोध कुमार[2]

सारांश

वर्ष 2019 के अन्तिम महीनों में चीन के वुहान शहर से उपजे कोरोना संक्रमण ने साल 2020 के शुरुआती महीनों में ही लगभग पूरी दुनिया को अपनी चपेट में ले लिया। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने कोरोना को वैश्विक महामारी घोषित किया। शुरुआती दौर में ही बीमारी के लक्षणों की खोज कर इससे बचाव के तीन बड़े कदम जैसे सामाजिक दूरी, हाथों की सफाई और मास्क पहनना जरूरी माना गया। ऐसे में इस महामारी के प्रकोप से बचने के लिए स्वास्थ्य संचार उपयोगी साधन बना, जिसने लोगों में कोरोना संक्रमण के प्रति सामाजिक चेतना का संचार किया। व्यापक रूप से टेलीविजन, रेडियो, वेबसाइट, पोस्टर, बैनर, दीवार चित्रकारी, सोशल मीडिया जैसे सभी संचार माध्यमों के जरिये शहरों से लेकर सुदूर ग्रामीण अंचलों तक कोरोना महामारी के संक्रमण से बचाव के तरीकों के बारे में जानकारियां पहुंचाई गईं। कोरोना महामारी के समय स्वास्थ्य संचार की भूमिका को जानने के लिए प्रस्तुत अध्ययन में केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय की कोरोना को लेकर बनाई गई वेबसाइट की सामग्री के अध्ययन का प्रयास किया गया है। इसमें मंत्रालय द्वारा चलाए गए अभियानों और उपयोग किए गए संचार माध्यमों के प्रयोग का विश्लेषण किया गया है।

संकेत शब्द : स्वास्थ्य संचार, कोरोना, जागरूकता, वैश्विक महामारी, स्वास्थ्य मंत्रालय, आरोग्य सेतु, कोविड कथा।

प्रस्तावना

स्वास्थ्य संचार से अभिप्राय संचार की एक ऐसी पद्धति से है, जिसका प्रादुर्भाव सूचनाओं के प्रसार के माध्यम से मनुष्य को बेहतर स्वास्थ्य की ओर प्रशस्त करना है। इस प्रकार के संचार में बेहतर स्वास्थ्य एवं बीमारी की रोकथाम से जुड़ी सूचनाओं और ज्ञान का प्रसार किया जाता है। व्यक्ति अथवा समुदाय तक बेहतर स्वास्थ्य प्रबंधन की मूल धारणा का प्रचार-प्रसार करना ही इसका मूल उद्देश्य है। मसलन, किसी बीमारी के होने के कारणों, बीमारी होने के लक्षणों, बीमारी से बचावों और बीमारी के उपचार संबंधी तमाम पहलुओं को प्रचारित और प्रसारित किया जाता है। स्वास्थ्य संचार का उद्देश्य लोगों में उत्तम स्वास्थ्य को लेकर जागरूकता पैदा करने के साथ ही स्वास्थ्य जैसे महत्वपूर्ण विषय को उनके जीवन का मुख्य मुद्दा बनाना भी है, मानव व्यवहार में परिवर्तन लाकर रोग की रोकथाम करने में स्वास्थ्य संचार का प्रयोग किया जाता है।

स्वास्थ्य मुद्दों को प्रभावी रूप से लागू करने में सामाजिक और व्यावहारिक परिवर्तन करने में स्वास्थ्य संचार की प्रमुख भूमिका है। यह ऐसा माध्यम है जिसमें आम लोगों को स्वास्थ्य सेवाओं के बारे में बताकर उनको प्रभावी ढंग से जागरूक करने एवं उनके व्यवहार में सकारात्मक परिवर्तन लाया जा सकता है। वर्तमान समय में युवा वर्ग सोशल मीडिया का अधिक उपयोग कर रहा है। सोशल मीडिया के माध्यम से समाज के बड़े वर्ग को स्वास्थ्य मुद्दों के लाभ के संबंध में बताया जा सकता है।

स्वास्थ्य संचार शोध जनसांख्यिकी और अन्य सूचनाएं मुहैया करवाता है, जिसका उपयोग विशिष्ट जनसंख्या समूह के लिए उचित संचार माध्यम चुनने में सहायता करने में किया जाता है जो उनकी जरूरतों को पूरा कर सके। इनमें जनसंचार अभियान, समाचार, लोकप्रिय मनोरंजन, मीडिया वकालत और पारंस्परिक संचार आदि प्रमुख हैं (फ्रीमूथ एवं अन्य, 2000)।

शोध

कोरोना संक्रमण के दौरान भारत में स्वास्थ्य संचार की भूमिका का अध्ययन करना और महामारी के दौरान जनजागरूकता पैदा करने में स्वास्थ्य संचार की स्थितियों का पता लगाना।

भारत में कोविड महामारी में स्वास्थ्य संचार की भूमिका

30 जनवरी, 2020 को विश्व स्वास्थ्य संगठन ने कोरोना संक्रमण को जन स्वास्थ्य की आपात् स्थिति माना था। 11 मार्च, 2020 को विश्व स्वास्थ्य संगठन ने इसे वैश्विक महामारी माना। मार्च के बाद जब भारत में कोविड-19 ने अपने पैर पसारने शुरू किए तो उससे पहले अचानक सूचना के प्रसार और कोविड-19 से जुड़े विभिन्न पहलुओं की जानकारियों का बड़े स्तर पर आदान-प्रदान शुरू हुआ। फ्रीमूथ एवं अन्य (2000) के अनुसार स्वास्थ्य संचार सिद्धांत संचार प्रक्रिया के चार प्रमुख तत्वों का उपयोग करता है: दर्शक, संदेश, स्रोत और चैनल। समाचार चैनलों पर बहस, रिसर्च से जुड़ी नवीन जानकारियों, कोरोना के संक्रमण के कारणों, बचाव और उपचार की खबरों, विज्ञापन सहित वक्तव्यों की बाढ़-सी आ गई। टीवी और रेडियो कार्यक्रम, मोबाइल, हर सार्वजनिक स्थल, सड़कों, दीवारों पर होर्डिंग्स, पैंफलेट यहां तक कि सोशल मीडिया पर भी कोविड-19 से जुड़ी तमाम जानकारियां साझा होने लगीं। इनका उद्देश्य कोरोना के संक्रमण की चेन को तोड़ना और भारत में इसके विस्तार को सीमित करना था। विश्व स्वास्थ्य संगठन के दिशा-निर्देशों पर स्वास्थ्य संचार के जरिये स्थिति पर नियंत्रण बनाए रखने, हर आम और खास को जागरूक करने का प्रयास किया गया। कोरोना को मात देकर लौटे सदी के महानायक

[1]शोध छात्र, पत्रकारिता विभाग, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान। ईमेल : chanderjou19@vmou.ac.in
[2]सह-आचार्य, पत्रकारिता विभाग, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान। ईमेल : skumar@vmou.ac.in

अमिताभ बच्चन को इसका ब्रांड एंबेसेडर बनाया गया, मोबाइल पर कॉल के ठीक पहले 'दो गज की दूरी मास्क है जरूरी' जैसे संदेश देते उन्हें सुना गया। वहीं अभिनेता अक्षय कुमार को भी टीवी विज्ञापन के माध्यम से लोगों को काम पर जाते समय मास्क पहनने और दो गज की दूरी बनाए रखने का संदेश देते देखा गया। कोविड से बचाव के तीन कदम, जैसे- मास्क पहनना, हाथ धोना और सामाजिक दूरी अपनाने जैसी मूलभूत बातों को सुदूर ग्रामीण स्तर पर पहुंचाने में स्वास्थ्य संचार सफल रहा है।

कोविड-19 के दौर में केन्द्र सरकार के प्रयास

भारत में कोरोना वायरस का पहला मामला जनवरी 2020 में आया, जब चीन के वुहान शहर से आया एक छात्र संक्रमित पाया गया। उसके बाद आंकड़ों में तेजी देखी गई। 22 मार्च, 2020 को प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने एक दिन का जनता कर्फ्यू लगाया। उसके बाद 25 मार्च से ही संपूर्ण लॉकडाउन की घोषणा स्वयं प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने की। इस दौरान आवश्यक चीजों के अलावा बाकी पूरे देश में सामान्य रूप से चलने वाली गतिविधियों को बंद कर दिया गया। लोगों तक कोरोना संक्रमण के बारे में जानकारी पहुंचाने और उससे बचने के तौर-तरीकों की जानकारी देने के लिए पहल की गई। स्वास्थ्य संचार के तमाम विकल्पों का प्रयोग किया गया। यहां तक कि केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय ने इसके लिए सोशल मीडिया अभियान को भी तेज किया। कोरोना वायरस की जानकारी के लिए अलग से वेबसाइट बनाई गई, जिसमें डैश बोर्ड के माध्यम से लोगों को कोरोना की नवीन से नवीन जानकारियां आंकड़ों के लिहाज से दी गई। मोबाइल फोन नंबर डायल करने पर कोरोना संबंधी संदेश पहुंचाए गए। घर-घर जाकर लोगों को इस संक्रमण की जानकारियां दी गईं। समाचार चैनलों पर कार्यक्रमों का संचार होने लगा। 23978046 हेल्प लाइन नम्बर जारी किया गया। इसके साथ ही 1075 टोल फ्री नम्बर भी लोगों तक सूचनाएं और जानकारियां पहुंचाने के लिए जारी हुआ। इसके अलावा माई गव (My Gov) वेबसाइट में कोरोना से संबधित प्रश्न प्रतियोगिता का आयोजन 1 मई, 2020 को किया गया। इसका मकसद कोरोना वायरस को लेकर लोगों के बीच जागरूकता लाना था और लोगों के बीच कोरोना से जुड़ी सही जानकारी साझा करना था। पूरे देश से प्रतियोगिता को व्यापक जनसमर्थन मिला।

8 अक्टूबर, 2020 को स्वयं प्रधानमंत्री ने देशवासियों को कोरोना से बचने के तीन उपाय बताए– हाथ धोना, मास्क पहनना, सामाजिक दूरी बनाए रखना। सर्दी के आते ही बीमारियों के बढ़ते प्रकोप को कम करने के लिए खास आंदोलन चलाया गया। लोगों तक इस संदेश को पहुंचाने के लिए व्यापक संचार तकनीक अपनाई गई। रेडियो स्टेशन, टीवी चैनल्स पर विज्ञापन, रेलवे स्टेशन, एयरपोर्ट, सरकारी कार्यालयों पर (Audio-Video Screen) एवी डिस्प्ले स्क्रीन का प्रयोग किया जा रहा है। दूरदर्शन ने मास्क अप इंडिया अभियान की शुरुआत की। भारत सरकार ने 'आरोग्य सेतु' नाम से एक मोबाइल एप की शुरुआत की, जिसका मकसद कोरोना मरीजों को खोजना और ब्लूटुथ के जरिए ये आम लोगों को कोरोना संक्रमित व्यक्ति से भी आगाह करना था। इसमें भी स्वास्थ्य संचार को ध्यान में रखते हुए कई दृश्य-श्रव्य संदेश भी डाले गए हैं।

भारत में महामारी की तीव्रता को देखते हुए केन्द्र सरकार ने समय रहते बचाव, सक्रियता, श्रेणीबद्ध, समाज आधारित दृष्टिकोण के लिए आह्वान किया और संक्रमण को रोकने, जीवन को बचाने एवं महामारी के प्रभाव को कम करने के लिए एक व्यापक रणनीति बनाई। भारत सरकार ने कोविड संक्रमण के प्रसार को रोकने तथा कम करने के लिए कई अन्य उपाय भी किए हैं। 17 जनवरी, 2020 को पहला यात्रा परामर्श जारी किया गया और जैसे ही स्थिति कुछ बदली, यात्रा सलाह को एक क्रमबद्ध तरीके से संशोधित किया गया (स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, पीआईबी, दिल्ली, 2020)।"

भारत सरकार के विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग के अधीन आने वाली राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद् ने कोविड कथा नाम से जनजागरूकता के लिए एक मल्टीमीडिया गाइड को जारी किया, जिसमें कोविड-19 के सभी पहलुओं को निःशुल्क देखा जा सकता है। कोविड-19 जैसी वैश्विक महामारी के दौर में लोगों तक सही, सटीक और पूर्ण सूचना को पहुंचाना महत्वपूर्ण है। कोविड महामारी के दौरान जीवन को बचाने के लिए स्वास्थ्य संचार एक महत्वपूर्ण और आवश्यक कारक है। केन्द्र सरकार के स्वास्थ्य विभाग ने बच्चों में कोविड-19 से बचाव के लिए 'बच्चे, वायु और कोरोना : लड़ाई कौन जीतेगा?' नाम से एक कॉमिक का प्रकाशन किया, जिसमें चित्रों और लिखित संवादों के माध्यम से कोविड-19 महामारी के दौरान सावधानियों के बारे में बताया गया है। अंदर के पन्नों पर भी आवश्यक रूप से जनजागरूकता फैलाने वाली लाभप्रद जानकारियां प्रदान की गई हैं।

सोशल मीडिया के जरिये भी केन्द्र सरकार ने महामारी के प्रति लोगों को सचेत करने के लिए व्यापक रूप से स्वास्थ्य संचार अभियान चलाया। इसके लिए व्हाट्सएप के जरिये भी कोरोना महामारी से जुड़ी किसी भी जानकारी को प्राप्त करने के लिए व्हाट्सएप पर हेल्पडेस्क बनाया गया। पोस्टर, पैंफलेट के माध्यम से भी आम नागरिकों के मन में कोरोना वायरस के विषय में उठने वाली जिज्ञासाओं को शांत करने का प्रयास किया गया। इसके अलावा केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय की वेबासाइट पर भी उपलब्ध कोरोना वायरस की जागरूकता से संबधित कार्यक्रमों को काफी हाइलाइट किया गया। केन्द्र सरकार ने किसी भी स्तर पर महामारी से निपटने के उपायों के बारे में जन-जन तक जानकारियां पहुंचाने में कोताही नहीं बरती।

केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय द्वारा यू-ट्यूब पर कोरोना वायरस संबंधित जानकारियां और महामारी के वीडियो भी जारी किए गए। यू-ट्यूब के माध्यम से कोविड महामारी से जुड़ी सावधानियों एवं बचाव के तरीकों के बारे में लोगों को जागरूक किया गया। स्वयं सदी के महानायक अमिताभ बच्चन भी लोगों से अपील करते इन विज्ञापनों में देखे गए। केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय की वेबसाइट पर आप इन तमाम वीडियो संदेशों को देख सकते हैं। ये प्रयास स्वास्थ्य संचार का उदाहरण पेश करते हैं। जहां श्रव्य-दृश्य माध्यमों के जरिये जानकारियां व्यापक रूप से प्रभावी संदेश पहुंचाने में सफल हो रही हैं। साथ ही कोरोना महामारी को लेकर लोगों में व्याप्त भ्रांतियों को भी दूर किया जा रहा है।

स्वास्थ्य संचार की स्थिति

भारत में 11 सितम्बर, 2020 तक कोविड-19 के कुल 45 लाख 62 हजार 414 मामलों की पुष्टि की गई थी, जिनमें 76,271 लोगों की मौत हुई। मृत्यु दर 1.67 प्रतिशत दर्ज की गई। सितंबर तक 35 लाख 42 हजार 663 मरीज स्वस्थ हो चुके थे। प्रतिदिन 90,000 के पार लोग कोरोना संक्रमित हुए और कुल 59 लाख से ज्यादा लोग पीड़ित थे। ये आंकड़ा देश में कोरोना संक्रमित होने वाले लोगों में सबसे ज्यादा था। इनमें 77.65 प्रतिशत मरीज ठीक भी हो चुके थे। कोविड-19 के प्रबंधन में सरकार और पूरे सामाजिक सहयोग के मिले-जुले प्रयासों से, भारत संक्रमण के मामलों और इससे होने वाली मौतों की संख्या सीमित करने में सक्षम रहा है। केन्द्र सरकार से प्राप्त आंकड़ों के अनुसार दिसंबर महीने में तो 13 दिसंबर तक संक्रमित मरीजों की संख्या 3,56,546 थी, जिसमें 3,273 मरीजों की संख्या में कमी आई है। यह आंकड़ा कुल संक्रमित व्यक्तियों का 3.62 प्रतिशत है। जबकि 93,57,464 मरीज स्वस्थ्य हो चुके हैं। जो कुल मरीजों का 94.93 प्रतिशत है। मृत्यु दर 1.45 प्रतिशत रह गई और मरने वालों का आंकड़ा 1,43,019 रहा। भारत में प्रति 10 लाख की आबादी पर 3,328 मामले सामने आये, वहीं प्रति 10 लाख की आबादी पर 55 मौतें हुई हैं, जो कि दुनिया में समान रूप से प्रभावित देशों की तुलना में सबसे न्यूनतम में से एक है। महामारी विज्ञान के कई मापदंडों जैसे कि संचरण की विधि, उपनैदानिक संक्रमण, वायरस की अवधि और रोग प्रतिरोधक क्षमता की भूमिका आदि पर अब भी शोध किए जा रहे हैं। एक बार जब कोई व्यक्ति किसी संक्रमण के संपर्क में आता है, तो बीमारी 1 से 14 दिनों के बीच कभी भी विकसित हो सकती है। कोविड के मुख्य लक्षण बुखार, खांसी और सांस लेने में कठिनाई हैं। हमारे देश में लगभग 92 प्रतिशत मामलों में हल्के संक्रमण होने की सूचना है। वहीं मात्र केवल 5.8 प्रतिशत रोगियों को ऑक्सीजन थैरेपी की जरूरत होती है, जबकि 1.7 प्रतिशत मामलों में यह बीमारी काफी गंभीर हो सकती है, जिन्हें गहन देखभाल की आवश्यकता पड़ती है। 19 मार्च, 2020 को अपने संबोधन में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने 22 मार्च को जनता कर्फ्यू लगाने का आह्वान किया। उस दिन सुबह 7 बजे से रात 9 बजे तक सभी लोगों को घर पर रहने के लिए कहा गया और सभी प्रकार के परिवहन के साधन बंद हो गए। इसके प्रभाव को देखते हुए 24 मार्च, 2020 को 21 दिनों के लिए पूरे देश में संपूर्ण लॉकडाउन लगाया गया और उसके बाद धीरे-धीरे अनलॉक की प्रक्रिया शुरू हुई।

अध्ययनकर्ताओं की राय में लॉकडाउन के बाद से दोहरे रेट में कमी देखी गई है। 6 अप्रैल में जहां दोहरा रेट हर 6 दिन में हो रहा था वहीं 18 अप्रैल तक दोहरा रेट 8 दिन हो गया। (*संध्या और बासु, द प्रिंट, 14 अप्रैल 2020*) केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय के संयुक्त सचिव लव अग्रवाल हर शाम 4 बजे नेशनल मीडिया सेंटर से कोरोना संक्रमण और सरकारी प्रयासों की विस्तृत जानकारी देते रहे। इस बीच कोरोना को लेकर फैल रही भ्रान्तियों को दूर करने के लिए भी चलाए जा रहे कार्यक्रमों की जानकारियां जन संचार माध्यमों द्वारा दी जाने लगीं।

निष्कर्ष

स्वास्थ्य संचार जो कि मानव स्वास्थ्य को बढ़ावा देने और बुनियादी मानव मनोवैज्ञानिक जरूरतों से शुरू होता है, उसका उद्देश्य ‘इन्फोडेमिक’ को खत्म करने और ऐसी महामारियों के दौरान प्रभावी तथा स्थायी व्यवहार परिवर्तन को बढ़ावा देना है। (पोराट, तलया, निरप, रूण, कैल्वो, पौड्याल और फोर्ड, 2020)। कोराना संक्रमण के मद्देनजर केन्द्र सरकार द्वारा लॉकडाउन एकमात्र विकल्प था। संक्रमण की गति को देखते हुए इतने बड़े स्तर पर देश में स्वास्थ्य सुविधाओं की आवश्यकता पड़ती, जिसे संभाल पाना बेहद मुश्किल होता। ऐसे में सामाजिक दूरी बनाने और संक्रमण शृंखला को तोड़ने का यही एकमात्र सुलभ रास्ता था, जिसके परिणामस्वरूप भारत में कोराना संक्रमण की दर विकसित देशों के मुकाबले बहुत धीमी रही। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने भी इस दौरान भारत की ओर चेताते हुए कहा था कि कोरोना संक्रमण के परिणाम भारत में इस संक्रमण की गति पर ही निर्भर करेंगे, क्योंकि देश में स्वास्थ्य सुविधाएं करोड़ों की संख्या में एक साथ सेवा पहुंचाने में असमर्थ साबित होतीं। इस बीच स्वास्थ्य संचार घरों में बंद आमजन तक कोरोना संक्रमण से जुड़ी सूचनाओं को पहुंचाने का एकमात्र जरिया था। सूचना और जानकारी के अभाव में लोगों के भीतर भय और बीमारी का आतंक विकसित होने की पूरी संभावना थी। ऐसे में स्वास्थ्य संचार ने निश्चित तौर पर लोगों में कोरोना संक्रमण को लेकर सरकारों द्वारा किए जा रहे प्रयासों, लॉकडाउन, अनलॉक जैसे निर्णयों की जानकारी और वैक्सीन बनाने के लिए हो रहे शोधों की जानकारियों सहित भारत में कोरोना संक्रमण की तत्कालीन स्थित के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, अपने जीवन की परवाह किए बिना पत्रकार लगातार सूचनाओं को एकत्रित कर लोगों तक पहुंचाने में जुटे रहे, जिसमें कई पत्रकारों की संक्रमण से मौत भी हुई। इसलिए पत्रकारों को भी कोरोना योद्धा के नाम से पुकारा गया। स्वास्थ्य संचार निश्चित तौर पर आज भी कोरोना संक्रमण से जुड़ी तमाम जानकारियों को पहुंचाने का प्रयास कर रहा है। लोगों तक कोरोना संक्रमण की सूचनाएं पहुंची हैं और ये प्रयास अब भी निरंतरता लिए हुए हैं। जानकारों का कहना है कि मीडिया के जरिये सामाजिक ताने-बाने को जितना ज्यादा मजबूत किया जाएगा, ऐसी महामारी पर उतनी ही तेज गति से प्रभावी अंकुश लगाया जा सकेगा।

संदर्भ

पोराट एवं अन्य (2020). पब्लिक हेल्थ एंड रिस्क कम्युनिकेशन ड्यूरिंग कोविड 19. *फ्रंटियर्स इन पब्लिक हेल्थ*. https://doi.org/10.3389/fpubh.2020.573397 से पुन:प्राप्त

फीमुथ, वी., लिनन, डबल्यू, पोटर, एच. (2000). पर्सपेक्टिव्स कम्युनिकेटिंग द थ्रेट ऑफ एमर्जिंग इंफेक्शंस टू द पब्लिक. *एमर्जिंग इंफेक्शियस डिजिज*, *6*(4), पृ. 337-47. DOI: 10.3201/eid0604.000403.

रमेश, एस. एवं बसु, एम. (2020). आरओ डाटा शोज इंडियाज कोरोना वायरस इंफेक्शन रेट हेज स्लोड, गीव्स लॉकडाउन ए थंब्स अप. द *प्रिंट* https://pib.gov.in/PressReleasePage.asp?PRID=1627282

संचार माध्यम | खंड 32(2): 89-94, जुलाई-दिसंबर 2020
आईएसएसएन: 2321-2608

भारत के श्रम बल में महिलाओं की भागीदारी और उनके सशक्तीकरण में योजनाओं की भूमिका

सरोज सिंह[1] और डॉ. ओम प्रकाश[2]

सारांश

भारत में लगभग आधी आबादी महिलाओं की है, परन्तु देश के पूरे श्रम बल में उनका योगदान आधे का भी आधा है। इससे साफ है कि देश के मौजूदा श्रम बल में महिलाओं और पुरुषों की भागीदारी में काफी अंतर है। महिला और पुरुष कामगारों के बीच के इस अंतर को पाटने के लिए अलग- अलग समय पर केंद्र सरकारों ने कई कदम उठाए हैं। भारत में महिला एवं बाल विकास मंत्रालय भी है, जिसका मूल उद्देश्य ही महिलाओं के विकास से जुड़ा है, लेकिन अगर पूरे देश के हर राज्य में महिलाओं की स्थिति को सुधारना है तो हर मंत्रालय को अपने-अपने हिस्से का सहयोग इस मंत्रालय को देना होगा। बीते कुछ सालों में हर मंत्रालय ने इस अंतर को कम करने के लिए अपनी तरफ से कई प्रयास किए हैं। इनमें से कुछ प्रयासों का परिणाम सकारात्मक भी रहा है, लेकिन कुछ ऐसे कदम भी उठाए गए जिनकी सफलता के बारे में महिलाओं और पुरुषों पर अलग से अध्ययन नहीं किया गया। यह शोध पत्र एक प्रयास है भारत सरकार के उन प्रयासों की सफलता-असफलता और बदलाव के विश्लेषण का। इस शोध पत्र के जरिये यह जानने की कोशिश की गई है कि क्या सरकारी प्रयासों, जिनमें महिलाओं के लिए पत्रकार कल्याण योजना, राष्ट्रीय सामाजिक सहायता योजना आदि शामिल हैं, से महिलाओं की भागीदारी को देश के श्रम बल में बढ़ाया जा सकता है?

संकेत शब्द : महिला कामगार, महिला विकास, सामाजिक सुरक्षा, पत्रकार कल्याण योजना

भूमिका

देश की कुल आबादी में महिलाएं 48 फीसदी हैं। आबादी के मुकाबले देश के श्रम बल में महिलाओं का योगदान बहुत कम है। वर्ल्ड बैंक की रिपोर्ट 'इंडिया डेवलपमेंट अपडेट: अनलॉकिंग वुमन्स पोटेंशियल', मई 2017 के मुताबिक भारत में कुल 27 फीसदी महिलाएं ही कामकाजी हैं। महारजिस्ट्रार एवं जनगणना आयुक्त कार्यालय द्वारा जारी भारत जनगणना 2011 रिपोर्ट के मुताबिक देश में महिला कामगारों की संख्या 14 करोड़ 98 लाख है। यह विभाग भारत सरकार के गृह मंत्रालय के अंतर्गत काम करता है। इसमें से 12 करोड़ 18 लाख महिलाएं ग्रामीण इलाकों में काम करती हैं और तकरीबन 2 करोड़ 80 लाख महिलाएं शहरी इलाकों में काम करती हैं। इस 12 करोड़ 18 लाख महिलाओं में तकरीबन 97.4 फीसदी महिलाएं कृषि क्षेत्र में काम करती हैं। वर्ष 2011 जनगणना आंकड़ों की मानें तो भारत में उपलब्ध कुल कामगारों में महिलाओं की हिस्सेदारी 25.51 फीसदी है। इन आकड़ों में वर्ष 2001 के आंकड़ों के मुकाबले थोड़ी गिरावट दर्ज की गई है। वर्ष 2001 में महिला कामगारों की हिस्सेदारी 25.63 फीसदी हुआ करती थी; हालांकि 2011 के आंकड़े 1991 के मुकाबले थोड़े बेहतर जरूर हैं, जो वर्ष 1991 में 22.27 फीसदी थे।

महिला कामगारों के इन आंकड़ों के पीछे की बड़ी वजह कामकाज के दौरान सामाजिक सुरक्षा के अभाव को माना जाता है। अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन के मानकों के मुताबिक सामाजिक सुरक्षा के आयाम हैं स्वास्थ्य, बीमारी, वृद्धावस्था, बेरोजगारी, रोजगार में रहते हुए कोई अपंगता, परिवार के लिए सहायता, प्रसव और मातृत्व से जुड़ी सुविधाएं। हर देश अपने हितों को ध्यान में रखते हुए कामगारों की बेहतरी के लिए ऐसी सुविधाएं मुहैया कराता है। भारत ने भी अपने राष्ट्रीय हित में महिला कामगारों की महत्वपूर्ण भूमिका को देखते हुए उनके लिए अंतरराष्ट्रीय मानक पर इस तरह की कई योजनाएं बनाई हैं।

साहित्य समीक्षा

भारत सरकार के महिला एवं बाल विकास मंत्रालय को देश की महिलाओं को सशक्त बनाने की जिम्मेदारी दी गई है। सरकार द्वारा बनाई गई योजनाओं और उनको अमल में लाने में दिक्कतें और अड़चनें क्या हैं, उस पर केंद्रीय सांख्यिकी मंत्रालय ने 'वुमन एंड मेन इन इंडिया, 2016' नाम से एक रिपोर्ट तैयार की थी। रिपोर्ट के मुताबिक ग्रामीण इलाकों में महिलाओं की श्रम बल में भागीदारी पुरुषों के मुकाबले ज्यादा है। समान काम के लिए महिलाओं और पुरुषों को एक समान वेतन नहीं मिलता। वेतन का यह अंतर ग्रामीण इलाकों में ज्यादा और शहरी इलाकों में कम है। इस रिपोर्ट में भारत सरकार द्वारा चलाई जा रही महात्मा गांधी राष्ट्रीय रोजगार गारंटी योजना (मनरेगा) स्कीम का उदाहरण देकर वेतन में अंतर की बात कही गई है। महिलाओं के लिए बेरोजगारी दर शहरी और ग्रामीण इलाकों में पुरुषों के मुकाबले ज्यादा है, यह निष्कर्ष भी रिपोर्ट का हिस्सा है।

अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन ने 'वाई इज फीमेल लेबर फोर्स पार्टिसिपेशन डिक्लाइनिंग सो शार्पली इन इंडिया?' रिपोर्ट को जुलाई 2014 में प्रकाशित किया था। रिपोर्ट के मुख्य लेखक अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन के अर्थशास्त्री स्टीवन कैप्सॉस थे। रिपोर्ट के मुताबिक भारत में विकास दर बढ़ रही है और महिलाओं की श्रम बल में हिस्सेदारी घट रही है। इसके पीछे के कारणों की व्याख्या करते हुए रिपोर्ट में कहा गया है कि माध्यमिक और उच्च शिक्षा में महिलाएं ज्यादा आ रही हैं। बावजूद इसके, नौकरियों में उनकी संख्या कम देखने को मिलती है। साफ है महिलाएं पढ़ाई में तो आगे हैं, पर परिवार की आर्थिक स्थिति बेहतर होने की वजह से पढ़ाई करने के बाद कामकाज नहीं करतीं। दूसरे कारण के बारे में इस विश्लेषण में कहा गया है कि महिलाओं के कामकाज का सही तरीके से मूल्यांकन नहीं किया जाता है। साथ ही काम खोजने में महिलाओं को पुरुषों के मुकाबले ज़्यादा दिक्कत का सामना करना पड़ता है।

[1]शोध छात्रा और सीनियर ब्रॉडकास्ट जर्नलिस्ट, बीबीसी हिंदी सेवा। ईमेल : saroj01@gmail.com
[2]स्कूल ऑफ ह्यूमैनिटीज एंड सोशल साइंसेज, गौतम बुद्ध विश्वविद्यालय। ईमेल : om@gbu.ac.in

महिलाओं के कामकाज का सही तरीके से मूल्यांकन नहीं होने से एक अभिप्राय वैसे कामकाज से है जो महिलाएं करती तो हैं पर उस काम के लिए उन्हें तनख्वाह नहीं मिलती, जिसे अंग्रेजी में 'अनपेड वर्क' कहा जाता है, जैसे घर पर परिवार के दूसरे सदस्यों की देखभाल, बच्चों को पढ़ाना, घर का काम, खाना बनाना आदि। भारत सरकार के नीति आयोग की 'एक्शन प्लान रिपोर्ट टुवर्ड्स बिल्डिंग मोर इनक्लूसिव सोसाइटी 2017' के मुताबिक विश्व में महिलाएं पुरुषों के मुकाबले तीन गुना ज्यादा 'अनपेड वर्क' करती हैं। लेकिन भारत की महिलाएं पुरुषों के मुकाबले 9.8 गुना ज्यादा 'अनपेड वर्क' करती हैं। विश्व के सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में महिलाओं की श्रम बल में भागीदारी 37 फीसदी है, जबकि भारत में केवल 17 फीसदी। अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन और नीति आयोग के आंकड़ों को ध्यान में रखते हुए भारत के राष्ट्रीय सांख्यिकीय कार्यालय ने जनवरी 2019 से दिसंबर 2019 के बीच एक अलग तरह का सर्वेक्षण 'भारत में समय का उपयोग' कराया। इसकी रिपोर्ट 2020 में जारी की गई। देश के शहरी और ग्रामीण इलाकों में कराए गए इस सर्वेक्षण का उद्देश्य यह पता लगाना था कि शहरी और ग्रामीण भारत में महिला और पुरुष समय का उपयोग कैसे करते हैं। रिपोर्ट के मुताबिक भारत में 15 से 60 साल की उम्र की महिलाएं बिना मेहनताने वाले कामों (अनपेड वर्क) में पुरुषों के मुकाबले ज्यादा समय खर्च करती हैं। ऐसे कामों की सूची में बच्चों का पालन-पोषण, घर के कामकाज और परिवार के दूसरे सदस्यों की देखभाल को रखा गया है। राष्ट्रीय सांख्यिकीय कार्यालय द्वारा जारी भारत में उपयोग 2019 की रिपोर्ट के मुताबिक भारत में पुरुष, महिला के मुकाबले रोजगार पर ज्यादा समय खर्च करते हैं। ग्रामीण इलाकों के मुकाबले शहरी इलाकों में समय का यह अंतर थोड़ा ज्यादा है। अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन की जुलाई 2014 की रिपोर्ट 'वाई इज फीमेल लेबर फोर्स पार्टिसिपेशन डिक्लाइनिंग सो शार्पली इन इंडिया?' में इसके कारणों का विश्लेषण लिखा गया है। इस रिपोर्ट के मुताबिक ऐसा होने के पीछे अनेक कारणों में से एक कारण महिलाओं के लिए सामाजिक सुरक्षा की कमी भी है।

महिलाएं और सामजिक सुरक्षा योजनाएं

भारत में भी असंगठित क्षेत्र में काम करने वाले मजदूरों के लिए एक कानून बनाया गया है। असंगठित कामगार सामाजिक सुरक्षा अधिनियम, 2008 के तहत भारत सरकार कई तरह की सामाजिक सुरक्षा स्कीम चलाती है:

(क) जीवन और अपंगता से संबंधित
(ख) स्वास्थ्य और प्रसूति से संबंधित
(ग) वृद्धावस्था से संबंधित
(घ) इसके अलावा राज्य और केन्द्र सरकार द्वारा निर्धारित किसी भी और मामले पर।

ऐसी योजनाओं के साथ कामगारों की सामाजिक सुरक्षा के लिए कुछ संवैधानिक प्रावधान भी किए गए हैं। इनमें कुछ सिर्फ महिलाओं की सामाजिक सुरक्षा को ध्यान में रख कर चलाए जा रहे हैं, जबकि कुछ पुरुष और महिला दोनों के लिए बनाए गए हैं, लेकिन महिलाओं का इन योजनाओं और प्रावधानों में खास ख्याल रखा गया है। ऐसा इसलिए है ताकि महिलाओं को सामाजिक सुरक्षा का अहसास हो और उनके साथ महिला होने के कारण किसी तरह का भेदभाव नहीं हो और उनकी शारीरिक क्षमताओं को ध्यान में रखकर ही उनसे काम कराया जा सके। सबसे पहले महिलाओं पर केंद्रित योजनाओं और संवैधानिक प्रावधानों पर एक नजर डालते हैं।

समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976: श्रम एवं रोजगार मंत्रालय भारत सरकार की आधिकारिक वेबसाइट पर इस कानून का पूरा विस्तृत विवरण दिया गया है। इस कानून के तहत महिला और पुरुष किसी भी संस्था में अगर एक ही जैसा काम कर रहे हैं तो दोनों के वेतन भत्ते में कोई भेदभाव नहीं किया जा सकता। हालांकि इस कानून का उद्देश्य कामगार महिलाओं को पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिला कर काम करने के लिए प्रोत्साहित करने का था, लेकिन अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन की 2017 की रिपोर्ट के मुताबिक भारत में पुरुषों को महिलाओं के मुकाबले एक ही काम करने के लिए औसतन 30 फीसदी ज्यादा वेतन दिया जाता है। कम पैसा कमाने वाली महिलाओं में ये अंतर 60 फीसदी तक है, जबकि ज्यादा वेतन कमाने वाली महिलाओं में ये अंतर 15 फीसदी तक है।

कारखाना अधिनियम 1948: श्रम एवं रोजगार मंत्रालय की आधिकारिक वेबसाइट पर महिला श्रम बल के बारे में अलग से एक पृष्ठ बनाकर चर्चा की गई है। वहां दी गई जानकारी के मुताबिक ये कानून, फैक्ट्री में काम करने वाले हर कर्मचारी के लिए बनाया गया है। लेकिन इसमें विशेष तौर पर महिलाओं के पक्ष में भी कई प्रावधान किए गए हैं, जिससे वहां काम करने वाली महिलाओं को एक सुरक्षित परिवेश मिल पाए।

- फैक्ट्री कानून की धारा 22(2) के तहत महिला कामगारों को किसी भी चलती हुई मशीन के सफाई के काम में नहीं लगाया जा सकता।
- इस कानून की धारा 27 के तहत किसी भी महिला कामगार को कपास की मिल में कॉटन प्रेसिंग के काम में नहीं लगाया जा सकता। दोनों ही नियम महिलाओं की स्वास्थ्य संबंधी सुविधाओं को देखते हुए बनाए गए हैं।
- फैक्ट्री अधिनियम 1948 के तहत महिला कामगारों के लिए शौच और प्रसाधन के लिए भी अलग से व्यवस्था करने का प्रावधान है।
- फैक्ट्री अधिनियम 1948 की धारा 66(1)(बी) के मुताबिक किसी भी फैक्ट्री में महिला को सुबह छह बजे से पहले और शाम के सात बजे के बाद काम करने की इजाजत नहीं होगी।
- बीड़ी और सिगरेट बनाने की फैक्ट्री में काम करने वाली महिलाओं के लिए भी इस सुविधा का उल्लेख बीड़ी एवं सिगार कर्मचारी (सेवा शर्तें) अधिनियम, 1966 की धारा 25 में किया गया है।
- इस कानून से सीख लेते हुए खदानों में काम करने वाली महिलाओं को भी यह सुविधा दी गई है। खदान अधिनियम 1952 की धारा 46(1) के मुताबिक खदान में महिलाओं को सुबह छह बजे से पहले और शाम के सात बजे के बाद काम पर नहीं लगाया जा सकता।

साथ ही खदान में काम करने वाली महिलाओं को जमीन के नीचे

के हिस्से में किसी भी काम में नहीं लगाया जा सकता।

हालांकि इन सुविधाओं की वजह से कितनी महिलाएं ऐसे कामकाज से जुड़ी हैं, इस पर अलग से शोध की जरूरत महसूस की जा रही है।

महिला कामगारों के स्वास्थ्य को लेकर भी सरकार सजग दिख रही है और हाल के वर्षों में इस दिशा में कई कदम उठाए गए हैं। स्वास्थ्य बीमा से लेकर जननी सुरक्षा योजना तक इसकी झलक देखी जा सकती है। प्रसूति प्रसुविधा (संशोधन) अधिनियम 2017 इस दिशा में क्रांतिकारी कदम कहा जा रहा है।

राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना: वर्ष 2008 में इसकी शुरुआत असंगठित क्षेत्र में काम करने वाले गरीबी रेखा से नीचे कमाने वाले कामगारों के लिए की गई थी। यह एक स्वास्थ्य बीमा योजना है। इसके तहत किसी भी ऐसी बीमारी में जिसमें इलाज के दौरान अस्पताल में भर्ती होना अनिवार्य हो (अस्पताल और बीमारी दोनों की सूची सरकार मुहैया कराती है) केन्द्र और राज्य सरकार मिल कर 30 हजार रुपये की सालाना सहायता राशि कामगार के परिवार को मुहैया कराएगी। इस योजना का लाभ लेने के लिए गरीबी रेखा से नीचे वाले परिवार में पति-पत्नी और तीन ऐसे लोग जो उन पर आश्रित हो, उन्हें जिला कार्यालय में जा कर रजिस्ट्रेशन कराने की जरूरत पड़ेगी। इस योजना का मकसद अचानक हुई बीमारी और फिर इलाज के खर्चे से उसके परिवार को लगने वाले आर्थिक झटके से बचाना और उबारना है, इसलिए सरकार स्वास्थ्य संबंधी ऐसी सुविधाएं हर कामगार तक पहुंचाना चाहती है।

जननी सुरक्षा योजना: प्रसव के दौरान होने वाली महिलाओं की मृत्यु दर को कम करने के लिए केन्द्र सरकार ने स्वास्थ्य योजना की शुरुआत की है। इस योजना के माध्यम से सरकार का लक्ष्य है कि हर गर्भवती महिला अस्पताल में ही अपने बच्चे को जन्म दे, ताकि मां और बच्चा दोनों स्वस्थ रहें। अस्पताल में प्रसव को बढ़ावा देने के लिए सरकार एक निश्चित राशि भी गर्भवती महिलाओं को देती है, हालांकि इस योजना की अहम बात यह भी है कि इस योजना का लाभ लेने के लिए किसी महिला का कामगार होना आवश्यक नहीं है। न ही इस योजना के तहत गर्भवती महिला के लिए कोई आयु सीमा रखी गई है और न ही बच्चा पैदा करने की संख्या पर भी कोई रोक है। आशा वर्कर को इस योजना में एक कड़ी माना गया है।

राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन की आधिकारिक वेबसाइट के मुताबिक जिन राज्यों में अस्पताल में जाकर बच्चा पैदा करने की दर कम है वहां प्रसव के बाद महिला को 1400 रुपये की सहायता राशि दी जाएगी और उसकी मदद करने वाली हर आशा वर्कर को ऐसी डिलिवरी करवाने पर 600 रुपये की सहायता राशि दी जाएगी। इसके अलावा देश के बाकी राज्यों में अस्पताल में डिलिवरी के बाद महिला को 600 रुपये और आशा वर्कर को भी 600 रुपये दिए जाएंगे। शहरी इलाकों के लिए यह राशि थोड़ी और कम है। सरकार के इस कदम से किन राज्यों में कितना फर्क पड़ा है यह शोध का विषय हो सकता है।

प्रसूति प्रसुविधा (संशोधन) अधिनियम 2017: 1 अप्रैल, 2017 से यह नियम महिला कामगारों के लिए लागू किया गया है। यह कानून संगठित क्षेत्र में काम करने वाली महिलाओं के लिए बनाया गया है। पुराने 1961 के कानून में बदलाव किए गए हैं, जिसके बाद गर्भवती महिलाओं को 12 हफ्तों की जगह 26 हफ्तों का अवकाश मिलेगा। इस अवकाश के दौरान उनको उनकी पूरी तनख्वाह भी दी जाएगी। इस नए बदलाव के बाद किसी भी संस्था में जहां 50 कर्मचारियों से ज्यादा लोग काम करते हों, वहां क्रेच की सुविधा अनिवार्य कर दी गई है; हालांकि असंगठित क्षेत्र में महिला कामगारों को ये सुविधा नहीं दी जा रही है। इस सामाजिक सुरक्षा कानून के जरिये सरकार यह सुनिश्चित करना चाहती है कि गर्भवती महिलाएं बच्चे को जन्म देने के बाद अपना करियर बीच में न छोड़ें और मातृत्व अवकाश के बाद वापस अपने काम पर लौट सकें।

हालांकि टीमलीज की रिपोर्ट 'द इम्पैक्ट ऑफ मैटर्निटी बेनिफिट्स ऑन बिजनेस एंड एम्प्लॉयमेंट जून 2018' के मुताबिक नए कानून के आने के बाद काम पर रखने से पहले महिलाओं से उनकी शादी और बच्चे के प्लान के बारे में पूछा जाने लगा है। टीमलीज संस्था ने यह सर्वे एक साल तक 300 कंपनियों के साथ किया था।

महिलाओं का कार्यस्थल पर लैंगिक उत्पीड़न अधिनियम 2013: महिला एवं बाल विकास मंत्रालय की वेबसाइट पर महिलाओं से संबंधित कानून की अलग से सूची दी गई। उस सूची के अंत में इस कानून के तमाम पहलुओं को विस्तार से समझाया गया है। इस कानून के तहत ऐसे प्रावधान किए गए हैं, जिससे कार्यस्थल पर काम करते हुए महिला, पुरुषों से खुद को सुरक्षित महसूस करें। इस कानून के तहत सभी कार्यस्थलों पर यौन उत्पीड़न शिकायत समिति का गठन आवश्यक किया गया है। यह समिति आमतौर पर काम करने वाली विभागीय समितियों से अलग होनी चाहिए। प्रावधान के मुताबिक समिति में एक तीसरे पक्ष को भी जरूर रखा जाना चाहिए, जो या तो कोई गैरसरकारी संगठन से हो या तो कोई ऐसा व्यक्ति जो जेंडर और सैक्सुअलिटी यानी सामाजिक लिंग और यौनिकता की समझ रखता हो साथ ही यह भी जानता हो कि यौन उत्पीड़न के मामलों से कैसे निपटा जाता है। महिला एवं बाल विकास मंत्रालय की 8 अगस्त, 2015 की रिपोर्ट के मुताबिक इस कानून के बनने के बाद वर्ष 2014 में कार्यस्थलों पर महिलाओं के यौन उत्पीड़न के 526 मामले दर्ज किए गए।

प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना: पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस मंत्रालय भारत सरकार ने 2016 में इस योजना की शुरुआत की। इस योजना के तहत गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले परिवारों को मुफ्त में एलपीजी कनेक्शन की सुविधा दी जाती है। इस योजना के दो अहम उद्देश्य हैं। पहला गरीब परिवारों की महिलाओं को स्वच्छ ईंधन मुफ्त उपलब्ध कराना, जिससे कि उन्हें स्वास्थ्य सुरक्षा का अहसास हो सके और महिलाएं खुद को सशक्त महसूस करें। दूसरा उद्देश्य लकड़ी और गोबर के उपलों के जलने से होने वाले वायु प्रदूषण में कमी लाना है। वैसे ये योजना सीधे महिला कामगारों से जुड़ी नहीं है, लेकिन गरीबी रेखा से नीचे रहने वाली महिला कामगारों का जीवन इस योजना के आने से बेहतर हुआ है। इस योजना की वजह से महिलाएं खाना बनाकर समय पर काम पर पहुंच पा रही हैं। 8 मार्च, 2019 को पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस मंत्रालय भारत सरकार की तरफ से जारी सूचना के मुताबिक 3 साल में 7 करोड़ महिलाओं तक इस योजना का लाभ पहुंचा है।

केवल महिलाओं को ध्यान में रख कर बनाई गई योजनाओं और

कानूनों के अलावा कुछ ऐसी भी योजनाएं हैं जो पुरुष और महिला दोनों के लिए उपलब्ध हैं, लेकिन महिलाओं को उनका लाभ अवश्य मिले, इसका विशेष ख्याल रखा गया है। ऐसी योजनाओं पर भी एक नजर डालते हैं।

महात्मा गांधी राष्ट्रीय रोजगार गारंटी योजना (मनरेगा) : इसके तहत सरकार ने ग्रामीण इलाकों में एक साल में 100 दिन तक पुरुष और महिलाओं को काम के अवसर प्रदान करने की पहल की थी, लेकिन आंकड़े बताते हैं कि जहां साल 2004-05 में इसमें 28.2 फीसदी महिलाएं मनरेगा के तहत काम करती थीं, 2011-12 में घट कर 21.7 फीसदी ही रह गईं। उसके बाद से इन आंकड़ों में लगातार इजाफा ही हुआ। यह योजना भारत सरकार के ग्रामीण विकास मंत्रालय के अधीन आती है।

ग्रामीण विकास मंत्रालय की तरफ से जारी सरकारी आंकड़ों के मुताबिक मनरेगा में महिलाओं की भागीदारी 2013-2014 में 52.82 फीसदी से बढ़कर 2016 में 56.16 फीसदी हो गई; हालांकि यह भी सच है कि कोरोना महामारी के दौर में इसमें थोड़ी गिरावट दर्ज हुई है। महिलाओं को मनरेगा के तहत काम देने के मामले में केरल, पुडुचेरी और तमिलनाडु सबसे आगे हैं। महिला कामगारों की सामाजिक सुरक्षा के लिहाज से केंद्र सरकार की इस योजना को सबसे कारगर माना जाता है।

प्रधानमंत्री मुद्रा योजना : गैर-कॉर्पोरेट, गैर-कृषि लघु/सूक्ष्म उद्यमों को 10 लाख रुपये तक का ऋण प्रदान करने के लिए 8 अप्रैल, 2015 को भारत सरकार ने इस योजना की शुरुआत की। इस योजना के तहत महिलाएं और पुरुष दोनों छोटे संगठन, व्यवसाय, स्टार्ट-अप शुरू करने के लिए या फिर से आगे बढ़ाने के लिए कर्ज के लिए आवेदन कर सकते हैं। वित्त मंत्रालय की तरफ से जारी आंकड़ों के मुताबिक जनवरी 2020 तक इस योजना के तहत दिए गए ऋण में से 70 फीसदी महिलाओं को दिया गया है।

स्टैंड-अप इंडिया योजना : आर्थिक सशक्तीकरण और रोजगार के नए अवसर पैदा करने के लिए 5 अप्रैल, 2016 को स्टैंड अप इंडिया योजना शुरू की गई थी। इस योजना में संस्थागत ऋण संरचना का लाभ अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और महिला उद्यमियों तक पहुंचे इसके लिए प्रयास किया गया था। इस योजना में10 लाख रुपये से लेकर 1 करोड़ रुपये के बीच बैंक ऋण की सुविधा प्रदान करना है। केंद्र सरकार का दावा है कि स्टैंड अप इंडिया योजना के तहत फरवरी 2020 तक 81 प्रतिशत महिलाओं को इस योजना का लाभ मिला।

प्रधानमंत्री जन-धन योजना : पिछले कुछ सालों में केंद्र सरकार ने सरकारी योजनाओं का लाभ सीधे लाभार्थियों तक पहुंचाने के लिए डायरेक्ट बेनिफिट ट्रांसफर की सुविधा शुरू की है। इसके तहत योजनाओं का लाभ सीधे लाभार्थियों के बैंक खाते में पहुंचता है, लेकिन जब इस तरह की योजना की शुरुआत की जा रही थी तब केंद्र सरकार के सामने सबसे बड़ी समस्या थी, लोगों के पास बैंक खाते का न होना। इस समस्या को दूर करने के लिए 28 अगस्त, 2014 को केंद्र सरकार ने 'प्रधानमंत्री जनधन योजना' की शुरुआत की। कामगारों की सामाजिक सुरक्षा के लिए केंद्र सरकार इसे अपना सबसे महत्वपूर्ण कदम मानती है। फरवरी 2020 के आंकड़ों के मुताबिक पिछले छह साल में इस योजना के 38.33 करोड़ लाभार्थी हुए हैं, जिनमें से 20.33 करोड़ लाभार्थी महिलाएं हैं, जो कुल संख्या का 53 प्रतिशत हैं।

राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम : केन्द्र सरकार का ग्रामीण विकास मंत्रालय ये कार्यक्रम चलाता है। इसके तहत राज्य सरकारों से भी मदद ली जाती है। इस कार्यक्रम के अंतर्गत सरकार 3 अलग-अलग योजनाएं चलती हैं– राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना (एनओएपीएस), राष्ट्रीय परिवार लाभ योजना (एनएफबीएस), और राष्ट्रीय मातृत्व लाभ योजना (एनएमबीएस)। इनमें से सबसे अहम है राष्ट्रीय परिवार लाभ योजना। इस योजना के तहत अपने पैसे से परिवार चलाने वाले किसी भी कामगार (पुरुष हो या महिला) की मृत्यु पर सरकार परिवार को 10,000 रुपये की सहायता राशि मुहैया कराती है। शर्त यह है कि परिवार चलाने वाले कामगार की मृत्यु 18 से 64 वर्ष की आयु के बीच हुई हो। इस योजना से सरकार कामगारों के परिवार को सामाजिक सुरक्षा के दायरे में लाने का प्रयास कर रही है। हालांकि देश के सभी राज्यों में ये लागू नहीं है। केन्द्र की इस योजना का लाभ उन्हीं राज्यों में कामगारों को उपलब्ध है, जो केन्द्र सरकार की इस योजना को अपना चुके हैं।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना : यह योजना राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम के हिस्से के तौर पर ही शुरू की गई थी। इसके लिए लाभार्थी (महिला या पुरुष) की आयु 65 वर्ष या उससे अधिक होना और गरीबी रेखा के नीचे होना दोनों अनिवार्य हैं। सहायता के लिए प्रत्येक लाभार्थी के लिए 300 रुपये प्रति माह है। यानी कामकाज की उम्र न रहने पर सरकार इस योजना से उनकी सहायता करती है। हाल ही में इस राशि को बढ़ा कर 500 रुपये प्रति माह कर दिया गया है।

शिल्पकारी विस्तृत कल्याण योजना : भारत सरकार का वस्त्र मंत्रालय इस योजना को चलाता है। इस स्कीम के तहत हस्तशिल्प का काम करने वाले एक साल से 80 साल की आयु वाले प्रत्येक पुरुष या महिला शिल्पकार को स्वास्थ्य बीमा का लाभ मिलेगा, चाहे वे गरीबी रेखा के नीचे आते हों या नहीं। हस्तशिल्प कामगार को इसके लिए 200 रुपये की सहयोग राशि हर साल जमा करवानी पड़ती है, जिसके बाद कामगार के परिवार के चार सदस्यों (कामगार को जोड़ कर) स्वास्थ्य बीमा का लाभ मिलता है। इस योजना में परिवार के पंजीकृत सदस्य की मृत्यु पर एक लाख तक की सहायता राशि का प्रावधान रखा गया है। इसके अलावा दूसरी बीमारियों पर सरकार द्वारा चयनित अस्पतालों में इलाज कराने पर एक निश्चित राशि तक का उपचार मुफ्त कराया जा सकता है।

इसके अलावा हथकरघा क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए केंद्र सरकार के वस्त्र मंत्रालय ने कई और योजनाएं भी शुरू की हैं। इसके तहत अलग से राष्ट्रीय हथकरघा विकास कार्यक्रम चलाया जा रहा है, सरकार अलग से हथकरघा बुनकर व्यापक कल्याण योजना, धागा आपूर्ति योजना और व्यापक हथकरघा क्लस्टर विकास योजना भी चला रही है।

भारत सरकार के वस्त्र मंत्रालय ने 8 मार्च, 2019 को महिलाओं के सशक्तीकरण हेतु शुरू की गई योजनाओं की जानकारी दी थी। उनके मुताबिक हथकरघा गणना (2009-10) के अनुसार, देश भर में लगभग

43.31 लाख हथकरघा बुनकर एवं सहायक कामगार हैं। इनमें से 77 प्रतिशत बुनकर एवं सहायक कामगार महिलाएं हैं, जो बुनाई एवं संबंधित कार्यों से जुड़ी हुई हैं और अपने-अपने परिवारों के लिए आय अर्जित कर रही हैं।

आम आदमी बीमा योजना : साल 2013 से जनश्री बीमा योजना का इसी के तहत मिलान कर दिया गया है। यह एक सामूहिक बीमा योजना है। इस योजना का लाभ 18 साल से 59 साल की आयु वाले कामगार ले सकते हैं, जिसके पास ग्रामीण इलाकों में रहने के लिए घर नहीं है, या फिर सरकार द्वारा चयनित 48 व्यवसाय के साथ जुड़े हों। योजना के लाभार्थी होने के लिए गरीबी रेखा के नीचे या फिर उससे थोड़ा ऊपर होना आवश्यक है। कामगार की मृत्यु या अपंगता पर इस योजना के तहत दी जाने वाली सहायता राशि 30 हजार रुपये से लेकर 75 हजार रुपये तक है। इस योजना के साथ सरकार ने एड-ऑन बेनिफिट की भी शुरुआत की है। इस योजना से जुड़े कामगारों के दो बच्चों को जो नवीं से 12वीं तक की पढ़ाई कर रहे हों, प्रत्येक माह 100 रुपये की छात्रवृति भी सरकार देती है। यह छात्रवृति छह महीने पर एक बार दी जाती है।

सामाजिक सुरक्षा योजना का नाम	लाभार्थी की संख्या
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना (31.12.2014 तक के आंकड़े)	20833673
राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम (2014 - 15)	175592
जननी सुरक्षा योजना (2013 -14)	10648487
राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना (2013 -14)	38515411
आम आदमी बीमा योजना (2013 -14)	50307950
शिल्पकारी विस्तृत कल्याण योजना (2013 -14)	16089

स्रोत: श्रम एंव रोजगार मंत्रालय, प्रेस विज्ञप्ति, 10 अगस्त, 2015

पत्रकार कल्याण योजना

पत्रकार कल्याण योजना 1 फरवरी, 2013 से पूरे देश में मान्यता प्राप्त पत्रकारों (रेडियो, टीवी, वेबसाइट और समाचार पत्र से जुड़े) के लिए लागू है। भारत सरकार के सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय को इस योजना को लागू करने की जिम्मेदारी सौंपी गई है। इसके तहत पत्रकार की मृत्यु हो जाने पर परिवार को 5 लाख रुपये तक की सहायता, स्थायी विकलांगता होने पर पत्रकार को 5 लाख रुपये तक की सहायता, गंभीर बीमारियों के इलाज के लिए 3 लाख रुपये तक की सहायता देने का प्रावधान है। सहायता राशि प्राप्त करने के इच्छुक परिवार या पत्रकार सदस्य को इसके लिए आवेदन फॉर्म भर कर महानिदेशक, सूचना एवं प्रसार, पत्र सूचना कार्यालय को भेजना होता है। इसके साथ ही मान्यता प्राप्त पत्रकारों (चाहे महिला हो या फिर पुरुष) सेंट्रल गवर्नमेंट हेल्थ सर्विसेज (सीजीएचएस) स्कीम के तहत बीमा योजना का लाभ भी उठा सकते हैं। इस स्कीम के तहत पत्रकार सालाना 1300 रुपये की रकम अदा कर पूरे परिवार का बीमा करवा सकता है। यह सेवा 2013 से लागू है। भारत सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त पत्रकारों के लिए केंद्र सरकार ने रेल यात्रा में छूट देने का प्रावधान भी किया है। इस योजना के तहत रेल यात्रा के दौरान जीवनसाथी और 18 वर्ष से कम आयु वाले बच्चों के साथ साल में दो बार यात्रा करने पर किराये में 50 फीसदी की छूट दी जाती है। यह सुविधा वर्ष 2011 के रेल बजट की घोषणा का हिस्सा था, जो 1 जून 2011 से लागू की गई।

ऊपर लिखी गई तीनों सुविधाएं भारत सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त पत्रकारों के लिए ही लागू हैं। महिला पत्रकारों के लिए सरकार की तरफ से कोई अलग योजना नहीं चलाई जा रही है।

इन योजनाओं के अलावा सरकार महिला कामगारों को बेहतर प्रशिक्षण और रोजगार के अवसर प्रदान करने के लिए संगठित क्षेत्र के महिलाओं के लिए अलग से संस्था भी बनाई है। उत्तर प्रदेश के शहर नोएडा में 1971 से चल रही इस संस्था का नाम है–महिलाओं के लिए राष्ट्रीय कौशल प्रशिक्षण संस्थान। इसमें दूसरे शहरों से आकर प्रशिक्षण प्राप्त करने वाली महिलाओं के लिए रहने की भी सुविधा है। यहां फैशन, शिक्षा, सिलाई, बुनाई, कढ़ाई के लिए कई तरह के कोर्स चलाए जाते हैं। इसी की तर्ज पर कई शहरों में इसी तरह के महिलाओं के लिए 10 रीजनल इंस्टीट्यूट भी खोले गए हैं।

इतना ही नहीं, सरकार अल्पसंख्यक महिलाओं के लिए भी अलग से योजनाएं चला रही है, ताकि वे भी देश के महिला श्रम बल का महत्वपूर्ण हिस्सा बन सकें। अल्पसंख्यक विभाग भारत सरकार द्वारा चलाई जा रही महिला समृद्धि योजना ऐसी ही एक योजना है। इस योजना के तहत कई व्यवसायों के लिए अल्पसंख्यक महिलाओं को प्रशिक्षण दिया जाता है। ऐसी ही एक योजना है सीखो और कमाओ। कौशल विकास मंत्रालय द्वारा चलाई जा रही इन योजनाओं में क्रमशः 30 और 33 फीसदी सीटें अल्पसंख्यक समुदाय की महिलाओं के लिए आरक्षित हैं।

एक ऐसी व्यवस्था भी है जिसमें महिलाएं खुद के लिए खुद से सामाजिक सुरक्षा बनाती हैं। इन्हें महिला स्वयं सहायता समूह के नाम से जाना जाता है। ये समूह द्वारा संचालित होती हैं, जिसमें आर्थिक रूप से गरीब महिलाएं एक दूसरे से जुड़ती हैं, उन्हें प्रशिक्षित भी करती हैं और फिर उनके काम का उचित दाम भी उन्हें दिलाती हैं। स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना, ऐसे ही समूहों को शुरू करने के लिए सरकार द्वारा चलाई जाती है।

निष्कर्ष

कुल मिलाकर देखें तो कामगार महिलाओं के लिए योजनाओं, संवैधानिक प्रावधानों और प्रशिक्षण की कमी नहीं है। कई योजनाएं केंद्र सरकार बनाती है, जिन पर हर राज्य में अलग-अलग कारणों से अमल नहीं होता है। कई बार कुछ साल पहले शुरू हुई योजनाओं का दूसरी योजनाओं में विलय हो जाता है और लोगों तक जानकारी नहीं पहुंचती है। उसी तरह से कई योजनाएं बंद हो जाती हैं और उसकी जगह नई योजनाएं शुरू कर दी जाती हैं, इसके बारे में गांव, पंचायत, ब्लॉक स्तर तक जानकारी नहीं पहुंचती है। इसलिए जरूरत है इन योजनाओं, संवैधानिक प्रावधानों और प्रशिक्षण देने वाली संस्थाओं को इसके लिए प्रचार-प्रसार करने की। साथ ही अलग से आंकड़े रखने की, ताकि यह पता लगाया जा सके कि हर योजना में महिलाओं को कितना फायदा मिला। भारत के श्रम बल में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने के लिए केंद्र और राज्य सरकारों के लिए

जरूरी है एक समय सीमा और उसी आधार पर अपना टारगेट सेट करने की। समय-समय पर पहले से चल रही योजनाओं के अध्ययन करने की भी जरूरत है, ताकि सरकार समझ सके कि किन योजनाओं में लाभार्थियों को दिक्कत कहां आ रही है और समय रहते योजनाओं में कहां जरूरी बदलाव करने की जरूरत है।

संदर्भ

इंडिया डेवलपमेंट अपडेट: अनलॉकिंग वुमन्स पोटेंशियल (मई 2017): विश्व बैंक, भारत 2017.http://documents1.worldbank.org/curated/en/107761495798437741/pdf/115297-WP-P146674-PUBLIC.pdf

केंद्रीय सांख्यिकी मंत्रालय (2016): वुमन एंड मेन इन इंडिया, भारत सरकार. https://www.mospi.gov.in/documents/213904/301563//Report_TUS_2019_0%20(1)1605596723155.pdf/625f95d9-d49d-cfe3-b5d6-ee13b893aac7

कैप्सॉस, एस. बॉर्मपॉला, इ और सिल्बरमैन, ए. (जुलाई 2014): वाई इज़ फ़ीमेल लेबर फ़ोर्स पार्टिसिपेशन डिक्लाइनिंग सो शार्पली इन इंडिया, अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन, जेनेवा https://www.ilo.org/wcmsp5/groups/public/---dgreports/---inst/documents/publication/wcms_250977.pdf

ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, वेबसाइट.

https://rural.nic.in/hi/press-release/

टीमलीज़ (जून 2018): द इम्पैक्ट ऑफ़ मैटर्निटी बेनिफ़िट्स ऑन बिज़नेस एंड एम्प्लॉयमेंट, बेंगलुरु. https://www.teamleasegroup.com/sites/default/files/Press%20Release_Maternity%20Benefit%20Bill_TeamLease.pdf

नीति आयोग. (2017). एक्शन प्लान : टुवर्ड्स बिल्डिंग मोर इनक्लूसिव सोसाइटी, भारत सरकार. https://www.niti.gov.in/niti/writereaddata/files/coop/22.pdf

पत्र-सूचना कार्यालय, भारत सरकार, वेबसाइट. https://pib.gov.in/AllMediafacilitation.aspx?MenuId=16

पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस मंत्रालय (मार्च 2019): भारत सरकार.

https://pib.gov.in/PressReleaseIframePage.aspx-?PRID=1568243

महारजिस्ट्रार एवं जनगणना आयुक्त कार्यालय, भारत जनगणना (2011): गृह मंत्रालय, भारत सरकार. https://censusindia.gov.in/2011census/population_enumeration.html

महिला एवं बाल कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, वेबसाइट. https://wcd.nic.in/hi/act/2314

राष्ट्रीय सांख्यिकीय कार्यालय (दिसंबर 2019): भारत में समय का उपयोग 2019, भारत सरकार https://www.mospi.gov.in/documents/213904/301563//Report_TUS_2019_0%20(1)1605596723155.pdf/625f95d9-d49d-cfe3-b5d6-ee13b893aac7

राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन, भारत सरकार, वेबसाइट. https://nhm.gov.in/images/pdf/programmes/jsy/guidelines/jsy_guidelines_2006.pdf

वस्त्र मंत्रालय, भारत सरकार, वेबसाइट. https://pib.gov.in/Pressreleaseshare.aspx?PRID=1568318

वित्त मंत्रालय, भारत सरकार, वेबसाइट. https://archive.pib.gov.in/newsite/hindirelease.aspx?relid=87479

सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार, वेबसाइट. http://socialjustice.nic.in/SchemeList/index?mid=24541

संचार माध्यम | खंड 32(2): 95-98, जुलाई-दिसंबर 2020
आईएसएसएन: 2321-2608

राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों में शिक्षा संचार तकनीक की परिकल्पना और प्रयोग : एक अध्ययन

डॉ. बिजेंद्र कुमार[1]

सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र में शिक्षा में सूचना संचार तकनीक के इस्तेमाल के विविध आयामों को राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों के संदर्भ में विश्लेषित किया गया है। तकनीक के बढ़ते इस्तेमाल से शिक्षा में घटित परिवर्तनों को भी समझने का प्रयास किया गया है। भारत जैसे बहुविध, बहुरंगी और बहुआयामी समाज में शिक्षण पद्धति में सूचना संचार तकनीक की उपयोगिता और सार्थकता कोविड-19 वैश्विक महामारी के समय स्वत: सिद्ध है। शिक्षा नीति देश को नई दिशा प्रदान करती है। देश की जरूरतों के मद्देनजर कोविड -19 में ऑनलाइन शिक्षा की अपरिहार्यता और उसमें हुए नए प्रयोगों तथा उसकी पहुंच पर भी इस लेख में विचार किया गया है। भारत की प्रथम शिक्षा नीति में प्रमुख चुनौती सभी तक शिक्षा की पहुंच और उसे कौशल से जोड़ना था। 1986 में आई दूसरी शिक्षा नीति के समय तक सूचना संचार तकनीक के रूप में रेडियो और टी.वी. के उपयोग को प्रोत्साहित किया गया। 2020 की शिक्षा नीति ऑनलाइन और ऑफलाइन दोनों के मिले–जुले रूप की वकालत करती दिखाई देती है। कोरोना काल की आपदा ने ऑनलाइन शिक्षा की उपयोगिता को सिद्ध कर दिया है कि शिक्षा नीति में सूचना संचार तकनीक का प्रयोग एक सही कदम था। भारत जैसे देश में हालांकि डिजीटल विभाजन भी मौजूद है, लेकिन यह भी सच है कि शिक्षा में सूचना संचार तकनीक के इस्तेमाल से देश शेष विश्व के साथ कदम मिलाकर चल रहा है और इसने विशाल नागरिक आबादी के जीवन को परिवर्तित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यही कारण है कि शिक्षा में सूचना संचार तकनीक का दिनोंदिन प्रयोग बढ़ रहा है।

संकेत शब्द : शिक्षा सुधार, सूचना संचार तकनीक, कम्प्यूटर आधारित शिक्षण पद्धति, वैश्वीकरण, राष्ट्रीय शिक्षा नीति

प्रस्तावना

‘राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों में शिक्षा संचार तकनीक की परिकल्पना और प्रयोग: एक अध्ययन’ शीर्षक के अंतर्गत किए इस शोध का उद्देश्य भारत की अभी तक की राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों के अंतर्गत शिक्षा में तकनीक की परिकल्पना, प्रयोग और उसके विविध आयामों को आधार बनाकर विश्लेषण करना है। इसकी आधार सामग्री के रूप में देश में अभी तक की तीन शिक्षा नीतियों को केंद्र में रखा गया है। इन नीतियों के संदर्भ में यह विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है कि किस रूप में शिक्षण पद्धति में तकनीक का प्रयोग निरंतर बढ़ रहा है। शिक्षा में किस समय क्या तकनीक किन जरूरतों की पूर्ति के लिए अपनाई गई? उस तकनीक से शिक्षा का स्वरूप कुछ परिवर्तित हुआ या नहीं? देश में वैश्वीकरण की प्रक्रिया अपनाने के बाद से हुए आर्थिक, तकनीकी, सामाजिक, सांस्कृतिक परिवर्तनों से शिक्षा का क्षेत्र भी अछूता नहीं रहा है। शिक्षा में संचार तकनीक के प्रवेश ने शिक्षण पद्धति की राह को आसान, सहज, सुलभ और व्यापक बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। शिक्षण पद्धति में तकनीक का प्रयोग आज अपरिहार्य अंग बन चुका है, क्योंकि भारत भी तेजी से बदलती तकनीकी दुनिया में पीछे नहीं रहना चाहता है। शिक्षा में तकनीक के प्रयोग से शिक्षण पद्धति के नए आयाम खुले हैं। विश्व की प्रगति और विकास में शिक्षा के साथ तकनीक के समन्वय ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। भारत भी अपनी शिक्षा नीतियों के माध्यम से निरंतर शिक्षा में तकनीकी उपकरणों का समयानुकूल प्रयोग करता रहा है। अभी तक आई तीनों शिक्षा नीतियां - 1968, 1986 और 2020 इसका प्रमाण हैं।

शोध-प्रविधि

प्रस्तुत शोध पत्र में विषयवस्तु विश्लेषण शोध पद्धति का उपयोग किया गया है, जिसमें प्रमुख रूप से आजादी के बाद देश में बनी तीन शिक्षा नीतियों की आधारभूत सामग्री को केंद्र में रखकर अध्ययन किया गया है।

शिक्षा, समाज और सरकार

शिक्षा मानव जीवन और सामाजिक जीवन का अहम हिस्सा है। आजादी से पूर्व समाज के एक बहुत सीमित हिस्से तक ही आधुनिक शिक्षा की पहुंच थी, लेकिन आजादी के बाद भारतीय संविधान में शिक्षा के दरवाजे सभी के लिए खोलने का प्रावधान किया गया। संविधान के चौथे भाग में नीति-निर्देशक सिद्धांतों के तहत प्राथमिक स्तर पर सभी के लिए नि:शुल्क शिक्षा की व्यवस्था की गई। आजादी के बाद देश में शिक्षा सुधार और शिक्षा व्यवस्था को देश की जरूरतों के अनुकूल बनाने के प्रयास आरंभ किए गए। ये प्रयास प्राथमिक और उच्च शिक्षा सभी स्तर पर हुए। 1948 में डॉ. राधाकृष्णन की अध्यक्षता में विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग बना। माध्यमिक शिक्षा के लिए डा. ए. लक्ष्मण स्वामी मुदलियार की अध्यक्षता में माध्यमिक शिक्षा आयोग बनाया गया। यह वह समय था जब देश की लगभग 90% आबादी निरक्षर थी। इस व्यापक आबादी तक गुणवत्तापूर्ण और जीविकापार्जन युक्त शिक्षा प्रणाली को पहुंचाना एक बड़ी चुनौती थी।

आजादी के बाद शिक्षा अभियान और प्रथम शिक्षा नीति

आजादी के बाद सरकार ने नए स्कूलों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों की स्थापना की। शिक्षा से जुड़े कई अभियान, कार्यक्रम और नीतियां

[1]एसोसिएट प्रोफेसर, भीमराव अम्बेडकर कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली। ईमेल : bijender.du@gmail.com

बनाई गईं। नए-नए पाठ्यक्रम शुरू किए गए, लेकिन जनसंख्या और अशिक्षा इतनी बड़ी चुनौती थी कि उसके लिए व्यापक स्तर पर संसाधनों की आवश्यकता थी। व्यापक गरीब जनसमूह को शिक्षा से जोड़ना एक चुनौतीपूर्ण कार्य था। एक दूसरी चुनौती शिक्षा को कौशल से जोड़ने की भी थी, ताकि बेकारी की समस्या को नियंत्रित किया जा सके। इन सब सवालों और चुनौतियों को समझने और उनका निराकरण करने के लिए सरकार ने समय-समय पर राष्ट्रीय शिक्षा नीति बनाई। देश में पहली शिक्षा नीति 1968 में बनी। डॉ. दौलत सिंह कोठारी की अध्यक्षता में बनी यह शिक्षा नीति शिक्षा के क्षेत्र में पहला सुचिंतित प्रयास थी। डॉ. कोठारी ने शिक्षा नीति में अनेक सुधारों की संस्तुति की। इन सुधारों में 25% माध्यमिक स्कूलों को व्यावसायिक स्कूलों में परिवर्तन करना शामिल था। इस शिक्षा नीति में कहा गया कि राष्ट्रीय आंदोलन में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। गांधीजी ने भी कहा था कि शिक्षा को जीवन के मूलभूत कार्यों से जुड़ना चाहिए। किसी भी देश की राष्ट्रीय एकता, अखंडता, सुरक्षा और विकास में शिक्षा की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका होती है।[1]

तीसरी पंचवर्षीय योजना और प्रथम शिक्षा नीति

तीसरी पंचवर्षीय योजना में विज्ञान, तकनीक और शोध को प्रोत्साहित करने की बात कही गई थी। यह तभी संभव था जब शिक्षा को नई तकनीक से जोड़ा जाए। डॉ. कोठारी की अध्यक्षता में देश की इस जरूरत को समझा गया। इसलिए इस प्रथम शिक्षा नीति में कहा गया कि ऐसे युवाओं का निर्माण शिक्षा नीति के माध्यम से हो, जो देश सेवा विकास को समर्पित हों। तभी राष्ट्रीय प्रगति और राष्ट्रीय एकता को मजबूती मिलेगी। इसके लिए शिक्षा नीति में तकनीकी शिक्षा और व्यावहारिक प्रशिक्षण को शिक्षा का अंग बनाने पर जोर दिया गया, ताकि विकासशील अर्थतंत्र की जरूरतों और रोजगार के अवसरों के लिए तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा महत्वपूर्ण भूमिका निभा सके।[2] देश में पहली बार शिक्षा नीति में व्यावसायिक पक्ष को महत्व दिया गया।

शीत युद्ध का दौर और शिक्षा

आजादी के दूसरे दशक में शिक्षा के ढांचे को मजबूत करने की दिशा में यह एक महत्वपूर्ण प्रयास था। इस समय शीत युद्ध के चलते दुनिया अमेरिका और सोवियत खेमे में बंट गई थी और हथियारों की होड़ शुरू हो गई थी। भारत में टेलीविजन का प्रवेश हो चुका था। सामाजिक कल्याण और जागरूकता में रेडियो और टेलीविजन का इस्तेमाल भी निरंतर बढ़ता जा रहा था। शिक्षा के क्षेत्र में भी इनके प्रयोग की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी थी। 1986 तक आते-आते यह साफ हो चुका था कि अब शिक्षा और तकनीक को बहुत अधिक समय तक अलग कर नहीं रखा जा सकता। देश और दुनिया में रेडियो और टेलीविजन की पहुंच का दायरा बढ़ता जा रहा था। पश्चिमी देशों में कंप्यूटर बड़े पैमाने पर प्रयोग में लाया जाने लगा था। भारत में भी रक्षा, अनुसंधान, कॉर्पोरेट और सरकारी स्तर पर इसका इस्तेमाल होने लगा था। वैश्विक स्तर पर शिक्षा को तकनीक से जोड़ने की पहल होने लगी थी। भारत भी इससे बहुत अछूता नहीं रह सकता था।

दूसरी शिक्षा नीति

1986 की शिक्षा नीति में शिक्षा को तकनीक से जोड़ने की इस चिंता को व्यक्त किया गया। देश में पहली बार मीडिया और शैक्षणिक तकनीक को लेकर एक टास्क फोर्स बनाया गया। इस टास्क फोर्स का काम राष्ट्रीय शिक्षा नीति में जो विषय निर्धारित किए गए उनका समकालीन संदर्भ में निरीक्षण-परीक्षण करके उनके समक्ष आने वाली जटिलताओं और चुनौतियों का विवेचन करना था तथा इसके लागू करने के लिए आवश्यक कार्यक्रम बनाना था।

शिक्षा संचार में तकनीकी उपकरण

शिक्षा संचार को सहज बनाने और शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार के लिए कई तकनीकी उपकरणों का इस्तेमाल किया जाने लगा। शिक्षाप्रद फिल्मों के लिए फिल्म पुस्तकालय तथा ऑडियो विजुअल यूनिट बनाना, शैक्षणिक तकनीकी प्रकोष्ठ का निर्माण, एनसीईआरटी में एजुकेशनल टेक्नोलॉजीकल सेल का गठन, आकाशवाणी की शैक्षणिक कार्यक्रम निर्माण यूनिट तथा प्राइमरी और सेकेंडरी स्कूलों के लिए प्रसारण, माध्यमिक स्कूलों के लिए कार्यक्रमों का प्रसारण, सेटेलाइट के माध्यम से दूरदर्शन पर स्थानीय भाषाओं में कार्यक्रम, विश्वविद्यालय और कॉलेज विद्यार्थियों के सामान्य ज्ञानवर्धन के लिए कार्यक्रम, विश्वविद्यालय में ऑडियो विजुअल रिसर्च सेंटर की स्थापना प्रमुख थे।

1986 की शिक्षा नीति में कहा गया कि मानव सभ्यता के उदय के साथ ही शिक्षा की पहुंच और क्षेत्र का विस्तार हो रहा है। प्रत्येक देश में अपने समय की चुनौतियों और अपनी अद्वितीय सांस्कृतिक पहचान को प्रोत्साहित करने के लिए अपनी शिक्षा व्यवस्था विकसित की गई है। इतिहास में कई क्षण ऐसे आते हैं जब बरसों पुरानी प्रक्रिया को नई दिशा दी जाती है, वह क्षण आ गया है। हमारा देश आर्थिक और तकनीकी लिहाज से उस मुकाम पर पहुंच गया है जहां से हम अब तक के संचित साधनों का इस्तेमाल करते हुए हर वर्ग को फायदा पहुंचाने का प्रबल प्रयास करें। शिक्षा उस लक्ष्य तक पहुंचने का एक प्रमुख साधन है।[3]

रेडियो, टेलीविजन और वीसीआर का दौर

1986 में आई दूसरी शिक्षा नीति में पहली बार शिक्षा के क्षेत्र में आधुनिक तकनीक और उपकरणों के इस्तेमाल की जरूरत को समझा गया। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में भी शिक्षण के नए तरीकों के इस्तेमाल पर जोर दिया गया। रेडियो और टेलीविजन के साथ इलेक्ट्रॉनिक के द्वारा शिक्षा को अधिक सहज और सरल बनाए जाने की प्रक्रिया की बात की गई। यह वह समय था जब भारत में वीडियो का आगमन हुआ। मनोरंजन के साथ-साथ स्कूलों में भी वीसीआर देने का प्रावधान किया गया। कुछ विषय चयनित किए गए जिनमें इलेक्ट्रॉनिक एंड टेक्नोलॉजी डेवलपमेंट कॉरपोरेशन को सॉफ्टवेयर विकसित करने के लिए कहा गया।

कम्प्यूटर का शिक्षा संचार में इस्तेमाल

इसी समय अनेक विश्वविद्यालयों में कंप्यूटर आधारित कार्यक्रमों की शुरुआत हुई। कई आईआईटी में कंप्यूटर शोध और उपाधि कार्यक्रम आरंभ किए गए। अनेक विद्यालयों में भी कंप्यूटर साक्षरता और अध्ययन

की शुरुआत हुई। सातवीं पंचवर्षीय योजना में शिक्षा में तकनीक के प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए टीवी और रेडियो ट्रांसमिशन पर जोर दिया गया। 1995 तक सभी स्कूलों में टीवी उपलब्ध कराने का लक्ष्य रखा गया। सातवीं योजना में रेडियो रिसीवर उपलब्ध कराने की बात भी की गई। 1995 तक व्यावसायिक व अन्य पाठयक्रमों में कंप्यूटर शिक्षण मॉड्यूल को शामिल करने का लक्ष्य भी रखा गया। सातवीं योजना में उच्च माध्यमिक स्तर पर कंप्यूटर साइंस का इलेक्ट्रिक पाठ्यक्रम आरंभ हुआ। विश्वविद्यालय और कॉलेज स्तर पर रेडियो स्टेशन और शैक्षणिक चैनल उपलब्ध कराने की बात भी की गई। शिक्षा नीति के माध्यम से पहली बार स्कूली स्तर पर कंप्यूटर साक्षरता देने की बात कही गई। कंप्यूटर के बढ़ते प्रयोग और इंटरनेट के आगमन से शिक्षा संचार के नए आयाम खुल गए। वर्ष 1992 में पहली बार शिक्षा में एजुकेशनल टेक्नोलॉजी के प्रयोग की आवश्यकता महसूस की गई।

वैश्वीकरण, इंटरनेट, संचार क्रांति और कम्प्यूटर आधारित शिक्षण पद्धति

1990 के बाद का समय तकनीकी दृष्टि से बहुत ही क्रांतिकारी माना जाता है। इंटरनेट, संचार क्रांति और सेटेलाइट चैनलों ने भारतीय शिक्षा व्यवस्था को भी काफी हद तक प्रभावित किया। विनिता कोहली खांडेकर के अनुसार 1995 में इंटरनेट की सुविधा भारत के कुछ सीमित शहरों में थी और सब कुछ सरकार के हाथों में था। केबल टी. वी. की तरह उद्यमियों ने इस दुनिया में भारत के पहले कदम की अगुवाई की (खांडेकर, 2013)। इंटरनेट और कंप्यूटर के बढ़ते इस्तेमाल ने शिक्षा के क्षेत्र को तकनीक के प्रयोग करने के लिए बाध्य-सा कर दिया। इसी सदी के अंतिम दशक में स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालय को तकनीक से जोड़ने के प्रयास तेज होने लगे। विकसित गुणवत्ता के कंप्यूटर और इंटरनेट ने शिक्षा जगत में इनफार्मेशन कम्युनिकेशन टेक्नोलॉजी को अनिवार्य बना दिया। इंफॉरमेशन कम्युनिकेशन टेक्नोलॉजी के हार्डवेयर और सॉफ्टवेयर के साथ इंटरएक्टिव डिजिटल सामग्री, इंटरनेट सेटेलाइट उपकरण, रेडियो, टेलीविजन, वेब आधारित सामग्री इंटरएक्टिव प्लेटफॉर्म धीरे-धीरे शिक्षा जगत में महत्वपूर्ण माने जाने लगे। इक्कसवीं शताब्दी की शुरुआत में ही विश्व बैंक ने शिक्षा के क्षेत्र में इनफॉरमेशन कम्युनिकेशन टेक्नोलॉजी के महत्व को रेखांकित करते हुए कहा कि इनफार्मेशन कम्युनिकेशन टेक्नोलॉजी शिक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। यह समय था जब भारत सरकार ने शिक्षा में तकनीकी जरूरतों को समझते हुए राष्ट्रीय ज्ञान आयोग का गठन किया।

राष्ट्रीय ज्ञान आयोग की भूमिका

राष्ट्रीय ज्ञान आयोग ने शिक्षा में तकनीकी जरूरतों और चुनौतियों को लेकर कई सिफारिशें कीं। सरकार को दी गई इन सिफारिशों में शिक्षा को विश्व स्तर पर तकनीक से जोड़ने की बात की गई। राष्ट्रीय ज्ञान आयोग की अन्य सिफारिशों में राष्ट्रीय नॉलेज नेटवर्क पोर्टल बनाना, ओपन शिक्षा स्रोतों का विकास तथा ऑनलाइन डिस्टेंस एजुकेशन प्रमुख थीं। राष्ट्रीय नॉलेज नेटवर्क के द्वारा सभी कॉलेजों और विश्वविद्यालयों को आपस में जोड़ने तथा उनमें ऑनलाइन लर्निंग सामग्री का प्रकाशन और सेंटर ऑफ एक्सीलेंस का निर्माण करना था। विद्यालय के स्तर पर भी शिक्षा को तकनीक से जोड़ने के प्रयास तेज होने लगे थे। स्कूलों में कंप्यूटर और इंटरनेट सुविधा देने की प्रक्रिया को तेज किया गया। स्कूल में स्मार्ट क्लास, स्मार्ट स्कूल, ई कंटेंट का निर्माण, शिक्षकों की तकनीकी ट्रेनिंग तथा कंप्यूटर आधारित शिक्षा को भी बढ़ावा देने पर जोर दिया जाने लगा। 2008 की इनफार्मेशन कम्युनिकेशन टेक्नोलॉजी संबंधी राष्ट्रीय नीति में कहा गया कि तकनीक के कन्वर्जेंस को देखते हुए आवश्यक हो गया है कि देश में स्कूली शिक्षा सुधार के लिए सूचना व संचार तकनीकों का प्रयोग किया जाए। इसमें गुणवत्तापूर्ण स्थानीय भाषा में ई-कंटेंट का निर्माण, शिक्षकों को इंफोर्मेशन कम्युनिकेशन टेक्नॉलाजी की ट्रेनिंग, प्रोफेशनल नेटवर्क रिसोर्स शेयरिंग आदि की जरूरत भी बताई गई। राष्ट्रीय ज्ञान आयोग ने शिक्षा को तकनीक से जोड़ने के लिए देशभर में वर्चुअल कक्षाएं, रिसर्च शेयरिंग वर्चुअल पुस्तकालय के निर्माण और कम्प्यूटर स्रोतों को साझा करने पर जोर दिया। राष्ट्रीय ज्ञान आयोग ने कहा कि अगर हमें नॉलेज सोसायटी बनानी है तो हमें शिक्षा में तकनीक की भूमिका और इसको समाज के सबसे निचले तबके से जोड़ना होगा। 2009 में एनएमईआईसीटी नेशनल मिशन के तहत डिजिटल असमानता को खत्म कर प्रत्येक भारतीय तक डिजिटल सुविधाएं पहुंचाने का लक्ष्य रखा गया। इसके तहत साक्षात पोर्टल बनाया गया। वर्ष 2015 में केंद्र सरकार ने डिजिटल अभियान आरम्भ किया जिसमें डिजिटल साक्षरता और मोबाइल गवर्नेंस पर जोर दिया गया। अजय कुमार लिखते हैं कि डिजिटल इंडिया के तहत राष्ट्रीय सूचना ढांचे का प्रावधान है। यह सूचना ढांचा नेटवर्क प्लेटफार्म उपलब्ध कराएगा, जहां समन्वित रूप से सभी सरकारी विभाग स्पीड कनेक्टिविटी के साथ पंचायतों से जुड़ेंगे (कुमार, 2018)।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020

2020 में आई राष्ट्रीय शिक्षा नीति कई मायनों में महत्वपूर्ण है। यह शिक्षा नीति पूर्ण मानव क्षमता प्राप्ति का लक्ष्य सामने रखकर बनाई गई है। इस नीति में न्यायपूर्ण समावेशी समाज के निर्माण का आधार शिक्षा को बताया गया है। वैज्ञानिक प्रगति, राष्ट्रीय एकता, अखंडता, सांस्कृतिक संरक्षण और चेतना निर्माण का आधार भी शिक्षा ही है। शिक्षा नीति वैश्विक उच्च गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की बात करती है। इसमें कहा गया है कि भारत युवा आबादी का देश है और दुनिया में तेजी से विश्वव्यापी बदलाव हो रहे हैं। इस युवा वर्ग को विश्व के बदलाव से जोड़े रखने के लिए शिक्षा में तकनीकी प्रयोग और प्रक्रिया का अपनाना आवश्यक है।[4] मशीन लर्निंग, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, ब्लॉकचेन क्लाउड कंप्यूटिंग जैसी टेक्नोलॉजी ने वैश्विक जीवन शैली को प्रभावित किया है। शिक्षा भी उससे अछूती नहीं रह सकती। शिक्षा में भी तकनीक की भूमिका अत्यंत अनिवार्य हो गई है। स्मार्ट बोर्ड से लेकर, व्यापक शिक्षण सॉफ्टवेयर और विभिन्न तकनीकी टूल तथा ऑनलाइन शिक्षण एप इस बात के प्रमाण हैं कि शिक्षा की दुनिया बहुत तेजी से तकनीक आश्रित हो रही है। इस शिक्षा नीति में नेशनल एजुकेशनल टेक्नोलॉजी फोरम के गठन पर जोर दिया है, जिसे तकनीक आधारित शिक्षा प्रदान करने की कई जिम्मेदारियां दी गई है जिनमें शिक्षण, प्रशिक्षण, शोध और आविष्कार शामिल हैं। एनसीईआरटी, सीबीएसई, सीआईटी, एनआईओएस आदि के द्वारा दीक्षा प्लेटफार्म के लिए ई-कंटेंट के निर्माण की बात की गई है। दीक्षा और स्वयं जैसे प्लेटफार्म को शिक्षण संस्थानों से जोड़ना, उच्च शिक्षण संस्थानों को नेशनल रिसर्च फाउंडेशन से

जोड़ना, ऑनलाइन पाठ्यक्रमों का आरंभ, विभिन्न परंपरागत पाठ्यक्रम और ऑनलाइन का मिश्रण प्रमुख हैं।

शिक्षा में तकनीक के इस्तेमाल के लिए नई शिक्षा नीति की अन्य प्रमुख सिफारिशें इस प्रकार हैं:

1. ऑनलाइन शिक्षा के लिए पायलट स्टडी श्रृंखला की शुरुआत जो एनईटीएफ, एनआईओएस, आईजीएनओयू, आईआईटी और एनआईटी आदि के द्वारा की जाएगी
2. डिजिटल आधारभूत संरचना में निवेश
3. ऑनलाइन शिक्षण प्लेटफार्म और उपकरणों का विस्तार
4. ई-कंटेंट का निर्माण, संग्रह और प्रसार
5. डिजिटल खाई को पाटना
6. वर्चुअल लैब के निर्माण पर जोर
7. ऑनलाइन कंटेंट के निर्माण हेतु शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण और प्रोत्साहन
8. ऑनलाइन मूल्यांकन और परीक्षा
9. ऑफलाइन और ऑनलाइन का मिश्रण।[5]

शिक्षा के क्षेत्र में बढ़ते तकनीकी इस्तेमाल के विविध रूप हैं, जिनको स्वयं, शोधगंगा, शोधसिंधु, दीक्षा, स्वयंप्रभा वर्चुअल लैब, ई-पाठशाला, एनआरओआरओ, सीईसी, युक्ति, पढ़े भारत ऑनलाइन अभियान आदि में देखा जा सकता है। कोरोना महामारी में लॉकडाउन के बाद देश में शिक्षा के क्षेत्र में आने वाली समस्याओं और चुनौतियों से निपटने के लिए भारत सरकार ने ऑनलाइन अभियान आरंभ किया गया, जिसमें स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालय के बंद होने की स्थिति में कैसे ऑनलाइन अध्ययन-अध्यापन किया जाए। महामारी के दौर में लॉकडाउन में ई-शिक्षा ही एकमात्र विकल्प था। केंद्र और राज्य सरकारों ने अपने-अपने स्तर पर विद्यार्थियों के हितों को ध्यान में रखकर कार्य किया। एनसीईआरटी ने ईबुक, एनसीईआरटी स्वयं पोर्टल बनाया। आईजीएनओयू ने भी अपने एफएम रेडियो चैनल और टीवी चैनल ज्ञानवाणी के माध्यम से, बिहार सरकार ने युनेस्को के सहयोग से उन्नयन बिहार एप, मेरा मोबाइल मेरा विद्यालय अभियान लांच किया। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने ऑनलाइन शिक्षा से जुड़े कई लिंक उपलब्ध कराए। इसमें यूजीपीजी मूक, सीईसी, यूजीसी यूट्यूब चैनल, ईपीजी पाठशाला ई-कंटेंट, कोर्सवेयर फॉर यू, शोधगंगा, ई शोधसिंधु, स्वयं, विद्वान, नेशनल डिजिटल लाइब्रेरी और स्वयं प्रभा प्रमुख हैं। कोरोना महामारी और लोकडाउन के चलते ऑनलाइन एजुकेशन क्षेत्र में अनेक निजी कंपनियों कंपनी ने शिक्षण संचार से जुड़े अनेक ऑनलाइन प्लेट्फोर्म और सॉफ्टवेयर तथा एप्प बनाए, जिन्होंने करोना काल में शिक्षा, शिक्षक और विधार्थी को वर्चुअल रुप में जोड़े रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसमें माइक्रोसॉफ्ट और गूगल और जूम के साथ अनेक भारतीय कम्पनियों ने भी उल्लेखनीय कार्य किया है। शिक्षा में नए माध्यमों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। बालेंदु दाधीच के अनुसार नए माध्यमों की अपनी खासियतें हैं, जैसे – संवादात्मकता, कंटेंट को परस्पर जोडकर देखने की क्षमता, समय और स्थान से परे जाने की क्षमता विभिन्न पीढ़ियों को एक साथ लाने की क्षमता और न जाने क्या-क्या (दाधीच, 2018)।

शोध निष्कर्ष

भारतीय शिक्षा को तकनीक सम्पन्न बनाने में राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों ने एक रोडमैप तैयार करने का काम किया है। अभी तक तीनों शिक्षा नीतियां रोजगार और जीविका से जोड़ने के लिए शिक्षा में तकनीकी इस्तेमाल पर जोर देती प्रतीत होती हैं। प्रथम शिक्षा नीति शिक्षा और कौशल दोनों की प्रासंगिकता सिद्ध करती हुई शिक्षा को कौशल से जोड़ने की बात करती है। वर्ष 1986 की शिक्षा नीति इस कौशल के सवाल को तकनीक से जोड़कर उसमें तकनीकी उपकरणों के प्रयोग को प्रोत्साहित करती है। 2020 में आई शिक्षा नीति अधिक विस्तार और प्रमुखता से शिक्षा में तकनीक के प्रयोग की वकालत करती दिखाई देती है। इसका कारण है कि आज तकनीक हमारे जीवन के हर क्षेत्र में महत्वपूर्ण दखल दे चुकी है। ऐसे में शिक्षा का क्षेत्र तकनीक से अछूता नहीं रह सकता। स्पष्ट है कि आज शिक्षा ऑनलाइन और ऑफलाइन यानी परम्परागत शिक्षण पद्धति का मिला-जुला रूप बनने की दिशा में आगे बढने लगी है। अनेक युनिवर्सिटी अपने स्तर पर नए माध्यम के पाठ्यक्रमों का अध्ययन और शोध कार्य भी आरम्भ कर चुकी हैं। राजदान (2008) लिखते हैं कि जिस तरह न्यू मीडिया में एप्लिकेशन की बाढ़-सी आई हुई है उसी तरह अनेक युनिवर्सिटी इससे जुडे पाठयक्रमों का संचालन करने लगी हैं। स्पष्ट है कि शिक्षा में तकनीक का प्रयोग आज के समय की जरूरत भी है और भारत जैसे देश में कई अनावश्यक बुराइयों से निजात पाने का एक साधन भी है। राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों ने समयानुकूल शिक्षा में तकनीक के प्रयोग की आवश्यकता को न केवल समझा है, बल्कि आगामी समय की जरूरतों को ध्यान में रखकर शिक्षा में तकनीकी आयामों का प्रावधान भी किया है।

संदर्भ

कुमार, ए. (2018). *डिजिटल इंडिया.* ज्ञानगंगा प्रकाशन

खांडेकर, वी. के. (2013). *भारतीय मीडिया व्यवसाय.* नई दिल्ली: सेज प्रकाशन

दाधीच, बी. एस. (सितम्बर, 2018). रचना के फिसलते मौके. *हंस पत्रिका,* पृ. 37

राजदान, ए. (2008). न्यू मीडिया. दिल्ली: विकास पब्लिशिंग प्राइवेट लिमिटेड

नोट

1 www.education.gov.in–national policy on education 1968
2. www.education.gov.in–national policy on education1968
3. www.education.gov.in–national policy on education1986
4. www.education.gov.in –national policy on education 2020
5. www.education.gov.in –national policy on education 2020

आईआईएमसी गतिविधियां
जुलाई–दिसंबर 2020

प्रो. संजय द्विवेदी आईआईएमसी के नए महानिदेशक

वरिष्ठ पत्रकार एवं लेखक प्रो. संजय द्विवेदी ने 13 जुलाई, 2020 को भारतीय जन संचार संस्थान के नए महानिदेशक का कार्यभार ग्रहण किया। पत्रकारिता में उनका 25 से भी अधिक वर्षों का अनुभव है। दैनिक भास्कर, स्वदेश, नव भारत, हरिभूमि (भोपाल, मुंबई, रायपुर और बिलासपुर) आदि हिंदी समाचार पत्रों का उन्होंने समाचार संपादक और स्थानीय संपादक के रूप में नेतृत्व किया। वे मुंबई से संचालित infomedia.com से भी जुड़े रहे। छत्तीसगढ़ के प्रथम सेटेलाइट चैनल 'जी 24 घंटे' में उन्होंने एंकर एवं इनपुट संपादक के रूप में कार्य किया। राजनीति और मीडिया पर उनके लगभग 3000 लेख राष्ट्रीय समाचार पत्रों एवं पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। मीडिया एजुकेशन में उनका 12 वर्ष से भी अधिक का अनुभव है। वे कुशाभाऊ ठाकरे पत्रकारिता एवं जन संचार विश्वविद्यालय, रायपुर, के संस्थापक विभागाध्यक्ष भी रहे हैं। उन्होंने भोपाल स्थित माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय में पत्रकारिता विभाग के विभागाध्यक्ष, विश्वविद्यालय के कुलसचिव एवं कुलपति के रूप में भी अपनी सेवाएं दी हैं।

स्वच्छता के लिए आईआईएमसी को प्रथम पुरस्कार

भारतीय जन संचार संस्थान को स्वच्छता पखवाड़ा 2020 के लिए प्रथम पुरस्कार से सम्मानित किया गया। भारत सरकार द्वारा प्रारंभ वार्षिक स्वच्छता अभियान के तहत केंद्रीय सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय ने अपने विभिन्न विभागों को उत्कृष्ट स्वच्छता हेतु सम्मानित किया। सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय के सचिव श्री अमित खरे ने भारतीय जन संचार संस्थान के महानिदेशक प्रो. संजय द्विवेदी को यह पुरस्कार प्रदान किया। भारतीय जन संचार संस्थान के पूर्व महानिदेशक श्री कुलदीप सिंह धतवालिया भी इस अवसर पर उपस्थित थे। स्वच्छता हेतु द्वितीय पुरस्कार दूरदर्शन न्यूज और तृतीय पुरस्कार पत्र सूचना कार्यालय को प्रदान किया गया।

भारतीय भाषाओं में अंतर–संवाद विषय पर वेबिनार

भारतीय जन संचार संस्थान में 14 सितंबर 2020 को हिंदी पखवाड़े के अवसर पर 'भारतीय भाषाओं में अंतर–संवाद' विषय पर वेबिनार का आयोजन किया गया। इस अवसर पर अपने विचार व्यक्त करते हुए वरिष्ठ पत्रकार एवं माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता विश्वविद्यालय, भोपाल के पूर्व कुलपति श्री अच्युतानंद मिश्र ने कहा कि "भाषा का संबंध इतिहास, संस्कृत और परंपराओं से है। भारतीय भाषाओं में अंतर–संवाद की परंपरा पुरानी है और ऐसा सैकड़ों वर्षों से होता आ रहा है, यह उस दौर में भी हो रहा था, जब वर्तमान समय में प्रचलित भाषाएं अपने बेहद मूल रूप में थीं। श्रीमद्भगवत गीता में समाहित श्री कृष्ण का संदेश दुनिया के कोने–कोने में केवल अनेक भाषाओं में हुए उसके अनुवाद की बदौलत ही पहुंचा। उन दिनों अंतर–संवाद की भाषा संस्कृत थी, तो अब यह जिम्मेदारी हिंदी की है। उन्होंने कहा कि जब डॉ. राम मनोहर लोहिया ने 'अंग्रेजी हटाओ' अभियान शुरू किया, तो उसका आशय 'हिंदी लाओ' कतई नहीं था, लेकिन दुर्भाग्यवश ऐसा प्रचारित किया गया। इससे राज्यों के मन में भ्रांति फैली। इसका निराकरण हिंदी के विद्वानों, पत्रकारों और संस्थाओं को करना चाहिए था। उन्होंने कहा कि वर्तमान केंद्र सरकार द्वारा घोषित राष्ट्रीय शिक्षा नीति से बहुत कुछ अपेक्षाएं हैं, क्योंकि इसमें मातृभाषा में शिक्षा और भारतीय भाषाओं के प्रोत्साहन और अनुवाद की बात हो रही है। ऐसे में हिंदी से जुड़ी संस्थाएं यदि पहल करें तो हिंदी परस्पर आदान–प्रदान का व्यापक माध्यम बन सकती है"।

सुप्रसिद्ध पटकथा लेखक और स्तंभकार सुश्री अद्वैता काला ने कहा कि जहां भाषा खत्म होती है, वहां संस्कृति भी उसके साथ दम तोड़ देती है। गुजराती साप्ताहिक 'साधना' के प्रबंध संपादक श्री मुकेश शाह ने कहा कि शब्दों को हमने ब्रह्म माना है और भाषाओं में अंतर–संवाद कोई नई बात नहीं है। उत्तर–दक्षिण भारत की भाषाओं में व्यापक अंतर होने के बावजूद उनमें अंतर–संवाद और अनुवाद होता आया है। कोलकाता प्रेस क्लब के अध्यक्ष श्री स्नेहशीष सुर ने कहा कि हिंदी दिवस के अवसर पर भारतीय भाषाओं के बीच अंतर–संवाद विषय पर विमर्श का आयोजन करके भारतीय जन संचार संस्थाान ने दर्शाया कि हिंदी दिवस केवल हिंदी के लिए नहीं है। सभी भाषाओं के बीच संवाद, संपर्क, उनके कल्याण तथा विकास को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। हैदराबाद से प्रकाशित उर्दू दैनिक 'डेली सियासत' के संपादक श्री अमीर अली खान ने कहा कि पाकिस्तान ने जब उर्दू को अपनी राजभाषा बनाया, तो यहां हिंदी और उर्दू में अंतर आ गया। उन्होंने कहा कि हिंदी की किताबों का उर्दू में अनुवाद कराया जाना चाहिए।

विमर्श के अध्यक्ष एवं भारतीय जन संचार संस्थान के महानिदेशक प्रो. संजय द्विवेदी ने कहा कि सरकार की ओर से घोषित नई राष्ट्रीय नीति में सभी भारतीय भाषाओं को महत्त्व दिया गया है। हिंदी अकेली राष्ट्र भाषा नहीं है, क्योंकि समस्त भाषाएं इसी राष्ट्र के लोगों के द्वारा बोली जाती हैं, लिहाजा वे सभी राष्ट्रीय भाषाएं ही हैं। उन्होंने कहा कि भारत सदैव वसुधैव कुटुम्बकम की बात करता आया है और सभी भाषाओं को साथ लेकर चलने के पीछे भी यही भावना है।

आईआईएमसी और उजबेकिस्तान के पत्रकारिता विश्वविद्यालय के बीच एमओयू

भारतीय जन संचार संस्थान ने युनिवर्सिटी ऑफ जर्नलिज्म एंड मास कम्युनिकेशंस ऑफ उजबेकिस्तान के साथ 28 अक्टूबर, 2020 को एक समझौता पत्र (एमओयू) पर हस्ताक्षर किए। इसका उद्देश्य पत्रकारिता और जनसंचार शिक्षा को प्रोत्साहन देना एवं मौलिक, शैक्षणिक एवं व्यावहारिक अनुसंधान के क्षेत्रों को परिभाषित करना है। आईआईएमसी के महानिदेशक प्रो. संजय द्विवेदी ने एमओयू के बारे में जानकारी देते हुए बताया कि इस समझौते के माध्यम से दोनों संस्थान टीवी, प्रिंट मीडिया, डिजिटल मीडिया, जनसंपर्क, मीडिया भाषा विज्ञान और विदेशी भाषाओं से जुड़े जैसे विषयों पर शोध को बढ़ावा देंगे। इस समझौते से एक दूसरे की कार्यप्रणालियों एवं अनुभवों को जानने एवं समझने का मौका मिलेगा। इसके अलावा यह समझौता अनुसंधान और शैक्षिक डेटा के आदान–प्रदान को भी प्रोत्साहित करेगा और संयुक्त कार्यक्रमों को आयोजित करने के अवसरों का भी जरिया बनेगा।

'राष्ट्रीय शिक्षा नीति और भारतीय भाषाएं' विषय पर राष्ट्रीय वेबिनार

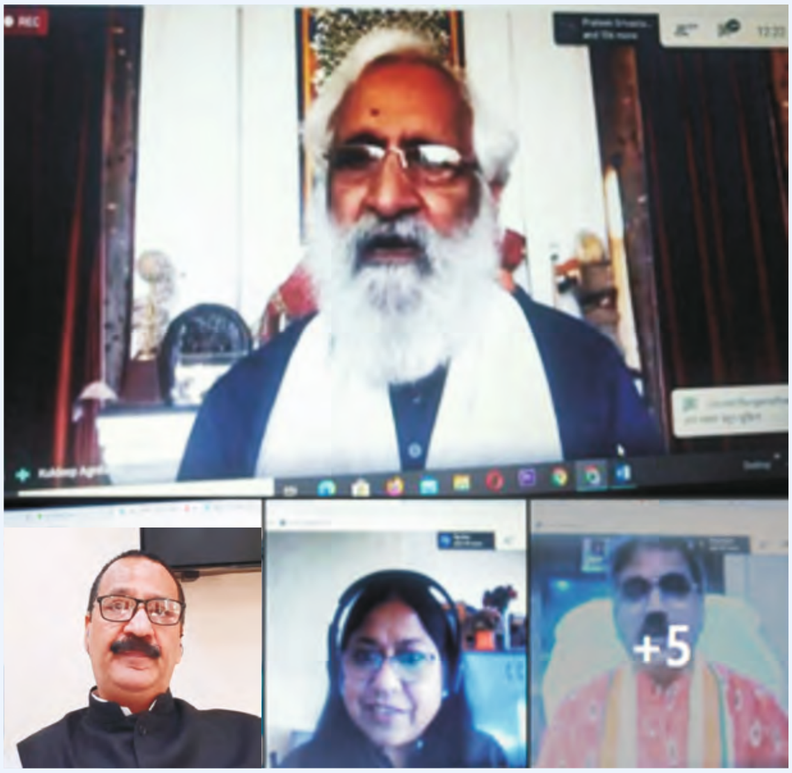

भारतीय जन संचार संस्थान द्वारा 28 सितंबर, 2020 को 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति और भारतीय भाषाएं' विषय पर राष्ट्रीय वेबिनार का आयोजन किया गया। वेबिनार को संबोधित करते हुए हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला के कुलपति प्रो. कुलदीप चंद्र अग्निहोत्री ने कहा कि सभी भारतीय भाषाएं राष्ट्रीय भाषाएं हैं, इसलिए किसी भाषा को क्षेत्रीय भाषा और किसी को राष्ट्रीय भाषा कहना ठीक नहीं होगा। जिस दिन हमारे शिक्षकों ने भारतीय भाषाओं में पढ़ाना शुरू कर दिया, उस दिन हिंदुस्तान अन्य देशों से बहुत आगे निकल जाएगा। उन्होंने कहा कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति का लक्ष्य भारतीय भाषाओं को सम्मान दिलाना है। इस दिशा में सभी लोगों को एकजुट होकर काम करने की आवश्यकता है।

महात्मा गांधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी, के कुलपति प्रो. संजीव कुमार शर्मा ने कहा कि अंग्रेजी का जो चक्रव्यूह हमारे चारों तरफ है, उससे बाहर आने में आधुनिक अभिमन्यु पूरी तरह से सक्षम हैं। भारतीय भाषाओं के बीच समन्वय का भाव आवश्यक है। भारतीय भाषाओं में कोई विभेद नहीं है, कोई संघर्ष नहीं है। अगर हमें भाषाओं को सींचना है, तो सभी को मिलजुलकर प्रयास करने होंगे, जिसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका हिंदीभाषी लोगों को निभानी होगी। प्रसिद्ध लेखिका एवं दैनिक हिंदुस्तान की कार्यकारी संपादक श्रीमती जयंती रंगनाथन ने कहा कि हिंदी एक बहती नदी है। आप देखिए कि हिंदी के अखबार 30 वर्ष पहले सिर्फ 3 लाख प्रतियां छापते थे, लेकिन आज यह आंकड़ा 3 करोड़ के पार पहुंच चुका है। यही हिंदी की ताकत है। रंगनाथन ने कहा कि तमिल मेरी मातृभाषा है, पर हिंदी मेरी कर्म भाषा है। उन्होंने कहा कि शिक्षकों का जोर होता है कि बच्चे स्कूल में हिंदी में न बात करें, पर अंग्रेजी भाषा का प्रयोग करते हुए बच्चों को हमने यह सिखाया ही नहीं कि जीवन में चुनौतियों का सामना किस तरह करना है। आज हम यह भूल गए हैं कि शिक्षा का मकसद क्या है।

नवभारत टाइम्स, मुंबई के पूर्व संपादक विश्वनाथ सचदेव ने अपने संबोधन में कहा कि अंग्रेजी के माध्यम से हम दुनिया से तो जुड़ सकते हैं, लेकिन अपने आप से नहीं जुड़ सकते। अगर हमें स्वयं से जुड़ना है, तो हमें मातृभाषा का इस्तेमाल करना ही होगा। उन्होंने कहा कि किसी विदेशी भाषा के माध्यम से शिक्षित होकर आप अपने आप को पूर्ण शिक्षित नहीं मान सकते। शिक्षा के माध्यम से हम मनुष्य बन सकें, यही शिक्षा नीति का मूल उद्देश्य होना चाहिए। श्री सचदेव ने कहा कि जब तुर्की एक रात में अपनी भाषा को राष्ट्रभाषा घोषित कर सकता है, तो यह काम हमारे यहां क्यों नहीं हो सकता।

दैनिक जागरण, नई दिल्ली के सह–संपादक अनंत विजय ने कहा कि हिंदी और भारतीय भाषाएं एक दूसरे के साथ मिलकर चलेंगी, तो दोनों मजबूत होंगी। उन्होंने कहा कि मैकाले की शिक्षा नीति के बाद अगर आप देखें, तो पहली बार एक संपूर्ण और नई शिक्षा नीति आई है। इससे पहले जितनी भी नीतियां आई हैं, उन्हें नई न कहकर संशोधित नीतियां कहना ज्यादा बेहतर होगा। पांडिचेरी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के अध्यक्ष डॉ. सी. जयशंकर बाबु ने कहा कि भारतीय भाषाओं के व्यावहारिक प्रयोग पर ध्यान देने की आवश्यकता है। उन्होंने कहा कि दुनिया की कुल भाषाओं में से एक तिहाई भाषाएं हमारे पास हैं, लेकिन हमने अब तक मुट्ठीभर भाषाओं को शिक्षण में अपनाया है। तमिलनाडु का जिक्र करते हुए उन्होंने कहा कि वहां राज्य की नौकरियों में मातृभाषा में पढ़ाई करने वाले विद्यार्थियों को प्राथमिकता दी जाती है, क्या ऐसी पहल अन्य राज्यों में नहीं होनी चाहिए। कार्यक्रम में भारतीय जन संचार संस्थान के महानिदेशक प्रो. संजय द्विवेदी भी विशेष तौर पर उपस्थित थे।

कोरोना के विरुद्ध सतर्क रहने की शपथ

आईआईएमसी में 12 अक्टूबर, 2020 को कोरोना के विरुद्ध सतर्क रहने के लिए समस्त अधिकारियों और कर्मचारियों ने जागरूक रहने की शपथ ली। इस अवसर पर आईआईएमसी के महानिदेशक प्रो. संजय द्विवेदी ने सभी लोगों के साथ मिलकर यह संकल्प लिया कि वे कोराना के प्रसार को रोकने के लिए सभी आवश्यक सावधानियां बरतेंगे। प्रो. द्विवेदी ने कहा कि हम एक साथ मिलकर ही कोविड–19 के खिलाफ इस लड़ाई को जीत सकते हैं। कार्यक्रम में संस्थान के अपर महानिदेशक श्री सतीश नंबूदरीपाद भी उपस्थित थे।

मीडिया शिक्षा और राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 पर वेबिनार का आयोजन

भारतीय जन संचार संस्थान द्वारा 21 सितंबर, 2020 को 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 : भारत में पत्रकारिता और जनसंचार शिक्षा की भविष्य की दिशा' विषय पर एक राष्ट्रीय वेबिनार का आयोजन किया गया। बेविनार को संबोधित करते हुए इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र के सदस्य सचिव डॉ. सच्चिदानंद जोशी ने कहा कि मीडिया शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए मीडिया एजुकेशन काउंसिल की आवश्यकता है। इसकी मदद से न सिर्फ पत्रकारिता एवं जनसंचार शिक्षा के पाठ्यक्रम में सुधार होगा, बल्कि मीडिया इंडस्ट्री की जरूरतों के अनुसार पत्रकार भी तैयार किए जा सकेंगे। उन्होंने कहा कि नई शिक्षा नीति में कहीं भी मीडिया या पत्रकारिता शब्द का जिक्र नहीं है, लेकिन हमें राष्ट्रीय शिक्षा नीति से प्रेरणा लेते हुए जनसंचार और पत्रकारिता शिक्षा के भविष्य के बारे में सोचना होगा। उन्होंने कहा कि तकनीक ने मीडिया को भी बदल दिया है। आज स्कूलों में 3डी तकनीक से पढ़ाई हो रही है। उन्होंने राष्ट्रीय शिक्षा नीति के पॉइंट 11 की चर्चा करते हुए कहा कि हमें होलिस्टिक एजुकेशन पर ध्यान देना होगा। इस संदर्भ में अगर हम भारतीय संस्कृति की बात करें, तो प्राचीन काल में भारतीय शिक्षा–क्रम का क्षेत्र बहुत व्यापक था। शिक्षा में कलाओं की शिक्षा भी अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती थी और इनमें चौंसठ कलाएं महत्त्वपूर्ण हैं। अगर हम देखें तो ये कलाएं आज हमारे अत्याधुनिक समाज का हिस्सा हैं।

कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए वरिष्ठ शिक्षाविद् प्रो. गीता बामजेई ने कहा कि नई शिक्षा नीति भारत की शिक्षा व्यवस्था में एक क्रांतिकारी कदम है। उन्होंने कहा कि अगर हम इस शिक्षा नीति को सही तरह से अपनाते हैं, तो यह नीति हमें गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की तरफ ले जाएगी। उन्होंने कहा कि इस शिक्षा नीति से ज्ञान और कौशल के माध्यम से एक नए राष्ट्र का निर्माण होगा। इस अवसर पर नवभारत, इंदौर के पूर्व संपादक प्रो. कमल दीक्षित ने कहा कि मीडिया शिक्षण में एक स्पर्धा चल रही है। अब हमें यह तय करना होगा कि हमारा लक्ष्य स्पर्धा में शामिल होने का है या फिर बेहतर पत्रकारिता शिक्षण का माहौल बनाने का है। हैदराबाद केंद्रीय विश्वविद्यालय की प्रो. कंचन मलिक ने कहा कि शिक्षा नीति में कई महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर जोर दिया गया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति आत्मनिर्भर बनने पर जोर देती है। जो चीज आपको चुनौती देती है, वही आपको बदलती है। माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय की प्रोफेसर पी. शशिकला ने कहा कि न्यू मीडिया अब न्यू नॉर्मल है। हम सब जानते हैं कि आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के कारण लाखों नौकरियां गई हैं। इसलिए हमें मीडिया शिक्षा के अलग–अलग पहलुओं पर ध्यान देना होगा। हमें बाजार के हिसाब से प्रोफेशनल तैयार करने चाहिए।

मौलाना आजाद राष्ट्रीय उर्दू विश्वविद्यालय के प्रोफेसर एहतेशाम अहमद खान ने कहा कि नई शिक्षा नीति में क्षेत्रीय भाषाओं पर ध्यान देने की बात कही गई है। जनसंचार शिक्षा के क्षेत्र में भी हमें इस पर ध्यान देना होगा। महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय के प्रोफेसर कृपाशंकर चौबे ने कहा कि किसी भी समाज को आगे ले जाने और उसके विकास के लिए संवाद जरूरी है। उन्होंने कहा कि नई शिक्षा नीति गुणवत्ता की बात करती है। इसके साथ ही हमें शिक्षा के बाजारीकरण और महंगी होती शिक्षा पर लगाम लगाना होगा। भारतीय जन संचार संस्थान के महानिदेशक प्रोफेसर संजय द्विवेदी ने कहा कि शिक्षा का उद्देश्य एक बेहतर दुनिया बनाना है। मीडिया शिक्षा की यात्रा को वर्ष 2020 में 100 साल पूरे हो चुके हैं, लेकिन अभी भी बहुत काम करना बाकी है। उन्होंने कहा कि भारतीय परंपरा के पास विदेशी मॉडल की तुलना में बेहतर संचार मॉडल हैं। इसलिए हमें संवाद और संचार के भारतीय मॉडल के बारे में बातचीत शुरू करनी चाहिए। इसके अलावा भारत की शास्त्रार्थ परंपरा पर भी हमें चर्चा करनी चाहिए। उन्होंने कहा कि शिक्षा का व्यवसायीकरण चिंता का विषय है। इसके खिलाफ सभी लोगों को एकत्र होना चाहिए। हमें समाज के अंतिम आदमी के लिए शिक्षा के द्वार खोलने चाहिए। प्रो. द्विवेदी ने कहा कि जनसंचार शिक्षा में हमें क्षेत्रीय भाषाओं पर काम करने की जरूरत है।

आईआईएमसी में 'गाँधी पर्व'

भारतीय जन संचार संस्थान द्वारा 1 अक्टूबर, 2020 को 'गांधी पर्व' का आयोजन किया गया। इस अवसर पर अपने विचार व्यक्त करते हुए महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा के कुलपति प्रो. रजनीश शुक्ल ने कहा कि संचार के उद्देश्यों की बात की जाए, तो गांधी विश्व के सबसे सफल संचारक थे। अपने इसी गुण के कारण वे देश के अंतिम व्यक्ति तक अपनी बात पहुंचाने में सफल रहे। उन्होंने कहा कि संचार एक गतिविधि नहीं, बल्कि संचार एक प्रक्रिया है। अगर आपको गांधीजी को संचारक के रूप में देखना है, तो उन्हें एक नहीं, अनेक रूपों में देखना होगा; जैसे अंतःसंचारक गांधी, समूह संचारक गांधी, वैश्विक मूल्यों के संचारक गांधी। गांधीजी एक तरफ समाचारपत्र को लोक जागरण और लोक शिक्षण का साधन मानते हैं, वहीं दूसरी ओर यूरोपीय पत्रकारिता और यूरोपीय दृष्टि से भारत में हो रही पत्रकारिता के आलोचक भी हैं। साथ ही यूरोपीय शिक्षा पद्धति का भी गांधीजी खुलकर विरोध करते हैं। गांधीजी एक सफल पत्रकार थे, लेकिन उन्होंने कभी भी पत्रकारिता को अपनी आजीविका का आधार बनाने की कोशिश नहीं की।

इस अवसर पर पुनरुत्थान विद्यापीठ, अहमदाबाद की कुलपति सुश्री इंदुमती काटदरे ने कहा कि श्रेष्ठ समाज के निर्माण के लिए शिक्षा सबसे महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने कहा कि गांधीजी का मानना था कि श्रेष्ठ समाज के दो आयाम हैं, समृद्धि और संस्कृति। समृद्धि अर्थशास्त्र का विषय है, जबकि संस्कृति धर्म से आती है। अंग्रेजों ने हमेशा से समृद्धि और संस्कृति को एक दूसरे का विरोधी माना था, लेकिन भारत ने यह सिद्ध करके दिखाया कि ये दोनों आयाम समाज में एक साथ रह सकते हैं। सुश्री काटदरे ने कहा कि गांधी एक काल के नहीं है। उनका चिंतन, विचार और व्यवहार 20वीं शताब्दी में हुए, लेकिन उनके नाम से एक पूरा युग जाना जाता है। आप समाज के प्रत्येक क्षेत्र में गांधी विचार या गांधीवाद का असर देख सकते हैं। उन्होंने कहा कि गांधी देह रूप में 20वीं शताब्दी में हुए, लेकिन भावनाओं एवं विचारों में वे युगों से चली आई भारतीय ज्ञान परंपरा की अगली कड़ी थे। अंग्रेजी शिक्षा पद्धति का जिक्र करते हुए उन्होंने कहा कि अगर आप मैकाले को पढ़ेंगे, तो आपको पता चलेगा कि किस तरह ब्रिटिशों द्वारा चलाए जाने वाले स्कूलों में यूरोपीय ज्ञान का प्रचार–प्रसार किया जाता था। उन्होंने कहा कि मैकाले ने लिखा था कि इंग्लैंड के किसी एक प्राथमिक स्कूल की लाइब्रेरी की एक अलमारी की एक शेल्फ की पुस्तकों में जितना श्रेष्ठ ज्ञान है, वह भारत के संपूर्ण ज्ञान ग्रंथ से कहीं बढ़कर है। यही अंग्रेजों का सूत्र वाक्य था। काटदरे ने कहा कि गांधीजी ने जो बुनियादी शिक्षा पद्धति भारत को दी, अगर उसका अनुसरण हो, तो भारत को ज्ञान के शिखर पर पहुंचने से कोई नहीं रोक सकता।

आईआईएमसी के महानिदेशक प्रो. संजय द्विवेदी ने कहा कि अगर आप भी गांधीजी के रास्ते पर चलना चाहते हैं, तो आज से डिजिटल सत्याग्रह की शुरुआत कीजिए। बापू के तीन बंदरों का जिक्र करते हुए उन्होंने कहा कि गांधीजी ने इन बंदरों के जरिये बुरा न देखने, बुरा न बोलने और बुरा न सुनने की शिक्षा दी थी, लेकिन आज के इस डिजिटल युग में मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि "बुरा मत टाइप करो, बुरा मत लाइक करो और बुरा मत शेयर करो"। उन्होंने कहा कि सोशल मीडिया पर आने वाली खबरों की, सत्यता के पैमाने पर जांच करें। उन्होंने कहा कि याद रखिए सच में झूठ की मिलावट अगर नमक के बराबर भी होती है, तो वह सच नहीं रहता, उसका स्वाद किरकिरा हो जाता है। इसलिए अब वक्त आ गया है कि असली खबरों और विचारों पर झूठ का नमक छिड़कने वालों के खिलाफ आज के जमाने का दांडी मार्च शुरु किया जाए। इस अवसर पर प्रो. संजय द्विवेदी ने स्वच्छता अभियान तथा पर्यावरण रक्षा से जुड़े संस्थान के सहयोगियों का सम्मान भी किया।

'कम्युनिटी रेडियो–सबका साथ, सबका विकास' विषय पर वेबिनार

सरदार वल्लभभाई पटेल की 145वीं जयंती प्रसंग के मौके पर 2 नवंबर, 2020 को 'कम्युनिटी रेडियो–सबका साथ सबका विकास' विषय पर एक वेबिनार का आयोजन किया गया। इस विषय पर अपने विचार व्यक्त करते हुए आईआईएमसी के महानिदेशक प्रो. संजय द्विवेदी ने कहा कि भारत में 290 कम्युनिटी रेडियो स्टेशन हैं, जिनकी पहुंच देश की लगभग 9 करोड़ आबादी तक है। ये रेडियो स्टेशन समुदायों द्वारा उनकी स्थानीय भाषा एवं बोली में चलाए जाते हैं। इस तरह भारतीय भाषाओं के माध्यम से कम्युनिटी रेडियो देश को जोड़ने का काम करता है। उन्होंने कहा कि सामुदायिक रेडियो स्टेशन लोगों से उनकी भाषा में संचार करते हैं, जिससे न सिर्फ भाषा संरक्षण में योगदान होता है, बल्कि अगली पीढ़ी तक उसका विस्तार भी होता है। एक समुदाय को सशक्त करना हो, लोगों और सरकार के बीच माध्यम बनना हो, समाज में पारदर्शिता लानी हो, निरंतर जानकारी पहुंचानी हो या छोटी अथवा बड़ी समस्या का हल निकालना हो, इन सभी में कम्युनिटी रेडियो अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

वन वर्ल्ड फाउंडेशन के प्रबंध निदेशक श्री राजीव टिक्कू ने कहा कि कम्युनिटी रेडियो सिर्फ समस्याओं की ओर ध्यान ही नहीं दिलाता, बल्कि उनका समाधान करने का भी प्रयास करता है। टिक्कू ने बताया कि आज के दौर में हम सूचनाओं के विस्फोट से जूझ रहे हैं, ऐसी स्थिति में इन सूचनाओं को कम्युनिटी रेडियो सबसे बेहतर तरीके से नियंत्रित करते हैं। कम्युनिटी मीडिया कंसल्टेंट डॉ. डी.

रुक्मिणी वेमराजू ने कहा कि कम्युनिटी रेडियो में भाषा का नहीं, बल्कि संचार का महत्त्व है और इसकी सबसे अच्छी बात यह है कि क्षेत्रीय स्तर पर लोगों से क्षेत्रीय भाषा में ही संचार किया जाता है। उन्होंने कहा कि समुदाय एवं उसमें रहने वाले लोगों को जोड़कर ही 'सबका साथ सबका विकास' संभव हो सकता है। रेडियो अल्फाज–ए–मेवात की प्रमुख श्रीमती पूजा ओबेरॉय मुरादा ने बताया कि जब रेडियो मेवात का प्रसारण शुरू किया गया, तो वहां रहने वाले समुदाय के लोगों ने पहले इसका विरोध किया, लेकिन आज वही लोग इसके संचालन में हमारी मदद करते हैं। लॉकडाउन के दौरान वहां रहने वाले इंजीनियर ने तकनीकी समस्याओं को दूर करने में हमारी मदद की। रेडियो वनस्थली राजस्थान के स्टेशन मैनेजर श्री लोकेश शर्मा ने कहा कि हमारी टैगलाइन है 'आपणो रेडियो वनस्थली' यानी यह आपका अपना रेडियो स्टेशन है। यही कम्युनिटी रेडियो की भावना है। उन्होंने कहा कि यह राजस्थान का पहला कम्युनिटी रेडियो स्टेशन है और इसके माध्यम से हम क्षेत्रीय भाषाओं में लोगों के साथ संवाद कर रहे हैं। आयोजन की शुरुआत संस्थान के अपर महानिदेशक श्री के. सतीश नंबूदरीपाद के स्वागत भाषण से हुई।

पौधारोपण कर मनाई गई गांधी एवं शास्त्री जयंती

भारतीय जन संचार संस्थान में 2 अक्टूबर, 2020 को महात्मा गांधी एवं पूर्व प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री जी की जयंती मनाई गई। इस अवसर पर गांधीजी एवं शास्त्री जी के चित्र पर माल्यार्पण कर उन्हें श्रद्धांजलि दी गई। इसके बाद आईआईएमसी के महानिदेशक प्रो. संजय द्विवेदी ने स्वच्छता, सुरक्षा तथा पर्यावरण रक्षा से जुड़े संस्थान के सहयोगियों को सम्मानित किया। इसके अलावा इस मौके पर परिसर में सफाई अभियान का आयोजन किया गया तथा संस्थान के अधिकारियों एवं कर्मचारियों द्वारा पौधारोपण भी किया गया। कार्यक्रम में संस्थान के अपर महानिदेशक श्री सतीश नंबूदिरिपाड सहित समस्त अधिकारियों एवं कर्मचारियों ने भाग लिया।

आईआईएमसी में सत्रारंभ समारोह

भारतीय जन संचार संस्थान का पांच दिवसीय सत्रारंभ समारोह 23 नवंबर से 27 नवंबर, 2020 तक आयोजित किया गया। कोरोना के कारण इस वर्ष यह कार्यक्रम ऑनलाइन आयोजित किया गया। समारोह का शुभारंभ 23 नवंबर को केंद्रीय सूचना एवं प्रसारण मंत्री श्री प्रकाश जावड़ेकर ने किया। इस अवसर पर श्री प्रकाश जावड़ेकर ने पत्रकारिता के छात्रों को सलाह दी कि वे अनावश्यक सनसनी और टीआरपी केंद्रित पत्रकारिता के जाल में फंसने के बजाय, स्वस्थ पत्रकारिता के गुर सीखें और समाज में जो कुछ अच्छा काम हो रहा है उसे भी समाचार मानकर लोगों तक पहुंचाएं। नवागत विद्यार्थियों को संबोधित करते हुए आईआईएमसी के महानिदेशक प्रो. संजय द्विवेदी ने कहा कि सिर्फ पत्रकार तैयार करना हमारा लक्ष्य नहीं है, हम चाहते हैं कि हमारे संस्थान से ग्लोबल लीडर पैदा हों, जो आने वाले दस वर्षों में पत्रकारिता और जनसंचार की दुनिया में बड़े और वैश्विक स्तर के नाम बनें। सत्रारंभ के प्रथम दिन 'एक्सचेंज4मीडिया' और 'बिजनेस वर्ल्ड' के संस्थापक डॉ. अनुराग बत्रा ने भी विद्यार्थियों को स्वस्थ पत्रकारिता के गुर सिखाए।

कार्यक्रम के दूसरे दिन मशहूर फिल्म निर्माता एवं निर्देशक श्री सुभाष घई ने विद्यार्थियों को संबोधित करते हुए कहा कि सिनेमा हो या मीडिया, आप कहानी दिमाग से नहीं, दिल से सुनाएं; और जब आप दिल से कहानी सुनाएंगे, तभी एक अच्छे कम्युनिकेटर बन पाएंगे। उन्होंने कहा कि एक पत्रकार को खबर लिखने से पहले समाज को पहचानना चाहिए। इसके अलावा हिंदुस्तान टाइम्स के संपादक श्री सुकुमार रंगनाथन, वरिष्ठ पत्रकार श्री उमेश उपाध्याय, ऑर्गेनाइजर के संपादक श्री प्रफुल्ल केतकर, गौतम बुद्ध विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. भगवती प्रकाश शर्मा एवं सेंटर फॉर पॉलिसी स्टडीज, चेन्नई के निदेशक डॉ. जे.के. बजाज ने भी विद्यार्थियों का मार्गदर्शन किया।

समारोह के तीसरे दिन कई अंतरराष्ट्रीय वक्ता विद्यार्थियों से रूबरू हुए। 'आत्मनिर्भर भारत' विषय पर चर्चा करते हुए कनाड़ा के प्रसिद्ध उद्यमी श्री आदित्य झा ने कहा कि अगर हमें भारत को आत्मनिर्भर बनाना है, तो लघु उद्योगों पर ध्यान देना होगा। लघु उद्योगों के विकास से ही आत्मनिर्भर भारत का निर्माण संभव है। श्री झा ने कहा कि आत्मनिर्भर बनने के लिए आवश्यक है कि सबसे पहले हम अपनी सोच में आत्मनिर्भर बनें। श्री झा के अलावा इंडियन स्कूल ऑफ बिजनेस के एसोसिएट डीन प्रोफेसर सिद्धार्थ शेखर सिंह, हांगकांग बैपटिस्ट यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर दया थुस्सु और हार्टफोर्ड यूनिसर्विटी के प्रोफेसर संदीप मुप्पिदी ने भी विद्यार्थियों से संवाद किया।

कार्यक्रम के चौथे दिन विदेश राज्य मंत्री श्री वी. मुरलीधरन ने भारतीय विदेश नीति में हुए महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों पर विद्यार्थियों के साथ बातचीत की एवं उनके सवालों के जवाब दिए। श्री मुरलीधरन ने कहा कि भारत अपने सभी पड़ोसियों के साथ मित्रता का भाव रखता है, लेकिन भारत सरकार ने यह स्पष्ट कर दिया है कि नया भारत अपनी सरजमीं पर आतंकवादी हमलों को स्वीकार नहीं करेगा। चौथे दिन माइक्रोसॉफ्ट इंडिया के डायरेक्टर (लोकेलाइजेशन) श्री बालेंदु शर्मा दाधीच, पटकथा लेखक एवं स्तंभकार सुश्री अद्वैता काला, वरिष्ठ पत्रकार श्री अभिजीत मजूमदार एवं श्री शलभ उपाध्याय, गुडऐज के प्रमोटर श्री माधवेंद्र पुरी दास एवं रिलायंस के कम्युनिकेशन चीफ श्री रोहित बंसल भी कार्यक्रम में शामिल हुए।

समारोह के अंतिम दिन केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्री डॉ. हर्षवर्धन ने विद्यार्थियों से बातचीत करते हुए कहा कि कोरोना महामारी की रोकथाम में पत्रकारों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। कोरोना वारियर्स की मेरी लिस्ट में पत्रकारों का स्थान बेहद खास है। मैं उनके जज्बे, जुनून और साहस को सलाम करता हूं। इससे पहले समारोह के अंतिम दिन के प्रथम सत्र में दूरदर्शन के महानिदेशक श्री मयंक अग्रवाल, नेटवर्क 18 के मैनेजिंग एडिटर श्री ब्रजेश सिंह एवं एसोसिएटेड प्रेस टीवी की साउथ एशिया हेड सुश्री विनीता दीपक ने विद्यार्थियों से संवाद किया। कार्यक्रम का समापन आईआईएमसी के पूर्व विद्यार्थियों के सत्र से हुआ। इस सत्र में 'आज तक' के न्यूज डायरेक्टर श्री सुप्रिय प्रसाद, न्यूज नेशन के कंसल्टिंग एडिटर श्री दीपक चौरसिया, हिंदुस्तान टाइम्स के चीफ कंटेट ऑफिसर प्रसाद सान्याल एवं 'कौन बनेगा करोड़पति' के इस सीजन की पहली करोड़पति श्रीमती नाजिया नसीम ने हिस्सा लिया।

राष्ट्रीय एकता दिवस की शपथ

भारतीय जन संचार संस्थान के समस्त अधिकारियों एवं कर्मचारियों ने 29 अक्टूबर, 2020 को राष्ट्रीय एकता दिवस की शपथ ली। इस अवसर पर आईआईएमसी के महानिदेशक प्रो. संजय द्विवेदी ने सभी के साथ मिलकर संकल्प लिया कि वे राष्ट्र की एकता, अखंडता और सुरक्षा को बनाए रखेंगे। प्रो. द्विवेदी ने कहा कि हम सभी लोग देश की आंतरिक सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए अपना योगदान करेंगे। कार्यक्रम में संस्थान के अपर महानिदेशक श्री सतीश नंबूदरीपाद भी मौजूद थे।

‘मीडिया एवं संस्कृति’ विषय पर ‘शुक्रवार संवाद’

मीडिया विद्यार्थियों को पाठ्यक्रम से इतर जानकारी मुहैया कराने के उद्देश्य से भारतीय जन संचार संस्थान ने ‘शुक्रवार संवाद’ नाम से एक साप्ताहिक कार्यक्रम की शुरुआत की है। प्रथम ‘शुक्रवार संवाद’ को इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र, दिल्ली के सदस्य सचिव डॉ. सच्चिदानंद जोशी ने 11 दिसंबर, 2020 को संबोधित किया। अपने संबोधन में उन्होंने कहा कि वर्तमान समय में मीडिया की संस्कृति, व्यवहार और संस्कार’ पर चर्चा किए जाने की आवश्यकता है। अगर हम मीडिया की संस्कृति को समझ लेंगे, तो देश, समाज, परिवेश और व्यक्तिगत संस्कृति को भी पहचान लेंगे।

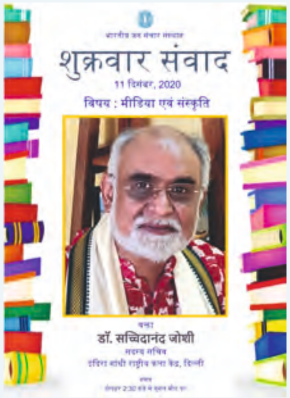

‘मीडिया एवं संस्कृति’ विषय पर बोलते हुए उन्होंने कहा कि आज मीडिया के मूल चरित्र को बदलने की आवश्यकता है। नोम चोम्सकी ने कहा था कि मीडिया की मूल प्रकृति नकारात्मक है और आज मीडिया में नकारात्मक खबरें ज्यादा देखने को मिलती हैं, इसलिए यह आवश्यकता है कि इस पर चर्चा की जाए और मीडिया की विश्वसनीयता को वापस लाया जाए। डॉ. जोशी ने कहा कि भारत में संवाद की पुरातन परंपरा है। अगर हम नाट्य शास्त्र, वेद, गीता आदि को पढ़ें, तो पाएंगे कि इन सभी ग्रंथों में प्रश्न और उत्तर हैं, जो संवाद का एक हिस्सा है। भारतीय संस्कृति में कहा जाता है कि जब तक आपके मन में सही प्रश्न नहीं उठते, तब तक आपको उसके सही उत्तर नहीं मिलते। और यही स्थिति मीडिया की भी है।

इस अवसर पर आईआईएमसी के महानिदेशक प्रो. संजय द्विवेदी ने कहा कि भारत को समझने के लिए हमें स्वामी विवेकानंद, महर्षि अरविंद, बाबा साहेब आंबेडकर ने जो राह दिखाई है, उस पर चलना होगा। हमें उन सूत्रों की तलाश करनी होगी, जिनसे हिंदुस्तान एक होता है। ‘सबसे पहले भारत’ ही हमारा संकल्प होना चाहिए।

‘मीडिया एवं सूचना का अधिकार’ पर उदय माहुरकर का व्याख्यान

आईआईएमसी के द्वितीय ‘शुक्रवार संवाद’ में दिनांक 18 दिसंबर को ‘मीडिया एवं सूचना का अधिकार’ विषय पर बोलते हुए भारत सरकार के सूचना आयुक्त श्री उदय माहुरकर ने कहा कि सूचना का अधिकार और पत्रकारिता ने एक दूसरे को पूरक के रूप में अंगीकार कर लिया है। इस तरह यह अधिकार और इसके लिए बना कानून पत्रकारिता के कार्य में महत्त्वपूर्ण सहयोग दे रहे हैं, वहीं पत्रकारिता ने इस कानून के बनने, स्थापित होने और इसे बचाए रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उन्होंने कहा कि सरकार की प्रक्रिया में पारदर्शिता लाना सूचना के अधिकार का प्रमुख उद्देश्य है और इस दिशा में काफी सफलता मिली है। उन्होंने कहा कि अगर पत्रकार इसका सही प्रयोग करें, तो कई महत्त्वपूर्ण जानकारियां इसके माध्यम से जनता तक पहुंच सकती हैं। गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक और उत्तर प्रदेश में कई पत्रकारों ने सूचना के अधिकार के तहत सूचनाएं निकालकर प्रमुखता से प्रकाशित की हैं। उन्होंने कहा कि सूचना तक पहुंच का अधिकार समाज के गरीब और कमजोर वर्गों को सार्वजनिक नीतियों और कार्यों के बारे में जानकारी मांगने और प्राप्त करने की दृष्टि से सशक्त बनाता है, जिससे उनका कल्याण संभव हो सके। उन्होंने कहा कि सरकार तथा नागरिक संस्थानों को मिलकर आरटीआई अधिनियम को और अधिक मजबूत करने का प्रयास करना चाहिए, जिससे प्रशासन में भ्रष्टाचार पर नियंत्रण के साथ–साथ लोगों की भागीदारी भी बढ़ेगी।

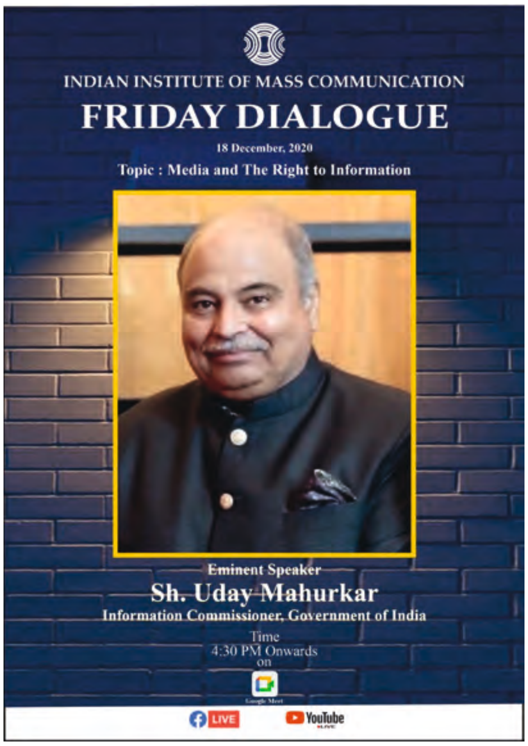

जयंती पर मालवीय जी और अटल जी का स्मरण

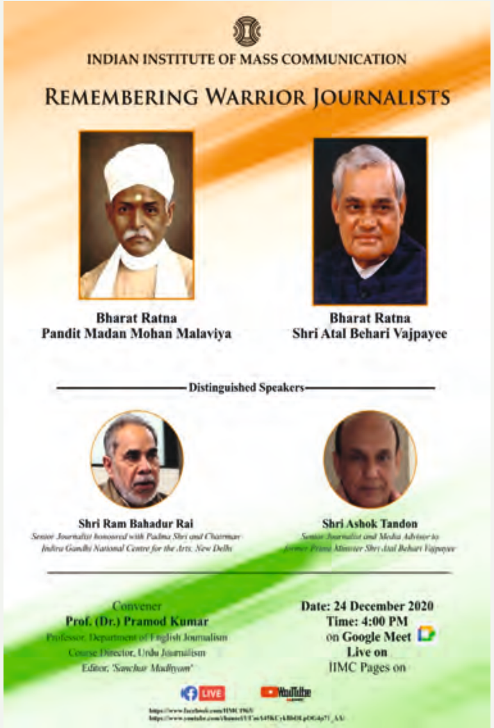

आईआईएमसी के तृतीय 'शुक्रवार संवाद' में 24 दिसंबर को दो योद्धा पत्रकारों, पंडित मदन मोहन मालवीय एवं अटल बिहारी वाजपेयी, का स्मरण किया गया। इस अवसर पर अपने विचार व्यक्त करते हुए पद्मश्री से अलंकृत वरिष्ठ पत्रकार एवं इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र, नई दिल्ली के अध्यक्ष श्री राम बहादुर राय ने कहा कि पत्रकारिता के क्षेत्र में पंडित मदन मोहन मालवीय एवं अटल बिहारी वाजपेयी के विचार और उनके आचरण पत्रकारों के लिए आदर्श हैं। इन दोनों राष्ट्रनायकों ने हमें यह सिखाया कि पत्रकारिता का पहला कर्तव्य समाज को जाग्रत करना है। उन्होंने कहा कि मालवीय जी महान स्वतंत्रता सेनानी, राजनीतिज्ञ और शिक्षाविद् ही नहीं, बल्कि एक बड़े समाज सुधारक भी थे। देश से जातिगत बेड़ियों को तोड़ने में भी उनका महत्त्वपूर्ण योगदान था। उन्होंने कहा कि मदन मोहन मालवीय ने ही 'सत्यमेव जयते' को लोकप्रिय बनाया, जो बाद में चलकर राष्ट्रीय आदर्श वाक्य बना और इसे राष्ट्रीय प्रतीक के नीचे अंकित किया गया। महात्मा गांधी ने मदन मोहन मालवीय को महामना की उपाधि दी थी। असल में अपने महान कार्यों के कारण ही मालवीय जी महामना कहलाए। उन्होंने भारत के सबसे बेहतरीन विश्वविद्यालयों में से एक 'काशी हिंदू विश्वविद्यालय' की स्थापना की।

अटल जी का स्मरण करते हुए प्रसार भारती बोर्ड के सदस्य श्री अशोक टंडन ने कहा कि जनता के बीच प्रसिद्ध अटल बिहारी वाजपेयी अपनी राजनीतिक प्रतिबद्धता के लिए जाने जाते थे। अटल जी जनता की बातों को ध्यान से सुनते थे और उनकी आकांक्षाओं को पूरा करने का प्रयास करते थे। श्री टंडन ने कहा कि अटल जी ने कठिन परिस्थितियों में पत्रकारिता की शुरुआत की और वे अखबार में खबर लिखने, संपादन करने और प्रिंटिंग के साथ–साथ समाचार पत्र वितरण का कार्य भी स्वयं करते थे। उन्होंने कहा कि अटल बिहारी वाजपेयी राजनेता बनने से पहले एक पत्रकार थे। वे देश और समाज के लिए कुछ करने की प्रेरणा से पत्रकारिता में आए थे। उनके जीवन का लक्ष्य पत्रकारिता के माध्यम से पैसे कमाना नहीं, बल्कि राष्ट्र निर्माण था। उनकी कविताएं नौजवानों में उत्साह जगाने वाली थीं। अटल जी का मानना था कि समाचार पत्रों के ऊपर एक बड़ा राष्ट्रीय दायित्व है। भले ही हम समाचार पत्रों की गणना उद्योग में करें, लेकिन समाचार पत्र केवल उद्योग नहीं हैं, उससे भी कुछ अधिक हैं।

सैन्य अधिकारियों के लिए आयोजित मीडिया संचार पाठ्यक्रम का समापन समारोह

भारतीय जन संचार संस्थान सैन्य अधिकारियों के लिए मीडिया संचार पाठ्यक्रम का समय–समय पर आयोजन करता है। ऐसे ही एक पाठ्यक्रम के समापन समारोह को संबोधित करते हुए केंद्रीय रक्षा राज्य मंत्री श्रीपाद नाईक ने 10 दिसंबर, 2020 को कहा कि भारत विरोधी ताकतों से निपटने में मीडिया की अहम भूमिका है, इसलिए मीडियाकर्मियों सहित हम सभी की यह जिम्मेदारी है कि भारत विरोधी ताकतें हमारे देश के खिलाफ मीडिया का दुरुपयोग न कर पाएं। उन्होंने कहा कि आज जब फेक न्यूज और हेट न्यूज का चलन बढ़ रहा है, तब मीडिया साक्षरता की आवश्यकता प्रत्येक व्यक्ति को है। न्यू मीडिया के इस दौर में सिर्फ संचारकों के लिए नहीं, बल्कि समाज के हर वर्ग के लिए मीडिया साक्षरता अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने कहा कि आज जब लगभग हर व्यक्ति के हाथ में स्मार्टफोन है, तब मीडिया के दुरुपयोग की संभावना कई गुना बढ़ गई है और इसे केवल मीडिया साक्षरता के माध्यम से ही नियंत्रित किया जा सकता है। उन्होंने कहा कि मीडिया साक्षरता से हमें उस मनोवैज्ञानिक युद्ध का मुकाबला करने में भी मदद मिलेगी, जिसे आज हम पूरी दुनिया में देख रहे हैं। हमें भारत विरोधी ताकतों द्वारा एक उपकरण के रूप में अपनाए जा रहे इस मनोवैज्ञानिक युद्ध से सचेत रहना होगा। हमें यह सीखना होगा कि देश और देशवासियों की बेहतरी के लिए मीडिया की ताकत का इस्तेमाल कैसे किया जाए।

इस अवसर पर आईआईएमसी के महानिदेशक प्रो. संजय द्विवेदी ने कहा कि आज पूरा विश्व कोरोना महामारी का सामना कर रहा है। कोरोना के इस दौर में एक शब्द अत्यंत प्रचलित हुआ है और उसके अनेक परिणाम और दुष्परिणाम भी देखने को मिले हैं। यह शब्द है – 'इन्फोडेमिक'। इस शब्द का तात्पर्य अतिशय सूचना या आम बोलचाल की भाषा में सूचनाओं के विस्फोट से है। उन्होंने कहा कि इन अतिशय सूचनाओं में से जब यह चुनना मुश्किल हो जाए कि किस सूचना पर विश्वास करें और किस पर नहीं, तो ऐसी स्थिति एक विमर्श को जन्म देती है। और इस विमर्श नाम है मीडिया एवं सूचना साक्षरता। प्रो. द्विवेदी ने कहा कि आज फेक न्यूज अपने आप में एक बड़ा व्यापार बन गई है और डिजिटल मीडिया ने भी इसे प्रभावित किया है। ऐसे में मीडिया साक्षरता की आवश्यकता और बढ़ जाती है।

‘संचार माध्यम’ लेखकों के लिए आवश्यक दिशा-निर्देश

‘संचार माध्यम’ में उन्हीं शोध-पत्रों के प्रकाशन पर विचार किया जाएगा, जो निम्नलिखित बिंदुओं का सिलसिलेवार पालन करते हों :

1. शीर्षक, लेखक का नाम, सांस्थानिक संबद्धता और पदनाम, पूर्ण डाक पता एवं उस स्थान का उल्लेख जहाँ शोध कार्य किया गया है
2. लेखक का वर्तमान पता/पत्राचार ई-मेल सहित, इसे प्रथम पृष्ठ पर फुटनोट में अंकित किया जाए
3. शोध सारांश (अधिकतम 250 शब्दों में)
4. महत्त्वपूर्ण शब्द (Key words), जो सामान्यतः पाँच से छह शब्द होने चाहिए
5. प्रस्तावना
6. साहित्य समीक्षा
7. शोध उद्देश्य
8. शोध-प्रश्न
9. शोध प्रविधि
10. शोध परिणाम एवं विश्लेषण
11. निष्कर्ष
12. शोध की सीमा
13. आभारोक्ति
14. संदर्भ

अन्य महत्त्वपूर्ण बिंदु

1. **छायाचित्र/लाइन ड्राइंग/ग्राफ़ :** लेखकों से अनुरोध है कि शोध-पत्र/शोध आलेख/समीक्षात्मक आलेख के साथ उच्च-रिज़ॉल्यूशन के छायाचित्र ही संलग्न करें। हो सके तो शोध-पत्र भेजते समय ही छायाचित्र भी भेज दें। सामग्री के प्रकाशनार्थ जमा होने के बाद इसमें परिवर्तन संभव नहीं होगा। ईमेल से भेजे जाने वाले छायाचित्रों आदि का न्यूनतम रिज़ॉल्यूशन 600 डीपीआई से कम नहीं होना चाहिए; हालाँकि श्वेत-श्याम रेखाचित्र 300 डीपीआई के रिज़ॉल्यूशन में हो सकते हैं। रंगीन छायाचित्र अथवा ग्राफ़ आरजीबी में नहीं, बल्कि सीएमवाईके रंगों में हों।

2. **फ़ाइल प्रारूप :** प्रकाशनार्थ सामग्री जैसे छवियाँ/तस्वीरें/रेखाचित्र विभिन्न फॉर्मेट में स्वीकार किए जा सकते हैं; जैसे टैगयुक्त इमेज फ़ाइल फॉर्मेट (.tiff), जॉइंट फोटोग्रैफ़िक एक्सपर्ट्स ग्रुप (.jpg), पोर्टेबल नेटवर्क ग्राफ़िक्स (.png), माइक्रोसॉफ्ट वर्ड (.doc), और एक्सेल (.xls)। पीडीएफ़ में भेजी गई सामग्री स्वीकार नहीं होगी।

3. **तालिका :** तालिका के साथ तालिका संख्या और उसका पूर्ण परिचय अवश्य हो।

4. **ग्राफ़ :** ग्राफ़ के साथ ग्राफ़ संख्या और उसका पूर्ण परिचय हो। लेखकों से अनुरोध है कि कृपया तालिका और ग्राफ़ अलग-अलग फ़ाइलों में संलग्न करें।

5. शीर्षक और उपशीर्षक विषयवस्तु (टेक्स्ट) के अंदर नहीं, बल्कि अलग पंक्ति में टंकित करें।

भारतीय जन संचार संस्थान ऐसी स्वीकृत पांडुलिपियों और रेखाचित्रों आदि को लेखकों के पास पुनः संशोधन हेतु वापस भेजने का अधिकार अपने पास सुरक्षित रखता है, जो सही फॉर्मेट में नहीं हैं अथवा संस्थान द्वारा निर्धारित दिशा-निर्देशों का पालन करते हुए तैयार नहीं की गई हैं।

शोध-पत्र के प्रकाशन हेतु सिलसिलेवार बिंदु

लेखकों से अनुरोध है कि शोध-पत्र तैयार करते समय निम्नलिखित बिंदुओं का सिलसिलेवार पालन करें और ‘संचार माध्यम’ में प्रकाशन हेतु भेजने से पूर्व यह सुनिश्चित कर लें कि निम्नलिखित सभी बिंदुओं का उसमें सही से समावेश किया गया है।

1. शीर्षक

शोध-पत्र की पीडुलिपि शीर्षक से प्रारंभ होती है। शीर्षक संक्षिप्त, विनिर्दिष्ट और सूचनाप्रद होना चाहिए। शीर्षक विषय केंद्रित, शोध की प्रकृति और तकनीक को स्पष्ट करने वाला होना चाहिए, ताकि ‘इंडेक्सिंग’ के लिए ‘की-वर्ड’ की पहचान आसानी से की जा सके। शीर्षक संक्षिप्त हो और उससे विषय का स्पष्ट भान हो। शीर्षक में संक्षेपण की अनुमति नहीं है। शीर्षक (उपशीर्षक सहित) 30 से अधिक शब्दों में नहीं होना चाहिए।

लेखक के नाम के अलावा नाम-पंक्ति में उस स्थान का भी ज़िक्र होना चाहिए, जहाँ शोध किया गया है। शोध-पत्र पर लेखक के नाम के उल्लेख का तात्पर्य यह है कि वह शोध से अवगत और सहमत है और उसके परिणामों और निष्कर्ष की ज़िम्मेदारी लेता है। संस्थान के पते में संस्थान का नाम, शहर, देश तथा पिनकोड का स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए। वर्तमान पता ‘फुटनोट’ के रूप में दिया जाना चाहिए। यदि किसी शोध पत्र में अलग-अलग संस्थानों के व्यक्ति लेखक हैं तो उनके नाम भी ‘फुटनोट’ में दिए जाने चाहिए, जिसमें व्यक्ति का पदनाम, वर्तमान पता और कम-से-कम किसी एक व्यक्ति का ईमेल आईडी अवश्य होना चाहिए। ([1]पदनाम, ([1]प्रथम लेखक का ईमेल), [2]पदनाम, (द्वितीय लेखक का नाम), [3]पदनाम (तृतीय लेखक का नाम)।

2. शोध सारांश

शोध सारांश अधिकतम 250 शब्दों में होना चाहिए, जिसमें शोध-पत्र की सामग्री, शोध प्रविधि, परिणाम, विश्लेषण और निष्कर्ष का संक्षिप्त विवरण स्पष्ट रूप से होना चाहिए, ताकि उससे पाठक को पूरा विषय समझ में आ जाए और विस्तृत विवरण के लिए ही उसे पूरा शोध पत्र पढ़ने की ज़रूरत पड़े। इसमें साहित्य के संदर्भ, रेखाचित्र और तालिका का प्रयोग नहीं होना चाहिए। सारांश में शोध के परिणामों का भी संक्षेप में वर्णन हो, परंतु वह इतना संक्षिप्त

न हो कि पाठकों को समझ में ही न आए। शोध-सारांश शोध-उद्देश्य से प्रारंभ होना चाहिए और शोध के महत्त्वपूर्ण परिणामों से संपन्न होना चाहिए।

3. महत्त्वपूर्ण शब्द (की-वर्ड)

शोध-सारांश के अंत में महत्त्वपूर्ण शब्दों यानी 'की-वर्ड' का उल्लेख होना चाहिए, जो पाँच-छह शब्दों से अधिक न हों और शोध की प्रकृति को पूरी तरह स्पष्ट करते हों। यह इसलिए आवश्यक है, क्योंकि 'इंडेक्सिंग' में शीर्षक के महत्त्वपूर्ण शब्द प्रयुक्त नहीं होते। शीर्षक के कुछ उपयुक्त शब्दों के अलावा उनके पर्यायवाची शब्दों को 'की-वर्ड' के रूप में प्रयोग करना चाहिए।

4. प्रस्तावना

प्रस्तावना संक्षिप्त और शोध के महत्त्व, समस्या और शोध के उद्देश्य को स्पष्ट करने वाली होनी चाहिए। प्रस्तावना में शोध की उपयोगिता और शोध की संभावित पूर्वकल्पनाओं को भी संक्षेप में स्पष्ट किया जाना चाहिए। प्रस्तावना में जिस समस्या का ज़िक्र है, साहित्य अवलोकन उसी से संबंधित होना चाहिए।

5. साहित्य अवलोकन या समीक्षा

साहित्य अवलोकन/समीक्षा किसी भी शोध कार्य का महत्त्वपूर्ण अंग है, जिसमें प्रमुख रूप से उस कार्य का ज़िक्र होता है जो संबंधित शोध समस्या पर पहले हो चुका है। साहित्य अवलोकन के लिए सामग्री के स्रोत के रूप में पुस्तकों का सर्वेक्षण, शोध आलेख, समाचार पत्र, सोशल मीडिया अथवा दूसरे महत्त्वपूर्ण स्रोतों का भी उल्लेख किया जा सकता है। साहित्य अवलोकन में उपर्युक्त सामग्री का संक्षिप्त और आलोचनात्मक मूल्यांकन होना चाहिए।

6. शोध उद्देश्य

शोध-पत्र में शोध उद्देश्यों का संक्षिप्त, परंतु स्पष्ट उल्लेख हो और वे शोध समस्या पर ही केंद्रित हों।

7. शोध प्रश्न

शोध प्रश्न स्पष्ट रूप से उसी समस्या अथवा पूर्वकल्पना पर केंद्रित होने चाहिए, जिस समस्या का समाधान शोध के माध्यम से अपेक्षित है अथवा जिस पूर्वकल्पना का परीक्षण शोध में किया जाना है।

8. शोध प्रविधि

शोध प्रविधि में डाटा संग्रहण से संबंधित संपूर्ण जानकारी का स्पष्टता से उल्लेख किया जाना चाहिए। इसमें मुख्य रूप से प्रविधि, एक्सपेरिमेंटल डिज़ाइन, डाटा संग्रहण उपकरण एवं प्रयुक्त तकनीक आदि शामिल हैं। शोध प्रक्रिया के सभी घटकों को स्पष्ट किया जाना आवश्यक है। प्रायोगिक सामग्री और सांख्यिकीय मॉडल को स्पष्ट करते हुए इसे आवश्यकतानुसार वर्णित किया जाना चाहिए। प्राप्त निष्कर्षों की गणना और वैधता की जाँच का सत्यापन भी आवश्यक है।

9. शोध परिणाम एवं विश्लेषण

वैसे तो विश्लेषण और शोध परिणाम दो अलग-अलग बिंदु हैं, लेकिन पुनरावृत्ति से बचने के लिए इनका एक साथ ही विवरण दिया जा सकता है। बेहतर होगा कि परिणाम तालिका/ग्राफ़ के रूप में प्रस्तुत किया जाए, ताकि वह पाठकों को आसानी से समझ में आए। कई बार रंगीन ग्राफ़ अथवा तालिका में इस प्रकार के रंगों का इस्तेमाल कर लिया जाता है, जो रंगीन प्रकाशन में तो स्पष्ट दिखाई देते हैं, परंतु श्वेत-श्याम प्रकाशन में उनमें कुछ समझ में नहीं आता। इसलिए ग्राफ़ और तालिका में ऐसे रंगों का ही प्रयोग करें जो श्वेत-श्याम प्रकाशन में भी स्पष्ट रूप से दिखाई दें। दूसरे, तालिका में डाटा इस प्रकार समायोजित किया जाए कि वह शोध-पत्र के 'ले-आउट' में आसानी से समाविष्ट हो जाए।

तालिका अपने आप में स्पष्ट होनी चाहिए और उसके साथ तालिका का शीर्षक और परिचय स्पष्ट रूप से दिया जाना चाहिए। सारणीबद्ध सामग्री शोध-पत्र में बीस प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए। यदि तालिका में किसी प्रकार का संक्षेपण प्रयोग किया गया है तो उसकी तालिका में ही स्पष्ट व्याख्या होनी चाहिए। सभी तालिकाओं का विषयवस्तु (टेक्स्ट) में स्पष्ट संदर्भ होना चाहिए। यदि आवश्यक हो तो संक्षेपण का तालिका में प्रयोग करके उसके संबंध में जानकारी 'फुटनोट' में दी जा सकती है। प्रत्येक तालिका में 'फुटनोट' से संबंधित संख्या का स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए।

विषयवस्तु में तालिका में दी गई जानकारी का स्पष्ट और विस्तृत उल्लेख हो, परंतु तालिका और विषयवस्तु में बहुत अधिक पुनरावृत्ति नहीं होनी चाहिए। विश्लेषण में शोध परिणाम का स्पष्ट, परंतु संक्षेप में विवरण होना चाहिए।

10. परिचर्चा

शोधकर्ता द्वारा किए गए परीक्षण, सर्वेक्षण अथवा साक्षात्कार की अन्य शोधकर्ताओं द्वारा उसी विषय पर किए गए शोध परिणाम से तुलना शोधकर्ता की परिसीमाओं अथवा अनुकूलताओं के मद्देनज़र ही की जानी चाहिए। यदि शोधकर्ता किसी अन्य शोधकर्ता के काम का ज़िक्र कर रहा है तो उस संबंध में कॉपीराइट अथवा प्रकाशनाधिकार की अनुमति उसे स्वयं लेनी होगी। शोधकर्ता के प्रति आभारोक्ति और संदर्भ का ज़िक्र चर्चा में किया जा सकता है। लेखकों को ध्यान रखना चाहिए कि दूसरे किसी शोधकर्ता के प्रकाशित अथवा अप्रकाशित शोध, आइडिया, रेखाचित्र, आदि का बग़ैर संदर्भ के पूर्ण अथवा आंशिक इस्तेमाल साहित्य चोरी के दायरे में आता है। इस संबंध में पूरी ज़िम्मेदारी लेखक की होगी।

11. निष्कर्ष

शोध चर्चा एवं विश्लेषण के पश्चात् शोध निष्कर्ष एक से दो पैराग्राफ़ से अधिक नहीं होना चाहिए। शोध निष्कर्ष में संक्षेपण, आदिवर्णिक शब्द (एक्रोनिम) अथवा उद्धरण का प्रयोग अपेक्षित नहीं है। हालाँकि कुछ अनुमान का ज़िक्र किया जा सकता है, परंतु परिणाम के संदर्भ में लेखक को किसी भी प्रकार के अतिरेक से बचना चाहिए। यदि परिणाम का कोई निहितार्थ नहीं है तो उसका भी ज़िक्र किया जाना चाहिए।

12. संदर्भ

संदर्भ अमेरिकन साइकोलॉजिकल एसोसिएशन (एपीए) के छठे

संस्करण में प्रकाशित नियमावली के दिशा-निर्देशों के अनुरूप होना चाहिए (संदर्भ : www.apastyle.org). लेखकों से अनुरोध है कि 'इन-टेक्स्ट' संदर्भ लिखने से पहले 'संचार माध्यम' के नवीनतम अंक को अवश्य देख लें। संदर्भ सूचियों को वर्णमाला के अकारादि क्रम और कालक्रम में टाइप करें।

आलेखों के अंदर ('इन-टेक्स्ट') संदर्भ

'इन-टेक्स्ट' स्टाइल में संदर्भ इस प्रकार लिखे जाते हैंः

- कुमार (2020) अथवा (कुमार, 2020), (कुमार तथा अन्य, 2020)।
- आलेख में जहाँ कहीं भी किसी की टिप्पणी "33." संदर्भ के रूप में दी जाती है, वहाँ पृष्ठ संख्या का उल्लेख भी किया जाना चाहिए। जैसे
  - ''पत्रकार, जिसे हम यहाँ संवाददाता, समीक्षक, व्याख्याकार आदि रूपों में अलग-अलग परिभाषित न करके, संपादक कह रहे हैं, पाठक को जो चीज़ पढ़ने को देता है, वह वस्तुतः पाठक की ही सामाजिक और सांस्कृतिक आकांक्षा की प्रतिमूर्ति होनी चाहिए और इतना ही नहीं, इस आकांक्षा को जाग्रत करने में संपादक के योगदान को पाठक और पत्रकार के बीच एक संवाद के अंतर्गत आलोच्य भी होना चाहिए'' (सहाय, 2000, पृ. 60)।
- ऑनलाइन अख़बार/वेबसाइट से लिए गए संदर्भ में पृष्ठ संख्या के बदले पैरा संख्या दी जाती है, जैसे :
  - जहाँ लेखक का नाम मौजूद हो–

  दिल्ली में चर्चित पत्रिका, आउटलुक, के प्रिंट एडिशन को भी अनिश्चितकाल के लिए बंद करने की घोषणा कर दी गई। पत्रिका के संपादक रुबेन बनर्जी ने वेबसाइट पर दिए गए संदेश में कहा कि छपी हुई प्रतियों का वितरण संभव नहीं है, लिहाज़ा हालात सामान्य होने पर पत्रिका की छपाई की जाएगी (तिवारी, 2020, पैरा 4)।
- संदर्भ सूची : तिवारी, जे. (2020, मार्च 30). कोरोना के कारण अख़बार की छपाई रुकी. आजतक डॉट काम. Retrieved from https://aajtak.intoday.in/video/india&under&total&lockdown&-for&21&days&till&14&april&2020&to&fight&against&coronavirus&covid&19&1&1174515-htm
  - जहाँ लेखक का नाम न हो वहाँ लेख का शीर्षक लिखा जाना चाहिए, जैसे :
- मुंबई का प्रिंट मीडिया मार्च के दूसरे हफ़्ते में वहाँ के मशहूर अख़बार 'हमारा महानगर' के बंद होने के झटके से उबरा भी नहीं था कि 23 मार्च, 2020 को कोरोना संकट के कारण मुंबई में एहतियातन लॉकडाउन कर दिया गया। धारा 144 लागू कर दी गई, लोकल ट्रेन सेवा बंद कर दी गई और शायद यह पहला मौक़ा था, जब वहाँ अख़बार नहीं छपे। वजह यह थी कि हॉकरों ने वितरण के लिए अख़बार उठाने से ही मना कर दिया था ('कोरोना का असर, मुंबई में लोकल ट्रेन बंद', 2020, पैरा 1-2)।
- संदर्भ सूची : कोरोना का असर, मुंबई में लोकल ट्रेन बंद. (2020, मार्च 23). Retrieved from https://aajtak.intoday.in/story/corona&virus&majarashtra&mumbai&lock-down&no&print&editions&newspapers&covid&19&1&1173864.html

संदर्भ सूची के लिए ए.पी.ए. स्टाइल में पुस्तक का संदर्भ तैयार करते समय लेखक निम्नलिखित सूत्र का पालन कर सकते हैं :

- लेखक (अथवा संपादक) का अंतिम नाम, लेखक का प्रथम नाम. (प्रकाशन वर्ष). पुस्तक का शीर्षक. प्रकाशक का शहर : प्रकाशक का नाम जैसे :
  - डेनिस, म. (2020). जर्नलिज्म एंड सोसायटी. यूके : सेज पब्लिकेशन्स.

संदर्भ सूची के लिए ए.पी.ए. स्टाइल में रिसर्च जर्नल का संदर्भ तैयार करते समय लेखक निम्नलिखित सूत्र का पालन कर सकते हैंः

- लेखक का अंतिम नाम, लेखक का प्रथम नाम. (प्रकाशन वर्ष). लेख का शीर्षक. जर्नल का नाम. वॉल्यूम नं. (इशू या अंक), पृष्ठ संख्या जैसे :
  - जेठवाणी, ज. (2020). पोर्टरेयल ऑफ वूमेन : एन इंपीरिकल स्टडी ऑफ एडवर्टाइजिंग कंटेंट इन इंडिया फ्रॉम 1991-2019. कम्युनिकेटर, वॉल्यूम LIV (4), पृष्ठ 3-28.

संदर्भ तैयार करने के लिए आजकल ओपन सोर्स में उपलब्ध सॉफ़्टवेयर की भी मदद ली जा सकती है। अन्य प्रकार के संदर्भ जैसे वेबसाइट पर उपलब्ध संदर्भ, समाचार पत्रों से लिए गए संदर्भ आदि के बारे में विस्तृत जानकारी www.apastyle.org से प्राप्त की जा सकती है।

- **कृपया ध्यान देंः**

लेखकों से अनुरोध है कि शोध-पत्र के अंदर जिन संदर्भों का उल्लेख किया गया है, उन सबका विस्तृत विवरण शोध-पत्र के अंत में अवश्य दें। साथ ही यह भी सुनिश्चित करें कि जो नाम एवं प्रकाशन वर्ष की जानकारी शोध पत्र में अंदर दी गई है, वह अंत में दिए गए विवरण से मेल खाती हो।

लेखकों के लिए अन्य महत्त्वपूर्ण निर्देश :

1. यदि प्रकाशन के लिए आलेख स्वीकार किया जाता है, तो उसे कम-से-कम दो संपादन चरणों से गुज़रना पड़ता है। लेखकों को ध्यान रखना चाहिए कि सभी स्वीकृत आलेख संपादन के किसी भी स्तर पर संपादकों द्वारा आवश्यक संशोधनों/परिवर्तनों के अधीन हैं। सभी आलेखों की बहुस्तरीय समीक्षा अनिवार्य (ब्लाइंड रिव्यू) कराई जाती है, इसलिए समीक्षकों की टिप्पणियों के अनुसार आलेख में बदलाव अनिवार्य है।
2. संदर्भ सूची और तालिकाओं सहित पूरा आलेख 'माइक्रोसॉफ़्ट वर्ड फॉर्मेट' में ही भेजें। 'संचार माध्यम' में आलेख भेजने से पूर्व लेखक यह सुनिश्चित कर लें कि रेखाचित्र, तालिकाओं सहित पूरा आलेख

ठीक से पढ़ लिया गया है और उसमें किसी प्रकार की टंकण त्रुटि भी नहीं है।

3. आलेख/शोध-पत्र भेजने से पूर्व किसी भी प्रतिष्ठित सॉफ़्टवेयर की मदद से उसकी 'प्लेगरिज़्म' जाँच अवश्य कर लें और 'प्लेगरिज़्म' जाँच रिपोर्ट साथ में संलग्न करें। किसी भी तरह की साहित्यिक चोरी किसी भी परिस्थिति में स्वीकार्य नहीं होगी। आलेख के साथ मूल कार्य का घोषणापत्र प्रस्तुत किया जाना अनिवार्य है, जिसके बिना आलेखों पर विचार नहीं किया जाएगा। लेखकों को आलेखों की प्रामाणिकता सुनिश्चित करनी चाहिए। कोई भी अनैतिक व्यवहार (साहित्यिक चोरी, ग़लत डेटा आदि) किसी भी स्तर पर (पीयर रिव्यू या संपादन स्तर पर भी) आलेख की अस्वीकृति का कारण बन सकता है। किसी भी समय साहित्यिक चोरी और/ या निष्कर्षों, परिणामों के स्वनिर्मित आदि पाए जाने पर प्रकाशित आलेख भी वापस लिए जा सकते हैं।

4. कृपया यह सुनिश्चित कर लें कि संदर्भ सूची अमेरिकन साइकोलोजिकल एसोसिएशन (एपीए) के छठे संस्करण के अनुसार ही है। इस संबंध में निम्नलिखित लिंक की मदद ली जा सकती है- www.apastyle.org

5. प्रूफ़ में संशोधन 'ट्रैक चेंज मोड' में होने चाहिए। समीक्षकों द्वारा उठाए गए सभी प्रश्नों का उत्तर अनिवार्य है। लेखकों को प्रकाशन से पूर्व प्रूफ़ इसलिए भेजे जाते हैं, ताकि किसी भी प्रकार की टंकण अथवा तथ्य संबंधी त्रुटि न रहे। प्रूफ़ के स्तर पर बहुत अधिक बदलाव स्वीकार्य नहीं है। प्रूफ़ तीन दिन के अंदर अवश्य वापस आ जाने चाहिए।

6. कृपया आलेख सर्टिफिकेट डाउनलोड करने के लिए डाउनलोड आलेख सर्टिफिकेट पर क्लिक करें।

आलेख भेजने के लिए जाँच सूची

जो आलेख निर्धारित दिशा-निर्देशों के अनुसार नहीं होंगे, उन्हें प्रकाशन के लिए स्वीकार नहीं किया जाएगा, इसलिए लेखकों को सलाह दी जाती है कि वे आलेख भेजने से पूर्व निम्नलिखित बिंदुओं को ध्यान से पढ़ लें :

1. आलेख को सभी लेखकों ने ठीक से देख लिया है और वे सभी उसके फॉर्मेट और सामग्री/तथ्यों से पूरी तरह संतुष्ट हैं। आलेख में एक से अधिक लेखकों के नाम आलेख अथवा शोध में उनके योगदान के अनुसार निर्धारित किए जाते हैं। जिन्होंने शोध अथवा आलेख को तैयार करने में महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया है उनके नाम उसमें शामिल किए जाएँ। यह कार्य आलेख लेखकों को ही करना है। 'संचार माध्यम' की इसमें कोई भूमिका नहीं है।

2. 'संचार माध्यम' के लिए आलेख भेजने से पूर्व यह भी सुनिश्चित कर लें कि वह आलेख पूर्व में प्रकाशित नहीं हुआ है और न ही किसी अन्य शोध पत्रिका को विचारार्थ भेजा गया है। लेखक की ओर से इस आशय की स्पष्टता अनिवार्य है और 'प्लेगरिज़्म रिपोर्ट' आलेख के साथ संलग्न की जाए।

3. जो आलेख प्रकाशन के लिए भेजा जा रहा है वह पहले 'संचार माध्यम' में प्रकाशन के लिए नहीं भेजा गया है।

4. जहाँ तक संभव हो सके, संदर्भ हेतु वेबसाइट लिंक उपलब्ध कराए गए हैं।

5. आलेख माइक्रोसॉफ़्ट वर्ड अथवा आरटीएफ़ फॉर्मेट और टेक्स्ट डबल स्पेस में हो। फॉण्ट साइज़ भी 12 पॉइंट हो। साथ ही सभी संबंधित तालिका, रेखाचित्र, ग्राफ़ आदि यथास्थान विषयवस्तु (टेक्स्ट) में लगा दिए गए हैं।

6. आलेख संदर्भ सूची की सभी आवश्यकताओं को पूर्ण करता है।

7. जिस संस्थान में शोध कार्य किया गया है, उसका पता लेखक के नाम के साथ उपलब्ध करा दिया गया है।

8. आलेख में उद्धृत अध्ययन, सर्वे, साक्षात्कार आदि पाँच साल से अधिक पुराने नहीं होने चाहिए और आलेख शोध कार्य पूर्ण होते ही प्रकाशन के लिए प्रस्तुत कर दिया गया है।

9. किसी भी तरह का पत्राचार संपादक, 'संचार माध्यम', भारतीय जन संचार संस्थान, नई दिल्ली-110 067 से होगा।

कॉपीराइट नोटिस

'संचार माध्यम' में प्रकाशित सभी शोध-पत्रों/आलेखों आदि का कॉपीराइट भारतीय जन संचार संस्थान के पास सुरक्षित है, जो किसी भी देशी-विदेशी संस्थान से उनके पुनः प्रकाशन, फोटोकॉपी, संग्रहण अथवा किसी भी माध्यम से प्रसारण के लिए अनुबंध करने के लिए स्वतंत्र है। हालाँकि 'संचार माध्यम' में प्रकाशित सामग्री के अकादमिक उपयोग पर भारतीय जन संचार संस्थान को आपत्ति नहीं है, परंतु उसके व्यावसायिक उपयोग की अनुमति नहीं है। अकादमिक उपयोग संबंधी मामलों में भारतीय जन संचार संस्थान/'संचार माध्यम' के प्रति आभारोक्ति आवश्यक है।

निजता घोषणा

'संचार माध्यम' की वेबसाइट पर दर्ज नाम और ईमेल का प्रयोग सिर्फ़ घोषित उद्देश्य के लिए ही किया जाता है तथा किसी अन्य व्यक्ति/संस्थान को किसी अन्य उपयोग हेतु उपलब्ध नहीं कराया जाता।

संपर्क :

'संचार माध्यम' में शोध पत्र भेजने के लिए सिर्फ़ इस ईमेल पर ही लेख भेजे जाने चाहिए : sancharmadhyamiimc@gmail.com

इसके अलावा 'संचार माध्यम' के संपादक और सहायक संपादक से भी संपर्क किया जा सकता है, उनके नाम और ईमेल इस प्रकार हैं–

संपादक : प्रो. (डॉ.) प्रमोद कुमार (drpk.iimc@gmail.com)

सहायक संपादक : डॉ. पवन कौंडल (pawankoundal@gmail.com)

इन संपर्क सूत्रों के अलावा अन्य कोई भी संपर्क मौजूद नहीं है। लेखकों को सिर्फ़ उपर्युक्त ईमेल पर ही संपर्क करना चाहिए।

निःशुल्क प्रकाशन

'संचार माध्यम' में प्रकाशित होने वाले सभी आलेख पूर्ण रूप से निःशुल्क हैं और लेखकों से किसी भी प्रकार का भुगतान नहीं लिया जाता है।

भारतीय जन संचार संस्थान
प्रकाशन विभाग

नई सदस्यता/नवीनीकरण फार्म

प्रमुख
प्रकाशन विभाग
भारतीय जन संचार संस्थान
नया जेएनयू परिसर, अरुणा आसफ अली मार्ग
नई दिल्ली - 110 067

महोदय/महोदया,

मैं/हम आपकी शोध पत्रिकाओं का ग्राहक बनना चाहता हूं /चाहते हैं :

1. कम्युनिकेटर (अंग्रेज़ी त्रैमासिक) 200 रुपये प्रति अंक (800 रुपये वार्षिक)
2. संचार माध्यम (हिंदी अर्द्धवार्षिक) 200 रुपये प्रति अंक (400 रुपये वार्षिक)

कैलेंडर वर्ष (जनवरी-दिसंबर).. के लिए ग्राहक शुल्क के रूप में दिनांक..........................को.........…...के नाम आहरित…………………रुपये का डिमांड ड्रॉफ्ट/चेक संख्या...………………….. संलग्न है।

पत्रिका (पत्रिकाएं) निम्नलि0खित पते पर भेजी जा सकती हैं :

नाम ....

पता ....

....

दिनांक *हस्ताक्षर*

नोट :

- डिमांड ड्रॉफ्ट भारतीय जन संचार संस्थान, दिल्ली के पक्ष में देय होना चाहिए।
- व्यक्तियों की ओर से चेक स्वीकार्य नहीं हैं। हालांकि संस्थानों/विश्वविद्यालयों/स्थापित कंपनियों की ओर से चेक स्वीकार किए जा सकते हैं।

Name of Account Holder	:	Indian Institute of Mass Communication
Address	:	Aruna Asaf Ali Marg, New Delhi-110067
Bank Name	:	Central Bank of India
Account No.	:	3586258939
IFSC Code	:	CBIN0283535
Type of Bank Account	:	SB

संचार माध्यम

'संचार माध्यम' (ISSN 2321–2608) भारतीय जन संचार संस्थान (नई दिल्ली) की संचार, मीडिया, पत्रकारिता और उससे संबंधित मुद्दों पर केंद्रित हिंदी में प्रकाशित होने वाली अग्रणी 'पीयर रिव्यूड' और यूजीसी–केयर सूचीबद्ध शोध पत्रिका है। इसका प्रकाशन 1980 में प्रारंभ हुआ और आज यह हिंदी भाषा में संचार, मीडिया और पत्रकारिता से संबंधित विषयों पर विभिन्न प्रकार के विचारों, टिप्पणियों, पुस्तक समीक्षा और मौलिक शोध–पत्रों के प्रकाशन का प्रतिष्ठित मंच है। इसमें मीडिया से संबंधित सभी प्रकार के विषयों पर मौलिक अकादमिक शोध और विश्लेषण प्रकाशित किए जाते हैं। अकादमिक शोध के उच्चतर मूल्यों का पालन करते हुए 'संचार माध्यम' में प्रकाशन से पूर्व सभी शोध पत्रों/आलेखों की बहुस्तरीय निष्पक्ष समीक्षा (ब्लाइंड पीयर रिव्यू) कराई जाती है। भारतीय जन संचार संस्थान के प्रकाशन विभाग द्वारा इसका प्रकाशन किया जाता है। पत्रिका का प्रकाशन अभी छमाही हो रहा है, परंतु शीघ्र ही इसका प्रकाशन पुनः तिमाही करने की योजना है।

'संचार माध्यम' में निम्नलिखित श्रेणी के शोध–पत्र प्रकाशित किए जाते हैं :

1. **मौलिक शोध पर आधारित शोध–पत्र :** इस प्रकार के शोध–पत्र की शब्द सीमा 4000 से 5000 शब्द होनी चाहिए। जो डबल स्पेस में टाइप किया गया हो। साथ ही अधिकतम 250 शब्दों में शोध सारांश भी शामिल होना चाहिए। शोध–पत्र सिर्फ़ यूनिकोड फॉण्ट में ही टाइप होना चाहिए और उसमें संबंधित शोध की पूर्ण तसवीर दृष्टिगोचर होनी चाहिए। शोध–पत्र से जुड़े छायाचित्र/ग्राफ़/टेबल, यदि कोई हों, तो वे भी अपनी मूल प्रति के साथ (एक्सेल फाइल इत्यादि) संलग्न किए जाने चाहिए। इस बात का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए कि छायाचित्रों का रिज़ॉल्यूशन उच्च स्तर का हो, ताकि प्रिंटिंग के समय गुणवत्ता प्रभवित न हो। पीडीएफ़ फ़ाइल में शोध पत्र स्वीकार्य नहीं होंगे।
2. **लघु शोध आधारित शोध–पत्र :** लघु शोध आधारित आलेख लगभग 2000 शब्दों से अधिक नहीं होना चाहिए, यानी लगभग 4–5 पृष्ठ, डबल स्पेस में टाइप किया गया हो। यह भी यूनिकोड फॉण्ट में ही टंकित होना चाहिए। ऐसे शोध–पत्र भी पूर्ण हो चुके शोध/अध्ययनों पर ही आधारित होने चाहिए। इसमें ऐसे तथ्यपूर्ण शोध–पत्र भी शामिल हो सकते हैं, जिनका संबंध किसी नवीन तकनीक के विकास से है। ऐसे शोध–पत्रों का शोध सारांश 80 से 100 शब्दों से अधिक नहीं होना चाहिए।
3. **शोध समीक्षा :** इस श्रेणी के अंतर्गत आने वाले समीक्षात्मक आलेखों में प्रस्तावना, साहित्य समीक्षा, शोध परिणाम आदि के अलावा संबंधित शोध में मौजूद कमियों और उन कमियों के सुधार हेतु सुझावों का भी समावेश होना चाहिए, ताकि भविष्य में अन्य शोधकर्ता उन कमियों को दूर करने की दिशा में प्रयास कर सकें।
4. **पुस्तक समीक्षा :** 'संचार माध्यम' में पत्रकारिता और जनसंचार पर प्रकाशित पुस्तकों की समीक्षा (शब्द सीमा : 1500) भी प्रकाशित की जाती है। अन्य विषयों जैसे सामाजिक ज्ञान, सामाजिक कार्य, एंथ्रोपोलोजी, कला आदि पर प्रकाशित पुस्तकों की समीक्षा भी भेजी जा सकती है बशर्ते उनका शीर्षक मीडिया अध्ययन से जुड़ा हो या उनकी सामग्री में कम–से–कम 40 प्रतिशत अध्याय मीडिया, जनसंचार या पत्रकारिता से जुड़े हों। पुस्तक समीक्षाएँ उनके पूर्ण विवरण जैसे प्रकाशक, वर्ष, संस्करण, पृष्ठ संख्या, मूल्य व पुस्तक के छायाचित्र के साथ भेजी जानी चाहिए।

प्रकाशन नैतिकता और साहित्यिक चोरी

- संचार माध्यम के लिए जो शोध आलेख भेजे जाएँ उन्हें अन्य पत्रिकाओं को नहीं भेजना चाहिए और न ही शोध आलेखों को पूरी तरह से या आंशिक रूप से उसी सामग्री के साथ किसी अन्य पत्रिका में प्रकाशित किया जाना चाहिए। लेखकों को सुनिश्चित करना चाहिए कि 'संचार माध्यम' में प्रकाशन के लिए भेजे जाने वाले आलेख किसी भी रूप में या मिलती–जुलती सामग्री के रूप में पहले प्रकाशित न हुए हों।
- किसी भी तरह की साहित्यिक चोरी किसी भी परिस्थिति में स्वीकार्य नहीं है। आलेख के साथ मूल कार्य का घोषणापत्र प्रस्तुत किया जाना अनिवार्य है, जिसके बिना आलेखों पर कोई विचार नहीं किया जाएगा। लेखकों को आलेखों की प्रामाणिकता सुनिश्चित करनी चाहिए। कोई भी अनैतिक व्यवहार (साहित्यिक चोरी, गलत डेटा आदि) किसी भी स्तर पर (पियर रिव्यू या संपादन स्तर पर भी) आलेख की अस्वीकृति का कारण बन सकता है। किसी भी समय साहित्यिक चोरी और तथ्यों निष्कर्षों के स्वनिर्मित आदि पाए जाने पर प्रकाशित आलेख वापस लिए जा सकते हैं।

बहुस्तरीय समीक्षा (पियर रिव्यू) प्रक्रिया

'संचार माध्यम' में प्रकाशनार्थ प्राप्त सभी आलेख दोहरी या बहुस्तरीय निष्पक्ष समीक्षा (डबल ब्लाइंड पीयर रिव्यू) प्रक्रिया के अधीन हैं। शोध आलेखों को विशेषज्ञों के पास बिना उनके लेखक/लेखकों का नाम बताए समीक्षा के लिए भेजा जाता है। उनकी टिप्पणी, सुझावों और अनुशंसा के आधार पर ही शोध–पत्रों के प्रकाशन का निर्णय लिया जाता है। संपादन–परिषद् के संतुष्ट होने पर ही शोध–पत्र प्रकाशित किया जाता है। इस प्रक्रिया में आमतौर पर 4–6 सप्ताह लगते हैं। समीक्षा प्रक्रिया पाँच चरणों पर आधारित हैः–

क. जस के तस स्वीकार करने लायक,

ख. मामूली सुधार की आवश्यकता,
ग. मध्यम सुधार की आवश्यकता,
घ. अधिक सुधार की आवश्यकता
ङ. अस्वीकृत। 'संचार माध्यम' तीव्र समीक्षा प्रक्रिया का पालन नहीं करता है।

लेखों का संपादन

यदि प्रकाशन के लिए लेख स्वीकार किया जाता है, तो उसे कम–से–कम दो संपादन चरणों से गुजरना पड़ता है। लेखकों को ध्यान रखना चाहिए कि सभी स्वीकृत लेख संपादन के किसी भी स्तर पर संपादकों द्वारा आवश्यक संशोधनों व परिवर्तनों के अधीन हैं।

सदस्यता शुल्क ₹200 प्रति अंक
(वार्षिक सदस्यता शुल्क ₹400)

भारतीय जन संचार संस्थान

शोध पत्रों के लिए आमंत्रण

भारत में मीडिया शिक्षा की 100 वर्षों की गाथा प्रस्तुत करने के लिए 'संचार माध्यम' के जनवरी–जून, 2021 अंक को विशेषांक के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है। मीडिया और पत्रकारिता शिक्षा की 100 वर्ष की यात्रा में अनेक मील के पत्थर स्थापित हुए हैं, जो लोक से लेकर प्रिंट और ऑनलाइन मीडिया तक संचार माध्यमों की विकास यात्रा का प्रमाण हैं। इसी पृष्ठभूमि में 'संचार माध्यम' के जनवरी–जून, 2021 विशेषांक में प्रकाशन के लिए मीडिया विशेषज्ञों, संचारकों व शिक्षकों से निम्नलिखित विषयों पर शोध पत्र आमंत्रित किए जाते हैं :

विषय

- भारत में मीडिया शिक्षा की विकास यात्रा : संचार क्षेत्र में आमूल–चूल बदलाव
- भारत में मीडिया शिक्षा : उद्भव से क्रांति तक
- भारत और दक्षिण एशिया में मीडिया शिक्षा
- मीडिया शिक्षा का भारतीयकरण
- मीडिया शिक्षा : कल्पना अथवा वास्तविकता
- मीडिया शिक्षा में चुनौतियाँ और अवसर
- दोराहे पर मीडिया शिक्षा
- मीडिया शिक्षा : 21वीं सदी की आवश्यकता
- मीडिया शिक्षा में मौजूद ख़ामियाँ
- मीडिया शिक्षा के नायक
- संचार शिक्षा बनाम मीडिया शिक्षा
- मुक्त विश्वविद्यालयों के माध्यम से मीडिया शिक्षा
- मीडिया घरानों के माध्यम से पत्रकारिता एवं जन संचार शिक्षा
- क्षेत्रीय भाषाओं में मीडिया शिक्षा का प्रभाव
- उपभोक्ताओं, उत्पादकों और नीति–निर्माताओं के लिए मीडिया शिक्षा
- मीडिया शिक्षा की भूमिका और प्रभाव
- मीडिया शिक्षा पर डिजिटल लर्निंग का प्रभाव
- मीडिया शिक्षा में बहुविषयक दृष्टिकोण
- मीडिया शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार हेतु अन्य शैक्षिक संस्थानों से साझेदारी
- भारत में मीडिया शिक्षा का भविष्य
- भारत के अग्रणी मीडिया शिक्षा संस्थान
- मीडिया संकाय प्रशिक्षण तंत्र
- पेशेवरों को गढ़ने में मीडिया पाठ्यक्रमों की पाठ्यचर्या में एकरूपता
- महिला सशक्तीकरण में मीडिया की भूमिका
- अनछुए विषयों तक पहुँच कायम करने में मीडिया शिक्षा का प्रभाव
- मीडिया शिक्षा के माध्यम से सामाजिक बदलाव
- पत्रकारिता और जन संचार में प्रकाशन
- 100 वर्षों की इस यात्रा में विकास, संस्कृति, शिक्षा, धर्म, स्वास्थ्य, मनोरंजन, सिनेमा, रेडियो, टीवी और ऐसे अन्य विषय

अपने शोध पत्र 20 अप्रैल, 2021 तक या इससे पहले संपादक को भेजें :

प्रो. (डॉ.) प्रमोद कुमार
संपादक 'संचार माध्यम'
भारतीय जन संचार संस्थान
अरुणा आसफ अली मार्ग, नई दिल्ली– 110067
ईमेल : drpk.iimc@gmail.com, sancharmadhyamiimc@gmail.com, pawankoundal@gmail.com

लेखकों के लिए दिशानिर्देशों का अवलोकन करने हेतु कृपया हमारी वेबसाईट www.iimc.nic.in पर विजिट करें।

खंड–32, अंक–2
संचार माध्यम
जुलाई–दिसम्बर 2020